कुरुक्षेत्र

अक्तूबर 1995

मूल्य : दस रुपये

ग्रामीण विकास की नई मंज़िल

भूमि सुधार

भूदान आंदोलन के प्रणेता आचार्य विनोबा भावे
को उनकी जन्म शताब्दी पर
हमारी श्रद्धांजलि

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 40 अंक 12 आश्विन-कार्तिक 1917, अक्तूबर 1995

कार्यकारी संपादक : [illegible]
उप संपादक : [illegible]

उप निदेशक (उत्पादन) : के. आर. कृष्णन
विज्ञापन प्रबंधक : बैजनाथ राजभर
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : एस० एल० कोसार
आवरण सज्जा : फेम क्रिएटिव एडवर्टाइजिंग

एक प्रति : पांच रुपये वार्षिक चंदा : 50 रुपये
वार्षिकांक : दस रुपये

इस अंक में

बापू की जीवन-यात्रा : चित्रों में
पत्रिका के मध्य में

सबै भूमि गोपाल की	प्रो. के. डी. गंगराडे	3
भारत में भूमि सुधारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	प्रदीप पंत	14
भूमि सुधार : सफलता की शर्ते	प्रो. कमल नयन काबरा	20
भूमि सुधार एवं गरीबी उन्मूलन	प्रो. कामता प्रसाद	24
दो सपने : कितने पूरे, कितने अधूरे	रफीक शास्त्री	27
जमीन से रिश्ते ही भविष्य का नक्शा बनाएंगे	जितेन्द्र गुप्त	32
भूमि सुधार : आर्थिक विकास की आवश्यक शर्त	डा. गिरीश मिश्र	39
भूमि सुधार : ग्रामीण विकास एवं सामाजिक न्याय	डा. लक्ष्मीरानी कुलश्रेष्ठ	44
भूमि सुधार और कृषि उत्पादन	सुन्दर लाल कुकरेजा	49
भूमि सुधार : सामाजिक परिवर्तन की कुंजी	सुभाष चन्द्र 'सत्य'	53
पंचायती राज की सफलता की कुंजी : भूमि सुधार	डा. महीपाल	57
किसानों के आत्म सम्मान के लिए भूमि सुधार जरूरी	रामजी प्रसाद सिंह	61
भारत में भूमि सुधार : एक समाजशास्त्रीय विवेचन	प्रो. एस. एल. शर्मा एवं डा. के. गोपाल अय्यर	67
भारत में भूमि सुधार : कितना सार्थक, कितना विकासोन्मुख	कमला प्रसाद	73
भूमि सुधार कानूनों के क्रियान्वयन में विषमताएं	देवेन्द्र उपाध्याय	80
आर्थिक समता के संवाहक : भूमि सुधार	जगमोहन माथुर	85
भारत में ग्रामीण विकास के लिए भूमि सुधार का महत्व	प्रो. टी. हक	90
भूमि सुधार : समस्याएं और समाधान	यतीश मिश्र	99
भूमि सुधार : उपलब्धि एवं समस्याएं	डा. भरत सिंह एवं डा. चंद्रसेन	105
भूमि सुधार : ग्रामीण विकास का प्रभावी उपाय	डा. राकेश अग्रवाल	107
सुखी समाज का आधार : निरंतर भूमि सुधार	डा. जयनारायण कौशिक	113
भूदान यज्ञ : भूमि सुधार का गैर-सरकारी 'भागीरथ प्रयास'	अरविंद कुमार सिंह	117

[illegible] अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित इस [illegible] में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं [illegible] सरकारी दृष्टिकोण भी नहीं हो।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : [illegible]

जोतने वाले को जमीन

भूमि सुधार हमारे ग्रामीण गरीबों की दशा सुधारने के लिए सबसे महत्वपूर्ण हैं। भूमि सुधारों के बिना गांवों से गरीबी दूर करना और आर्थिक विषमता को कम करना कठिन है। गांवों के दीन-हीन लोगों को विकास का कोई और कार्यक्रम उतना लाभ नहीं दिला सकता जितना भूमि सुधार। भूमि सुधार कानूनों पर अमल न हो पाने के कारण ही गरीबी उन्मूलन के अब तक के सभी प्रयास अपर्याप्त सिद्ध हुए हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि भूमि सुधारों के बिना हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कोई मूलभूत बदलाव लाना संभव नहीं है।

भूमि सुधारों की मांग स्वतंत्रता-प्राप्ति से पहले ही उठने लगी थी। आजादी मिलने के बाद सरकार ने इस दिशा में कई कदम उठाये। जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया और काश्तकारों की स्थिति में भी सुधार लाने का प्रयास किया गया। जोत की सीमा निर्धारित की गई और अतिरिक्त जमीन को उन लोगों में वितरित किया गया जिनके पास जमीन नहीं थी या कम थी। लेकिन ये उपाय ज्यादा कारगर सिद्ध नहीं हुए। इसके कई कारण रहे। भूमि सुधार कानूनों में अनेक खामियां, राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव, प्रशासनिक उदासीनता, अदालतों का हस्तक्षेप, भू रिकार्डों का सही न होना, भूस्वामियों का दबदबा और उनके द्वारा कानून से बच निकलने के अनेक उपाय ढूंढ निकालना तथा गरीब भूमिहीन किसानों का अशिक्षित और असंगठित होना इनमें प्रमुख हैं। फलस्वरूप गरीब लोगों में वितरित करने के लिये बहुत कम जमीन मिली। यह देश की समस्त कृषि योग्य भूमि के मात्र दो प्रतिशत के बराबर थी। आजादी के 48 वर्ष बाद भी आज 23.8 प्रतिशत भूस्वामी 71 प्रतिशत भूमि पर कब्जा जमाये हुए हैं जबकि 8 करोड़ 73 लाख छोटे और सीमांत किसानों के पास दो-दो हेक्टेयर से भी कम जमीन है। देश में करोड़ों भूमिहीन मजदूर हैं और उनकी संख्या प्रति वर्ष 20 लाख की दर से बढ़ रही है।

अब 81वां संविधान संशोधन पारित करके सरकार ने भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नौवीं अनुसूची में रख दिया है। इन कानूनों को अब न्यायालयों में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। केन्द्र ने राज्यों को यह हिदायत भी दी है कि भूमि हदबंदी कानून के साथ छेड़छाड़ न की जाए क्योंकि ऐसा करने से अनिश्चितता पैदा होती है। केन्द्र ने मुकदमों में फंसी जमीन के मामलों को जल्दी निपटाने के लिए उच्च न्यायालयों की विशेष खंडपीठ गठित करने या न्यायाधिकरण बनाने का निर्देश भी दिया है। भू-रिकार्डों का कम्प्यूटरीकरण किया जा रहा है। आशा है कि सरकार के इन प्रयासों से निकट भविष्य में भूमि सुधारों के काम में तेजी आएगी। वास्तव में अब भूमि सुधारों को लागू करने में और देर करना ठीक नहीं होगा, क्योंकि आर्थिक उदारीकरण के कारण पूंजीवादी खेती की प्रक्रिया शुरू होने की संभावना बढ़ गई है। ऐसा होने पर भूमि सुधार कानूनों को लागू करना और कठिन हो सकता है।

हमारा यह वार्षिकांक महात्मा गांधी और आचार्य विनोबा भावे को समर्पित है जिन्होंने भूमिहीन गरीबों की हालत सुधारने के लिये अथक प्रयास किया।

सबै भूमि गोपाल की

प्रो. के.डी. गंगराडे

लेखक का मानना है कि संसद द्वारा 81वां संविधान संशोधन पारित कर देना और भूमि सुधारों को संविधान की नौवीं अनुसूची में रख देना ही काफी नहीं है। इस संविधान संशोधन पर कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति की आवश्यकता है। इसके साथ ही भूमि सुधार कानूनों को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए लोगों और विशेष रूप से भू-स्वामियों को मानसिक रूप से तैयार करना होगा।

"ग्रामीण जीवन को सुधारने का केवल एक ही मौलिक उपाय है..... तथाहि, भूमि पर किसान के स्वामित्व के एक ऐसे तरीके को प्रारंभ करना जिसके अन्तर्गत भूमि को जोतने वाला ही उसका स्वामी हो और वह किसी जमींदार या तालुकदार के माध्यम के बिना ही सीधा सरकारों को मालगुजारी चुकाए।"

(भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस प्रस्ताव, 1935)

लोगों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन को तीन पद्धतियों से बदला जा सकता है। ये हैं कानून, करुणा (दया अथवा शिक्षा के द्वारा प्रेरित करना) तथा क्रान्ति (अहिंसक अथवा हिंसक परिवर्तन)। गांधीजी अक्सर कहते थे "भारत की आत्मा गांवों में रहती है।" भूमि सुधार ही ग्रामीण विकास की कुंजी है। प्रस्तुत लेख तीन खंडों में है। पहले खंड में कानून के द्वारा विशेष रूप से काश्तकार को भूमि का स्वामी बनाकर आय की विषमता को दूर करके समाज का सुधार करने की चर्चा है। दूसरे खंड में प्रेम और अहिंसक संघर्ष द्वारा समाज को बदलने की चर्चा है। तीसरे खंड में संविधान के 81वें संशोधन का विश्लेषण है, विशेष रूप से पश्चिम बंगाल के संदर्भ में पंचायत राज संस्थाओं की भूमिका का। परिवर्तन की इन तीन पद्धतियों में कोई ऊंच-नीच का क्रम नहीं है। ये एक दूसरे से स्वतंत्र भी अपना काम कर सकती हैं। लेकिन श्रेष्ठ परिणाम तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जब इन तीनों पद्धतियों में समन्वय हो और ये एक साथ मिल कर काम करें। कानून तभी प्रभावी साधन बन सकता है जब लोगों को कानून बनाने से पहले ही तैयार अथवा शिक्षित किया जाए। जब कोई प्रावधान कानून का रूप ले तो यह आवश्यक है कि लोगों को उसकी पूरी जानकारी दी जाये, उन्हें शिक्षित किया जाये ताकि वे अपने अधिकारों को, कर्तव्यों को, दायित्वों को समझें। ग्रामीण जनता के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए, भारतीय समाज में अभीष्ट परिवर्तन लाने के लिए कानून अनुकूल साधक का काम कर सकता है।

भारतीय समाज की प्रारंभिक विशेषताएं

लगभग उनीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक भारतीय ग्रामीण संगठन का रूप संसृष्ट जीवन वाले ग्राम समुदाय का था जिसमें अधिकार और कर्तव्य तथा समुदाय के विभिन्न वर्गों के आपसी आर्थिक तथा सामाजिक संबंध परंपरा से निर्धारित होते थे और ग्राम पंचायत के माध्यम से लागू किये जाते थे। राज्य को मालगुजारी की अदायगी के मामले में संपूर्ण ग्राम समुदाय एक इकाई के रूप में व्यवहार करता था। विशिष्ट अपवाद रूप में ही (ग्राम से) बाहर के किसी आदमी को गांव की भूमि पर स्वामित्व प्राप्त करने की अनुमति दी जाती थी। ग्राम समुदाय की अनुमति के बिना कोई भी व्यक्ति गांव से बाहर के किसी व्यक्ति को भूमि नहीं बेच सकता था न ही किसी को हस्तान्तरित कर सकता था। संपूर्ण संगठन खेती और खेती करने वाली जनता की

आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जमीन की जोत पर केन्द्रित ग्राम के सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर ढाला गया था।

ब्रिटिश शासन ने एक सर्वथा भिन्न व्यवस्था बनाई जिसने बलात् परिवर्तन की गति को तेज कर दिया। इस व्यवस्था में

भारत में ग्रामीण जनता के बहुत बड़े प्रतिशत का गरीबी की रेखा से नीचे रहने का एक कारण यह है कि यहां प्रति परिवार खेती की जमीन का आकार छोटा है। उदाहरण के लिये प्रत्येक तीन में से दो जोतें दो हेक्टेयर से भी कम हैं। देश में 87 लाख छोटे किसान हैं जिनके पास दो हेक्टेयर से भी कम जमीन है।

आर्थिक परिवर्तन की सामाजिक कीमत ग्रामीण समाज के कमजोर वर्गों जैसे खेतिहर मजदूरों, बटाई पर खेती करने वाले छोटे किसानों, गांव के शिल्पियों और निम्नकर्म करने वाले सेवकों को चुकानी पड़ी। ब्रिटिश मालगुजारी व्यवस्था ने भूमि में, जो स्वच्छंदतापूर्वक खरीदी और बेची जा सकती थी, मालिकाना लगान वसूली के हितों को पैदा कर दिया। स्वतंत्रता से पहले गांव की भूमि पर जो पट्टे की व्यवस्था लागू थी, उसे तीन मोटी श्रेणियों में बांटा जा सकता है : जमींदारी, महलवाड़ी और रैयतवाड़ी।

यद्यपि अंग्रेजों के द्वारा प्रचलित मालगुजारी व्यवस्था के कारण उत्पन्न हुए बिचौलियों को मिटाने के लिये पहले भी कदम उठाये गए थे वस्तुतः व्यवहार में यह काम 1948 में मद्रास में बनाए गए कानून से ही शुरू हुआ। यह कानून सभी राज्यों में पास किया गया। जबकि उद्देश्य यह था कि खेतिहर (किसान) और राज्य के बीच बिचौलियों को मिटाया जाए, व्यवहार में बनाए हुए कानूनों ने बिचौलियों को जमींदारों के बराबर कर दिया जिसके परिणामस्वरूप रैयतवाड़ी के अन्तर्गत भूमि पर एकाधिकार रखने वाले भूस्वामियों और मालगुजारी वसूलने वालों का एक वर्ग इस कानून-व्यवस्था से अछूता छूट गया। साम्यवादी देशों के विपरीत भारत में बिचौलियों को मिटाने का काम हरजाना दिये बिना नहीं किया गया।

भूमि सुधार के द्वारा खेत जोतने वाले को भूमि का स्वामी बनाने के सभी प्रयत्न ज्यादातर असफल रहे हैं। यह इसी बात से स्पष्ट है कि 1984 के अंत में देश के विभिन्न न्यायालयों में भूमि-परिसीमन के 1.6 लाख मामले विचाराधीन थे। भारत में ग्रामीण जनता के बहुत बड़े प्रतिशत का गरीबी की रेखा से नीचे रहने का एक कारण यह है कि यहां प्रति परिवार खेती की जमीन का आकार छोटा है। उदाहरण के लिये प्रत्येक तीन में से दो जोतें दो हेक्टेयर से भी कम हैं। देश में 873 लाख ऐसे छोटे किसान हैं जिनके पास दो हेक्टेयर से भी कम जमीन है।

भूमि सुधार की प्रक्रियाओं का क्रियान्वयन इतना धीमा है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 48 वर्षों बाद भी 23.8 प्रतिशत लोग भूमि के 71 प्रतिशत भाग पर अपना प्रभुत्व बनाए हुए हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार गांवों में भूमिहीन मजदूरों की संख्या 70 लाख थी। इसमें प्रतिवर्ष 0.20 लाख भूमिहीन मज़दूरों की संख्या जुड़ रही है। नीचे दिये गये विवरण से भारत में भूमि और लोगों के संबंधों की व्यापक जानकारी मिलती है :

तालिका–1

खेती की जमीन का आकार	ऐसी इकाइयों की संख्या	कुल प्रतिशत
10 हेक्टेयर	27,66,000	4
4 से 10 हेक्टेयर	79,32,000	11.2
2 से 4 हेक्टेयर	1,06,81,000	15.1
1 से 2 हेक्टेयर	1,34,32,000	19.1
1 से कम हेक्टेयर	3,56,82,000	50.2
कुल	7,04,93,000	100

स्रोत – 4 मई 1981 का लोकसभा का तारांकित प्रश्न संख्या-644

पट्टे की सुरक्षा और खेती की भूमि का परिसीमन

ग्रामीण क्षेत्र में आमदनी का प्रमुख साधन भूमि है। यदि आमदनी का प्रमुख स्रोत भूमि, ग्रामीण जनता के एक छोटे अंश को ही लाभ पहुंचाता है तो भूमि पर स्वामित्व का (खड़ा किया हुआ) ढांचा सामाजिक न्याय के लक्ष्य को पूरा करने में असफल रहता है। इसलिये आय की असमानता को कम करने का सबसे श्रेष्ठ उपाय भू-स्वामित्व में विद्यमान असमानता को कम करना ही है।

पट्टे की सुरक्षा

सर आर्थर यंग ने टिप्पणी की है : "मनुष्य को रूखी चट्टान का पक्का अधिकार दे दो, वह उसे बगिया में बदल देगा, उसे एक बगिया नौ वर्ष के पट्टे पर दे दो, वह उसे रेगिस्तान में बदल देगा।" इसलिये, पट्टेदारी के अधिकार की समाप्ति भूमि का सुधार करने के लिए उद्यम का, बेकार पड़ी हुई भूमि को सुधारने का अथवा खेती की जमीन की उर्वरता को बनाये रखने की अपेक्षित दीर्घकालिक योजनाओं का नाश कर देती है। परिणामस्वरूप सामाजिक न्याय का लक्ष्य और अधिकतम उत्पादन दोनों की ही दृष्टि से पट्टेदारी की सुरक्षा प्रदान करने वाली न्याय-व्यवस्था को अंगीकार करने की आवश्यकता सिद्ध होती है। ऐसी न्याय-व्यवस्था का प्रयोजन खेती करने वाले किसानों को खेत की जमीन पर स्थायी प्रभुता का अधिकार प्रदान करना होना चाहिए।

खेती की भूमि का परिसीमन

भारत में भूमि सुधार का प्राथमिक लक्ष्य था भूस्वामियों की समस्त भूमि यदि एक निश्चित सीमा से अधिक हुई तो राज्य उस भूमि का अधिग्रहण कर लेगा और ये छोटे किसानों में बांट दी जाएगी ताकि उनकी खेती योग्य भूमि आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद बन जाए अथवा भूमिहीन मजदूरों को दे दी जाए ताकि उनकी

सर आर्थर यंग ने टिप्पणी की है : "मनुष्य को रूखी चट्टान का पक्का अधिकार दे दो, वह उसे बगिया में बदल देगा, उसे एक बगिया नौ वर्ष के पट्टे पर दे दो, वह उसे रेगिस्तान में बदल देगा।"

जमीन की आवश्यकता पूरी हो सके। विद्यमान खेती की भूमि और इसके लागू करने की इकाई के परिसीमन के निमित कानून दो चरणों में बनाए गए हैं। पहला चरण, जो 1972 तक चला, परिसीमन विषयक कानून अधिकतर भूस्वामी को इस कानून के लागू करने की इकाई मानता था। सन् 1972 के बाद यह निश्चय किया गया कि परिवार को खेती की भूमि का आधार माना जाए। इससे आगे, परिसीमन सीमा को भी घटा दिया गया ताकि गांवों में आमदनी के इस दुर्लभ स्रोत का अधिक न्यायिक ढंग से बंटवारा हो सके।

समस्या

विद्यमान खेती की भूमि पर सीमा का प्रतिबंध लागू करना एक जटिल समस्या है। इसके लिए वर्तमान भूमि-पद्धति का पुनर्गठन करना जरूरी है। इसके लिए स्वामित्व के अधिकारों की

भारत में भूमि सुधार का प्राथमिक लक्ष्य था कि भूस्वामियों की समस्त भूमि यदि एक निश्चित सीमा से अधिक हुई तो राज्य उस भूमि का अधिग्रहण कर लेगा और ये छोटे किसानों में बांट दी जाएगी ताकि उनकी खेती योग्य भूमि आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद बन जाए अथवा भूमिहीन मजदूरों को दे दी जाएगी ताकि उनकी जमीन की आवश्यकता पूरी हो सके।

पूरी जांच करनी होगी। इसके साथ कई समस्याएं जुड़ी हुई हैं जैसे, दुर्भावना से किए गए हस्तान्तरण, छूट और अतिरिक्त भूमि की व्यवस्था।

अतिरिक्त भूमि और उसका बंटवारा

भूमि परिसीमन के पुराने कानून के अन्तर्गत 1972 तक भारत में करीब 0.23 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गई थी जिसमें से 0.13 लाख एकड़ का पुन : आबंटन हुआ था। बिहार, कर्नाटक, उड़ीसा और राजस्थान में कोई भूमि अतिरिक्त घोषित नहीं हुई थी। लेकिन इन राज्यों में भूपरिसीमन लागू होने से पहले ही जमीनों के बंटवारे अथवा बेनामी हस्तान्तरण हो चुके थे।

भूमि का बंटवारा

संशोधित भू-परिसीमन कानून बीते हुए समय से अर्थात् जनवरी 24, 1971 से लागू होने थे। मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन द्वारा निर्धारित मार्गदर्शन का अनुसरण करते हुए 17 राज्य सरकारों ने भू-परिसीमन कानूनों का पुनरीक्षण कर दिया गया था और भू-सीमाओं को और कम कर दिया था। लेकिन न्यायालयों के हस्तक्षेप के कारण अतिरिक्त भूमि प्राप्त करने के कार्य को गहरा धक्का लगा।

1992 में इसका पुनरीक्षण हुआ। पता चला कि मालगुजारी-अदालतों में मुकदमों में फंसी जमीनों का 75 प्रतिशत मुक्त हो जाना चाहिए जिसका फिर से आबंटन कर दिया जाना चाहिए। मार्च 1985 और जून 1992 के बीच केवल सात वर्षों की अवधि में 0.711 लाख एकड़ भूमि का अतिरिक्त आबंटन किया जा सका। नीचे दी गई तालिका 1980 से जून 1992 तक किये गए भूमि के आबंटन को बतलाती है :

तालिका : 2

भू-परिसीमन कानूनों को लागू करने की समवेत प्रगति

लाख एकड़

	31.3.80 को	31.3.85 को	31.3.90 को	30.6.92 को
अतिरिक्त घोषित क्षेत्र	69.13	72.07	72.75	72.81
अधिकार में लिया हुआ क्षेत्र	45.50	56.98	62.12	63.53
आबंटित क्षेत्र	35.50	42.64	46.47	49.75
लाभान्वित होने वालों की संख्या	24.75	32.90	43.60	47.59

स्रोत : ग्रामीण विकास मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट (1992-93)

ऐसी शोचनीय स्थिति के लिये ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय द्वारा दिए गए कारण इस प्रकार हैं :

- पांच से अधिक सदस्य वाले परिवारों द्वारा भू-परिसीमन कानून में निर्धारित सीमा से दुगुनी भूमि को अपने पास बनाए रखने का प्रावधान
- परिवार में बालिग पुत्रों के लिए अलग से भू-परिसीमन सीमा का प्रावधान
- संयुक्त परिवार के प्रत्येक भागीदार को भू-परिसीमन सीमा के लिये अलग इकाई माने जाने का प्रावधान
- भू-परिसीमन सीमा का अतिक्रमण करके चाय, काफी, रबड़, इलायची और कोको की खेती तथा धार्मिक और खैराती संस्थाओं के लिए दी गई छूट,
- भू-परिसीमन सीमा को वंचित करने के लिए भूमि के बेनामी और फर्जी हस्तान्तरण,
- छूटों का दुरुपयोग तथा भूमि का गलत वर्गीकरण, तथा
- लोक-पूंजी के विनिवेश के द्वारा नए सिंचाई के साधनों से हाल ही में तैयार की गई भूमि पर उपयुक्त भू-परिसीमन का लागू न किया जाना

यहां मैं मेरे ही द्वारा किये गए निरीक्षणों में से दो को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूं।

पहला उदाहरण

दिल्ली में खामपुर गांव में (कल्पित नाम) एक कथा प्रचलित है कि गांव की भूमि के वर्तमान पांच स्वामियों के पूर्वजों ने यह सारी भूमि 1857 के विद्रोह में ब्रिटिश सैनिकों को संरक्षण प्रदान करने के कारण इनाम में प्राप्त की। भू-परिसीमन से बचने के लिए इन भाइयों ने इस भूमि का कुछ हिस्सा एक योजना के निमित्त सरकार को बेच दिया। उन्होंने इसकी जानकारी उन काश्तकारों को नहीं दी जो इस भूमि को पीढ़ियों से जोत रहे थे। काश्तकारों ने अदालत का दरवाजा खटखटाया। अदालत ने आदेश दिया कि भूस्वामियों को तुरंत मुआवजा दिया जाए। इस प्रकार (भूमि के स्वामी) भाइयों को मुआवजा मिल गया जबकि काश्तकारों को कुछ भी नहीं मिला, क्योंकि उनके पास कोई आगम-पत्र नहीं थे। पटवारी ने सरकारी कागजों को चालाकी से इस प्रकार तैयार किया कि उनमें खेती-योग्य भूमि खेती के अयोग्य दिखाई गई ताकि काश्तकार किसी भी प्रकार के लाभ से वंचित हो जाएं।

काश्तकारों ने अपने अपने नाम से हलफनामे दाखिल करा कर सुप्रीम कोर्ट तक (कानूनी) लड़ाई लड़ी—उन्हें प्रतीकरूप में कुछ मुआवजा मिला। ये काश्तकार अभी भी विस्थापित हैं और कृषि-व्यवसाय के अतिरिक्त अन्य किसी कौशल को न जानने के कारण अपने आप को पुनःस्थापित नहीं कर पाए हैं। अब नई पीढ़ी धीरे-धीरे वैकल्पिक व्यवसायों की तलाश में गांव से पलायन करती जा रही है।

दूसरा उदाहरण

हरियाणा राज्य दावा करता है कि यहां भूमि-सुधार वचन और भावना दोनों ही दृष्टियों से लागू किए गए हैं। इसके एक गांव रामपुर में (कल्पित नाम) मैंने पाया कि कागज पर तो सब कुछ ठीक-ठाक था। लेकिन जब मैंने गहराई से खोज-बीन की तो मुझे पता चला कि दलितों के आगम पत्र पुराने/मौलिक भू-स्वामियों के ही कब्जे में हैं। यह इस मिथ्या-तर्क के आधार पर किया गया था कि दलितों के पास इन पत्रों को सुरक्षित रखने के लिये संदूक या स्थान नहीं थे। भूस्वामी अभी भी दलितों को अपना काश्तकार और भूमिहीन मजदूर मानकर ही उनके साथ व्यवहार करते हैं यद्यपि भूमि का कानूनी रूप से हस्तान्तरण हो चुका है। दलितों का यह शोषण उनके अज्ञान, शिक्षा के अभाव और साथ ही नौकरशाही की उदासीनता के कारण ही है।

क्रियान्वयन न होने के कारण

पी.एस. अप्पू की अध्यक्षता में नियुक्त किये गए योजना आयोग के कार्य-बल ने भूमि-सुधारों के क्रियान्वयन न होने के लिये उत्तरदायी निम्नलिखित कारण बतलाए :

(1) राजनैतिक इच्छा की कमी, (2) निम्न वर्गों की ओर से दबाव का अभाव क्योंकि गरीब देहाती और खेतिहर मजदूर (अ) अदृश्य और (ब) असंगठित हैं। यह तथ्य सरकारी रिपोर्टों से ही स्पष्ट है जो कहती हैं कि कुल 314 लाख कर्मकारों में से करीब 80 प्रतिशत (249 लाख) ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। करीब 64 प्रतिशत (200 लाख) खेती में लगे हुए हैं, 85 प्रतिशत (267 लाख) अपने काम में लगे हुए हैं अथवा अनियमित वेतन पर काम करते हैं और केवल करीब 47 लाख को नियमित रोजगार मिला हुआ है। असंगठित मजदूरों के मुख्य लक्षण हैं : कम रोजगार की गंभीर स्थिति (कम रोजगार पाने वाले मजदूर काम की उपलब्धता के अनुसार एक से अधिक मालिकों के लिए काम करते हैं), काम का बिखरा हुआ स्वरूप (एक ही प्रकार का काम करने वाले अलग-अलग स्थानों पर हैं और यह आवश्यक नहीं है कि वे एक ही एक भौगोलिक सीमा वाले क्षेत्र में रहते हों); गृह-मूलक काम को करना; सामूहिक सौदेबाजी करने की क्षमता में कमी; संगठन-क्षमता का निम्न स्तर (ट्रेड यूनियनों को कम रोजगार पाने वाले, बिखरे हुए और गृह-मूलक व्यवसायों में लगे हुए मजदूरों तक पहुंचने में गंभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है); और अन्त में मालिक और कर्मकार के बीच ठोस संबंध का अभाव। (3) नौकरशाही की उत्साहहीन और प्रायः उदासीन प्रवृत्ति; (4) भूमि के प्रत्यक्ष रिकार्डों का अभाव तथा (5) भूमि-सुधारों के क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली कानूनी रुकावटें।

खंड दो

गांधी जी के लिये समाज को बदलने के भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में स्वतंत्रता की प्राप्ति केवल पहला चरण था। दूसरा और सबसे महत्वपूर्ण चरण होना था अहिंसक सामाजिक आन्दोलन जिसमें खेत को जोतने वाले को उस खेत का स्वामी बनाना था। इससे भारत के लाखों गरीबों की आंखों से आंसू पोंछने में सहायता मिलने की संभावना थी। अपनी हत्या से कुछ ही दिनों पहले उन्होंने लिखा था कि कांग्रेस ने राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है किंतु इसे अभी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्वतंत्रताएं प्राप्त करनी हैं। ये स्वतंत्रताएं राजनैतिक स्वतंत्रता से अधिक कठिन हैं।

भूदान का जन्म

जनवरी 1948 में गांधी जी की मृत्यु के बाद उनके सहयोगियों में से, जो उनके सर्वोदय समाज के स्वप्न के प्रति समर्पित रहे, कुछ लोगों ने सर्व सेवा संघ के नाम से एक संस्था गठित की।

गांधी जी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी विनोबा भावे ने 1951 में आंध्र प्रदेश के तेलंगाना जिले की यात्रा की जहां भूमिहीन खेतिहरों और उनके सामंती भूस्वामियों के बीच उग्र संघर्ष चल रहा था। इस यात्रा प्रसंग में जब वे 18 अप्रैल के दिन पोचमपल्ली गांव पहुंचे, उनके पास अनेक भूमिहीन दलित आए जिन्होंने उनसे भूमि प्राप्त करने में उनकी सहायता करने की प्रार्थना की। विनोबा जी ने गांव के लोगों को संबोधित किया और उनसे पूछा कि क्या उनमें से कोई अपने भाइयों को भूख से मरने से बचाने के लिये अपनी मर्जी से जमीन देने के लिए राजी है। एक व्यक्ति, जिसका नाम रामचन्द्र रेड्डी था, आगे आया और उसने सौ एकड़ जमीन देने की इच्छा प्रकट की। उसने कहा, "मैं हमेशा राजद्रोही रहा

विनोबा जी ने भू-स्वामियों से कहा, "अगर तुम्हारे पांच बेटे होते तो तुम अपनी संपत्ति उनके बीच बराबर बराबर बांटते। मुझे अपना छठा बेटा समझो। दरिद्र नारायण–दीन के रूप में प्रगट हुए भगवान्–के लिये मुझे अपनी जमीन का एक हिस्सा दो।"

हूं। हमारा सारा परिवार राजद्रोही है। लेकिन मेरी साम्यवादी तरीकों से असहमति है, और जब तक विनोबा जी यहां नहीं आये थे तब तक मेरे मन में उलझन थी कि मैं क्या करूं। साम्यवादी कहते हैं कि वे आतंक, रक्तपात और असत्य के द्वारा प्रेम और न्याय का युग शुरू कर सकते हैं। मैं इसमें कभी विश्वास नहीं करता।" यह उस आन्दोलन का जन्म था जो भूदान आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दान में प्राप्त हुई भूमि का आबंटन

विनोबा जी ने चालीस दलित परिवारों से कहा कि वे स्वयं निर्णय करें कि वे (दान में प्राप्त हुई) भूमि को कैसे बांटना चाहेंगे और यह कि वे इस भूमि को इकट्ठा मिलकर जोतना चाहेंगे या अलग-अलग। दलितों ने उन्हें कहा है वे भूमि को इकट्ठे मिलकर जोतना चाहेंगे। उनमें से अनेक छोटी जातियों के समूह—जैसे धोबी, चर्मकार, बुनकर—पहले से ही समुदाय के रूप में इकट्ठे रह रहे थे। एक समूह में आठ परिवार, हर समुदाय के मकान एक दीवार के पीछे बने हुए थे। इन सभी का एक बरामदा था। एक साथ जुताई करने के लिए उन्हें इसी व्यवस्था का थोड़ा विस्तार करने की जरूरत थी जिसमें प्रत्येक समूह अपने अलग-अलग क्षेत्र के प्रति उत्तरदायी हो। उन्होंने यह भी कहा, उन्हें शुरुआत करने के लिये 80 एकड़ से अधिक की आवश्यकता नहीं है—हर एक के लिये दो एकड़। कदाचित् फालतू बीस एकड़ का किसी और रूप में उपयोग हो सकता था।

गांव छोड़ते हुए जमा हुए समूह से विदा लेते हुए, विनोबाजी ने टिप्पणी की "यदि हर एक भूस्वामी रामचन्द्र रेड्डी बन जाए तो हम धरती पर स्वर्ग उतार लें।"

भूदान

विनोबा जी काफी सचेत होकर भारत के भूमिहीनों की समस्या के लिये एक ऐसे समाधान को खोज रहे थे जो हिंसक क्रांति का विकल्प बन सके। उन्होंने सारे भारत वर्ष में पदयात्राओं का एक क्रम प्रारंभ करने का निश्चय किया जिसमें वे भूस्वामियों की अन्तरात्मा से अपील कर सकें, भूमिहीनों के लिए भूमि की भिक्षा मांग सकें और इस प्रकार व्यक्तिगत दान-कर्म के द्वारा सामाजिक सुधार के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। उनका लक्ष्य त्रिविध क्रान्ति था।

"पहले, मैं लोगों के हृदय बदलना चाहता हूं। दूसरे, मैं उनके जीवन में एक परिवर्तन उत्पन्न करना चाहता हूं। तीसरे, मैं सामाजिक ढांचे को बदलना चाहता हूं..... हमारा लक्ष्य केवल दया के कर्म करना नहीं है, किंतु दया का साम्राज्य बनाना।"

भूदान के लिये इतना भारी उत्साह था कि वर्ष 1957 के अन्त तक, जिसका नाम भू-क्रान्ति वर्ष रखा गया था, 50 लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया था।

विनोबा जी 6 जून 1951 के दिन हैदराबाद से मध्य भारत में आए तो उन्होंने 12,000 एकड़ भूमि जमा कर ली थी। जिस किसी भी गांव में वे रुके उसमें से एक ने भी भूमि का दान करने से मना नहीं किया—उन्होंने एक दिन में औसत 240 एकड़ भूमि प्राप्त की। निजाम ने भी, जिसकी भारत के सबसे कृपण व्यक्ति के रूप में प्रसिद्धि थी, कुछ भूमि दी थी। अगले तीन वर्षों में विनोबा जी के द्वारा पीछे छोड़े गए कार्यकर्ताओं ने हैदराबाद में और भी एक लाख एकड़ भूमि प्राप्त की।

साम्यवादियों के लिये विनोबा जी का एक संदेश था, "रात के अंधेरे में क्यों आओ? दिन के उजाले में क्यों न आओ और क्यों न मेरी तरह ईमानदारी और प्यार से देखो?"

विनोबाजी ने भू-स्वामियों से कहा, "अगर तुम्हारे पांच बेटे होते तो तुम अपनी संपत्ति उनके बीच बराबर बराबर बांटते। मुझे अपना छठा बेटा समझो। दरिद्रनारायण—दीन के रूप में प्रगट हुए भगवान—के लिये मुझे अपनी जमीन का एक हिस्सा दो।"

सही न्याय-विधान

विनोबा जी का विश्वास था कि भारत जैसे प्रजातंत्र में व्यापक भूमि-सुधार लाने के लिए भूदान ही एकमात्र उपाय है। यह लोगों के मनों को छूता है और उनके हृदयों को छूता है। इससे सही न्याय-विधान के लिये रास्ता तैयार होता है।

भूदान की उत्पत्ति और इसके अर्थ की व्याख्या करने के लिए विनोबा जी हिन्दू पौराणिक कथाओं के चमत्कारी कोश गृह का सहारा लेते थे। इस बात की व्याख्या के लिये उदाहरणस्वरूप दो पौराणिक-कथाएं नीचे दी जा रही हैं :

पहली पौराणिक कथा

राजा बलि की एक कथा है जिसमें विष्णु वामनावतार में वर मांगने के लिये राजा के पास आए। असुर राजा बलि के गुरु, शुक्राचार्य, जानते थे कि वह याचक असल में कौन है, इसलिये

कमण्डलु की जल की नलकी पर वे कीट बन कर चिपक गए ताकि दान का संकल्प लेने के समय उसमें से जल न आ सके। दिव्य साधुवेशधारी याचक ने कीट को देख लिया और जल की रुकावट को हटाने के लिये कमण्डलु की नलकी में सींक घुसा दी..... .. वर क्या था? वामनदेव अपने तीन पगों में जितनी धरती माप सकें। जब दान का वचन दे दिया गया, वामन ने विशाल रूप धारण कर लिया और अपने दो पगों में ही संपूर्ण विश्व को माप लिया। जब तीसरे पग के लिये कोई स्थान नहीं बचा तब (उसे रखने के लिए) राजा बलि ले अपना सिर आगे बढ़ा दिया। भूदान, भूमि का दान, विनोबाजी कहते थे, एक दिन बलिदान अर्थात राजा बलि के दान में बदल जाना चाहिये। संपूर्ण विश्व ईश्वर को समर्पित हो जाना चाहिये।

दूसरी पौराणिक कथा

पाण्डवों ने अधर्म की शक्ति के विरुद्ध महाभारत में वर्णित प्रसिद्ध लडाई लड़ी। युद्ध का कारण क्या था? पाण्डवों के संबंधी उन्हें अपने उत्तराधिकार में प्राप्त भूमि का हिस्सा देने के लिए तैयार नहीं थे। पहले पाण्डवों ने राज्य नहीं, बल्कि एक नगर की मांग की; तदनन्तर एक नगर की नहीं, बल्कि एक गांव की; उसके बाद एक गांव की नहीं, बल्कि एक भवन की; उसके बाद एक भवन की नहीं, बल्कि एक कमरे की। लेकिन दूसरा पक्ष सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने के लिये तैयार नहीं हुआ। जब उनकी मांग नहीं मानी गई तब उन्होंने हथियार उठाने का निर्णय किया। इसी प्रकार आज के गरीब करेंगे, विनोबाजी ने कहा, यदि हम उनके अधिकारों में निरंतर कटौती करते रहेंगे..... इस कथा के अन्त में, एक भुलाया हुआ छठा भाई है, कर्ण—उसे उसके जन्म के अवसर पर दूर छिपा दिया गया था। विनोबा जी इसे आज के समाज के उपेक्षित, वंचित के प्रतीक के रूप में देखते थे। यही वह था जिसने कुल की एक शाखा के कान में दूसरे के विरुद्ध विष घोला और जो माता के द्वारा दिये गए कवच से युद्ध में सर्वशक्तिमान बन गया। क्या हम पाण्डवों की तरह अपने छठे भाई को भूल जाना चाहते हैं और आपसी नफरत और कलह को भड़काना चाहते हैं?

अप्रैल 1954 के अंत तक 32 लाख एकड़ भूमि भूदान मे दी गई थी। इनमें से 20 लाख एकड़ भूमि व्यावहारिक रूप से अच्छी जमीन थी। भूदान करने वाले दाताओं की संख्या 2,30,000 थी जिनमें से एक तिहाई के विषय में कहा जाता है कि उनका हृदय-परिवर्तन हो गया था। 60,000 एकड़ भूमि 20,000 परिवारों में बांटी गई।

भू-स्वामित्व के अधिकार का विसर्जन

वस्तुतः 1957 को भूक्रान्ति वर्ष के नाम से जाना जाता है। इस वर्ष तक कुल 4.2 लाख एकड़ भूमि भूदान आन्दोलन को में प्राप्त हो चुकी थी, जबकि लक्ष्य 50 लाख एकड़ का था। इस निराशाजनक स्थिति का एक कारण यह है कि भू-आन्दोलन अब व्यक्ति से अपनी भूमि के एक हिस्से के विसर्जन की मांग नहीं कर रहा था बल्कि अब मांग ग्राम-समुदाय के पक्ष में साम्पतिक अधिकारों के पूर्ण विसर्जन की थी। यह ग्रामदान की मांग थी—गांव की सारी जमीन को एक जगह जमा करना और संपूर्ण ग्राम-समुदाय को इसका स्वामित्व सौंपना।

सन् 1971 तक, 1,68,108 गांवों ने—भारत के कुल गांवों के एक चौथाई से कुछ अधिक ने — ग्रामदान में शामिल होने की घोषणा कर दी थी। लेकिन अधिकतर यह केवल 'संकल्प' की घोषणा ही थी। केवल करीब 5000 गांव ऐसे थे कि उनके अधिकार पत्र यथार्थ में ग्राम-समिति को हस्तान्तरित किए गए थे; ये सरकारी तौर पर ग्राम दान के रूप में पंजीकृत हुए थे।

मूलतः कुछ ऐसा हुआ प्रतीत होता है कि संत स्वरूप विनोबा अथवा उनके प्रतिनिधि जयप्रकाश नारायण की यात्रा के फलस्वरूप, उत्साह की लहर में, गांव अपने को ग्रामदान में शामिल घोषित कर देते थे। इसके बाद नेता लोग तो अगले गांव या स्थान की ओर चल देते थे और पीछे अपनी ओर से घोषित संकल्प को (कानूनी तौर से) लागू करने के लिए सर्वोदय कार्यकर्ताओं को छोड़ जाते थे। आर्थिक साधनों की कमी और ऐसे कार्य को चलाने के लिये उपयुक्त शिक्षा-प्राप्त कार्यकर्ताओं की कमी से भी आन्दोलन को पूर्ण रूप से सफलता न मिल सकी। परिणामस्वरूप,

भूदान और ग्रामदान आन्दोलन के प्रयोग से जो शिक्षा ली जा सकती है वह यह है कि सबसे पहले यह जरूरी है कि दान के पात्रों में आत्म-विश्वास और आत्म-निर्भरता के गुण तथा अपनी जमीन का प्रबंध स्वयं करने की क्षमता उत्पन्न की जाए।

कागज पर जैसी आदर्श तस्वीर दिखाई पड़ती थी और वास्तविक स्थिति के बीच काफी बड़ा अन्तर था।

इसके अतिरिक्त एक लाख से ऊपर भूस्वामियों के द्वारा भूदान योजना के अन्तर्गत दान की गई 4.2 लाख एकड़ जमीन में से

1.85 लाख एकड़ जमीन या तो खेती के अयोग्य सिद्ध हुई या कानूनी विवादों में फंसी हुई मिली। 1970 के दशक के अन्तिम भाग तक भूदान में प्राप्त की गई कुल जमीन का केवल तीस प्रतिशत ही वास्तव में भूमिहीनों में बांटा गया था। इससे आगे यह पाया गया कि जमीन का आबंटन हो जाने पर भी, जिनको जमीन दी गई थी उनमें से अनेक भूदान से लाभ उठाने की स्थिति में नहीं थे क्योंकि ये जमीन सिंचाई सुविधाओं से विहीन होने के साथ समतल भी नहीं थी। इसे सुधारने के लिये इन लोगों के पास धन और साधनों का अभाव होता था। उनके पास खेती शुरू करने के लिए आवश्यक औजारों, बीजों, उर्वरकों और खेती के लिये आवश्यक पशुओं को प्राप्त करने के साधनों का अभाव था। इसके अतिरिक्त, उनमें अपनी भूमि का प्रबंध करने के लिये अनुभव और आत्म-विश्वास की कमी थी, क्योंकि उनका जीवन स्थानीय भूस्वामियों पर निर्भर था।

भूदान और ग्रामदान आन्दोलन के प्रयोग से जो शिक्षा ली जा सकती है वह यह है कि सबसे पहले यह जरूरी है कि दान के पात्रों में आत्म-विश्वास और आत्म-निर्भरता के गुण तथा अपनी जमीन का प्रबंध स्वयं करने की क्षमता उत्पन्न की जाए। इसके अतिरिक्त, नई प्राप्त की गई जमीन का पूरा उपयोग करने के लिए जरूरी भौतिक और तकनीकी साधनों का प्रावधान भी आवश्यक है। संक्षेप में, ये लोग अभी भी गांधी जी के ग्राम स्वराज और आर्थिक विषमता को मिटाने के लक्ष्य से काफी पीछे थे।

खंड तीन

स्वाधीनता के समय से किये गए भूमि-सुधारों के प्रयत्नों का मूल्यांकन इस बात को स्पष्ट करता है कि कुल खेती-योग्य भूमि का एक प्रतिशत ही बांटा गया है। ऐसा मुख्य रूप से अन्तहीन मुकदमेबाजी और कानूनी विवादों के कारण है।

81वां संशोधन : संविधान संशोधन के 81वें विधेयक में सात राज्यों में भूमि सुधार संबंधी कानूनों के आधारभूत मुद्दों को संविधान की नवीं सूची में रखने का प्रयत्न किया गया है। ये कानून अब अवाध्य हो गये हैं, क्योंकि धारा 31बी के अनुसार, नवीं सूची में शामिल सभी नियम/कानूनों को अदालत में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि ये संविधान में प्रतिष्ठित मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं। न्यायालयों से मुक्ति चाहने वाले सात राज्यों में दोनों तरह के राज्य हैं – पश्चिम बंगाल, केरल, कर्नाटक जैसे भूमि सुधारों में प्रशंसनीय कार्य करने वाले भी औ बिहार, राजस्थान, उड़ीसा और तमिलनाडु जैसे राज्य भी, जिनक इस क्षेत्र में कोई बहुत अच्छा इतिहास नहीं है।

अमल में कमी : भूमि सुधारों को हानि प्रमुख रूप से इसलिए उठानी पड़ी है क्योंकि पार्टी के स्तर पर अभिव्यक्त निश्चय कदाचित् ही नीचे के स्तर पर कार्य में परिणत हुआ है। न्याय के सैद्धान्तिक प्रश्नों और न्याय सबको समान रूप से सुलभ होने की बात को एक तरफ करके भी यह सिद्ध है कि ग्राम सुधारो का कृषि की उपज पर सकारात्मक/भावात्मक प्रभाव है। यह याद रखना चाहिए कि पूर्वी एशिया का चमत्कार (ईस्ट एशियन मिरेकल) 1960 तथा 1970 के दशकों में उत्साहपूर्वक शुरू किये गए ग्राम सुधारों का ऋणी है।

पश्चिम बंगाल का प्रयोग : अपने देश में हाल तक अधिकतर पूर्वी भारत में, कृषि उपज में वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर से न्यूनाधिक मात्रा में कम ही थी। 1970 और 1980 के दशकों में पश्चिम बंगाल में किये गए प्रयोग – आपरेशन बर्गा के द्वारा काश्तकारी का पंजीकरण और पंचायत चुनाव के द्वारा पार्टी का नियंत्रण – की सफलता से राज्य में कृषि उपज में छह प्रतिशत की उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

दुर्भाग्य से, किन्तु यहां भी, मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट (सी०पी०एम०) सरकार को ग्रामीण सुधारों के लिए धीमे पड़ते हुए समर्थन का सामना करना पड़ रहा है। बिहार और राजस्थान जैसे राज्यों को तो अभी लंबी दूरी तय करनी है। यहां तो अभी बंधुआ मजदूरी, अत्यधिक ब्याज पर धन देने की प्रथा और व्यक्तिगत सैन्य-बलों द्वारा दलितों के वध जैसी समस्याएं जारी हैं। बिहार में, जबकि लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व वाली जनता दल सरकार अपनी पहली अवधि में इस मोर्चे पर असफल रही, हाल में, आपरेशन 'टोडरमल' के माध्यम से और अड़ियल अफसरों को आपरेशन 'कालदूत' द्वारा दण्डित करने की धमकी से, सुधार के प्रयत्न सही मार्ग पर चलते प्रतीत होते हैं।

भूमि-परिसीमन की नीति : खेती की जमीन पर वर्तमान परिसीमन की व्यवस्था को जारी रखने की नीतिगत घोषणा भी स्वागत-योग्य है यद्यपि कर्नाटक और पश्चिम बंगाल इससे असंतुष्ट रहेंगे। उन्होंने भू-परिसीमन को उठाना चाहा था, प्रत्यक्ष ही, परिमाण की अर्थ-नीति (Economy of Scale) का किसानों

को लाभ देने के लिए। किंतु, देश के शेष भागों में, जहां ग्राम सुधार अधिकतर असफल रहे हैं, भू-परिसीमन को ऊंचा करने से दोषियों को ही लाभ पहुंचेगा – उन्हें जिन्होंने इससे बचने के लिए छल-कपट का सहारा लिया।

नवीं सूची कानून के विरुद्ध कोई गारण्टी नहीं : किसी कानून का संविधान की नवीं सूची में समावेश मात्र इस बात की गारण्टी नहीं है कि इसे अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। कानूनों को अनेक अन्य आधारों पर चुनौती दी गई है, जैसे : (i) संविधान की धारा 14, 19 और 31 से असंगत होने के, (ii) बालिग बेटों और नाबालिग बेटों तथा बालिग बेटियों और अविवाहित बेटियों के बीच् भेदभाव करने के, (iii) भूमि के वर्गीकरण के आधार, (iv) मुआवजे की दर के, (v) प्रामाणिक एकड़ की गणना के तरीके और (vi) परिवार शब्द की परिभाषा में मनमानी के आधार पर।

पंचायतें और भूमि सुधार : सोलह राज्य पंचायत कानूनों की समीक्षात्मक परीक्षा 'वानी' (वालन्टरी एक्शन नेटवर्क इन इंडिया) द्वारा की गई है। पश्चिम बंगाल को छोड़कर, इन कानूनों में किसी अन्य राज्य के कानूनों ने भूमि सुधार के मामले में न तो पंचायत की भूमिका का विवेचन किया है और न ही उसका उल्लेख।

प्रतिनिधित्व : भूमि सुधार पंचायती राज की सफलता की कुंजी है। उदाहरण के लिए, पश्चिम बंगाल में भूमि सुधार पंचायती राज से पहले आये। परिणामस्वरूप पिछले से पिछले पंचायत चुनावों में तीन पंक्तियों वाले ढांचे के 46,000 चुने हुए सदस्यों में 75 प्रतिशत अध्यक्ष और सदस्य छोटे या सीमांत किसान थे। इसके अतिरिक्त कुल क्रियाशील क्षेत्रों में से 19 प्रतिशत से भी अधिक में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व है। कुल प्रतिनिधियों में 36 प्रतिशत से भी अधिक महिलाएं थीं। पंचायत पद्धति के विभिन्न स्तरों पर 24,799 चुनी हुई महिलाएं हैं।

भूमि सुधार सर्वोच्च प्राथमिकता : राज्य में भूमि सुधार ने सर्वोच्च प्राथमिकता प्राप्त की क्योंकि ग्रामीण संबंधों का पुनर्गठन सरकार का मुख्य लक्ष्य था। सरकार ने भूमि सुधार के दो पक्षों पर जोर दिया जैसे पट्टेदारों के नामों का लेखा तैयार करना और अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में आबंटन। इसके साथ जुड़ी हुई थी सरकार की भूमि सुधार से लाभान्वित होने वालों के लिए संस्थागत ऋण की सुरक्षा की विस्तार की नीति।

पंचायतों और कृषक-संगठनों ने इन कार्यक्रमों को लागू करने में अतिशय प्रभावी भूमिका निभाई। पट्टेदारों के नामों का लेखा तैयार करने का कार्यक्रम, आपरेशन बर्गा (ओ बी) के नाम से जाना जाता है, इसे पहले नौकरशाही के द्वारा आरंभ किया गया। बाद में पारंपरिक पद्धति की कमी की पूर्ति नौकरशाही और पंचायत के बीच व्यावहारिक संबंधों को स्थापित करके की गई।

81वां संशोधन कहीं भूमि सुधारों के क्रियान्वयन न होने के फंदे में न जा पड़े, इसके लिये राजनीतिज्ञों में, राजनैतिक पार्टियों में, शिखर से लेकर निचले स्तर तक नौकरशाही में दृढ़ समर्पण की आवश्यकता है और आवश्यकता है भूस्वामियों के हृदय-परिवर्तन की।

ओ बी कार्यक्रम में ग्राम पंचायतों ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ओ० बी० कार्यक्रम के अर्थपूर्ण पक्षों में शामिल हैं सांध्य शिविर और असली बर्गादरों की पहचान। इन दोनों ही विषयों में पंचायतों की हिस्सेदारी और बर्गादरों के नामों का लेखा तैयार करने के लिए दिए गए प्रोत्साहन ने इस सारे कार्यक्रम की सफलता में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

पंचायत समितियों को भूमि के आबंटन कार्यक्रम को पूरा करने का काम सौंपा गया था। पंचायत समिति के स्तर पर भूमि-सुधारों की एक स्थायी समिति है जो इस काम को करती है। यह समिति, ग्राम पंचायतों और कृषक संगठनों की मदद से उन लोगों की सूची तैयार करती है जिन्हें अधिकार में आई हुई भूमि आबंटित की जाती है। इस क्षेत्र में मिली सफलता प्रशंसनीय है। पश्चिम बंगाल में पंचायतों के पुनर्जीवन में वामपंथी मोर्चे को प्राप्त हुई अपेक्षाकृत अर्थपूर्ण सफलता का श्रेय वहां शिखर और तल्ले, दोनों ही स्तरों पर विद्यमान उत्कट राजनैतिक इच्छा शक्ति को दिया जा सकता है।

निष्कर्ष

81वां संशोधन कहीं भूमि सुधारों के क्रियान्वयन न होने के फंदे में न जा पड़े इसके लिए राजनीतिज्ञों में, राजनैतिक पार्टियों में, शिखर से लेकर निचले स्तर तक नौकरशाही में दृढ़ समर्पण की आवश्यकता है, और आवश्यकता है भूस्वामियों के हृदय-परिवर्तन की। उनके द्रुत क्रियान्वयन के लिए भूमि सुधारों को अदालतों के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा जा सकता है। साथ ही ये कृषि-क्षेत्र में आधुनिकीकरण और बढ़ी हुई उत्पादकता के लिए भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं।

भूमि का पुनः आबंटन ग्रामीण गरीबों की बड़ी संख्या को एक स्थायी पूंजी/संपत्ति का आधार प्रदान कर सकता है ताकि वे भूमि पर आधारित और इससे जुड़े हुए उद्यमों को अपना सकें। उसी प्रकार खेती की जमीन का एकीकरण, काश्तकारी के नियम और लेखा-प्रमाणों का नवीकरण, छोटे और सीमांत खेतों के मालिकों की खेती की तकनीक को सुधारकर साधनों के निवेश की पहुंच को विस्तृत बना देगा और उपज को बढ़ाने में सीधा योगदान करेगा। फिर भी, व्यवहार में यह पाया गया कि इस कार्यक्रम में और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम अथवा एन.आर.ई.पी., आर.एल.जी.पी. में बहुत थोड़ा ही संबंध है और यह अकेला ही दूसरों से अलग चल रहा है। गरीब किसानों को एक जुझारू ट्रेड यूनियन के रूप में संगठित करना कदाचित् भूमि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू करने का एक और उपाय हो सकता है।

कृषि के विषय में गांधी जी का दर्शन : गांधी जी ने अपना जीवन, समाज, कृषि और ब्रह्मांड की समष्टिपूर्ण दृष्टि को भारतीय कृषि की समस्या पर लागू किया और इस विषय में एक निश्चित दर्शन को विकसित किया। उनका दर्शन औपनिषदिक सत्य पर आधारित था : पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते..... जैसे जीवन और विश्व की एकता। जिस नए समाज को वे प्रतिष्ठित करना चाहते थे उसे उन्होंने सर्वोदय समाज की संज्ञा दी। गांधी जी की मृत्यु के बाद इस अवधारणा को विनोबा जी ने साकार किया।

सर्वोदय समाज : विनोबा जी ने कहा "सर्वोदय समाज..... मात्र एक संगठन नहीं है। यह एक उर्जस्वी शब्द है जो क्रान्तिकारी विचारों का अभिव्यंजक है।"..... संगठनों में वह शक्ति नहीं है जो महान् शब्दों में है। शब्दों में बनाने और साथ ही बिगाड़ने की शक्ति है। ये मनुष्यों और राष्ट्रों को उठा भी सकते हैं और गिरा भी सकते हैं। हमने इन महान् शब्दों में से एक को अपनाया है। इसका क्या अर्थ है? हम इने गिनों की उन्नति नहीं चाहते; बहुतों की भी नहीं, न ही सबसे अधिक संख्या की..... हमारा संतोष हर एक के कल्याण से ही, ऊंचे के भी और नीचे के भी, ताकतवर के भी और कमजोर के भी, बुद्धिमान के भी और जड़ के भी' है। सर्वोदय उदात्त और सर्वग्राही भाव को अभिव्यक्त करता है। इस आदर्श का यदि मन से और वचन से अनुसरण किया जाए और व्यवहार में पालन किया जाये तो यह न केवल भूमि सुधारों को लागू करने में सहायक होगा बल्कि गांधी जी के सपनों के सर्वोदय समाज की भी रचना करेगा।

विनोबा जी कहा करते थे, "गरीबों के लिए मैं अधिकार प्राप्त करने के लिए परिश्रम कर रहा हूं। धनिकों के लिए मैं नैतिक विकास प्राप्त क़रने के लिए परिश्रम कर रहा हूं। यदि एक भौतिक दृष्टि से ऊपर उठता है तो दूसरा आध्यात्मिक दृष्टि से, तो नुकसान में कौन है? इसके अतिरिक्त, भूमि क्या है? यह किसी के लिए कैसे संभव है कि वह अपने आपको भूमि का स्वामी समझे? हवा और पानी की तरह, जमीन भी ईश्वर की है। इस पर अपना अकेले का दावा करना स्वयं ईश्वर की इच्छा का विरोध करना है। और ईश्वर की इच्छा का विरोध करके कौन सुखी हो सकता है? मधुमक्खी फूलों को नुकसान पहुंचाए बिना शहद जमा करती है। क्या हम भूस्वामियों को नुकसान पहुंचाए बिना जमीन इकट्ठा नहीं कर सकते?"

अभी तक भारत में भूमि संबंधी न्याय-व्यवस्था असफल रही है। हमने इसके विषय में बातें की हैं, लेकिन जब इसे लागू किया गया तब घोर निराशाजनक अनुभव हुआ। ऐसा क्यों? क्योंकि

विनोबा जी कहा करते थे, "गरीबों के लिए मैं अधिकार प्राप्त करने के लिए परिश्रम कर रहा हूं। धनिकों के लिए मैं नैतिक विकास प्राप्त करने के लिये परिश्रम कर रहा हूं। यदि एक भौतिक दृष्टि से ऊपर उठता है तो दूसरा आध्यात्मिक दृष्टि से, तो नुकसान में कौन है?"

न ही लोग और न ही भूस्वामी इसके लिये तैयार हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को अपना प्रस्ताव पास किये हुए छः दशाब्दियां बीत गईं और ग्रामीण सुधार के कानूनों के मुख्य पक्षों को संविधान की नवीं सूची में रखने में 48 वर्ष अथवा करीब पांच दशाब्दियां बीत गईं। अक्सर कहा जाता है, "कानून की अपनी सीमाएं हैं और कानून को तोड़ने वाले कानून बनाने वालों की अपेक्षा अधिक चतुर हैं।" अभीष्ट परिणामों को प्राप्त करने के लिये हमें स्वयं अपने आप को नियम में बांधने पर जोर देना चाहिए।

संदर्भ

1. भाटिया, बी.एम., फैमीन्स इन इण्डिया, कोणार्क पब्लिशर्स, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1991 पृ. 14-17

2. दत्त प्रभात और दत्त चन्दन, दि वैस्ट बंगाल पंचायती राज एक्ट, 1944, इन स्टेट पंचायत एक्ट्स, वॉलण्टरी एक्शन

नैटवर्क इण्डिया (वानी), नई दिल्ली, 1995 द्वारा प्रकाशित, पृ. 175-193

3. दत्त रुद्र और सुन्दरम, के.पी.एम., इण्डियन इकोनोमी, एस. चांद एण्ड कम्पनी लिमिटेड, 1993, नई दिल्ली, पृ. 428-439

4. दत्त देव रिपोर्ट टु गांधी, गांधी स्मारक निधि, नई दिल्ली, 1982, पृ. 71-130

5. गंगराडे, के.डी., पॉवर टु दि पॉवरलैस, कुरुक्षेत्र (इंगलिश) जिल्द 93, संख्या 7, अप्रैल 1995, पृ. 3-8

6. रिग्बी एण्ड्यू, प्रैक्टिकल यूटोपियनिज्म : ए गांधीयन एप्रौच टु रूरल कम्यूनिटी डैवलपमैण्ट इन इण्डिया, कम्यूनिटी डैवलपमैण्ट जरनल, जिल्द 20, संख्या 1, 1985, पृ. 2-9

7. टेनिसन हल्लन, विनोबा भावेज़ रिवोल्यूशन ऑफ लव, डब्ल्यू.डी.विल्स, बम्बई 1961 पृ. 45, 69, 122, 135, 136 और 221

8. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, ए स्टैप फॉरवर्ड (संपादकीय), शुक्रवार, अगस्त 25, 1995, नई दिल्ली, पृ. 10

टिप्पणी : मैं डा. रामाश्रय शर्मा का बहुत आभारी हूं जिन्होंने इस लेख को लिखने में मेरी सहायता की।

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उप कुलपति (Pro-Vice Chancellor) हैं। वे टाटा इंस्टीट्यूट आफ सोशल साइंसेज़, बंबई सहित अनेक प्रतिष्ठित संस्थानों में विज़िटिंग प्रोफेसर रहे हैं। ग्रेट ब्रिटेन के मानचेस्टर विश्वविद्यालय, कनाडा में टोरेन्टो के समाज विज्ञान संस्थान और इस्रायल में हैफा विश्वविद्यालय में भी अध्यापन- कार्य कर चुके हैं। वे बैंकाक (थाइलैंड) में शरणार्थियों के लिए संयुक्त उच्चायोग में समाज विज्ञान विभाग के अध्यक्ष रहने के अलावा संयुक्त राष्ट्र की कई संस्थाओं में विभिन्न पदों पर कार्य कर चुके हैं। लेखक ग्रामीण एवं शहरी सामुदायिक विकास, गांधीवादी विचारधारा, समाज विकास और समाज कल्याण जैसे विषयों के विशेषज्ञ हैं और इन विषयों पर उनके लेख प्रतिष्ठित पत्रिकाओं और समाचारपत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं।

VIJAYA BANK
A ONE-STOP
FINANCIAL SUPER MARKET
WITH
SPECIALISED BRANCHES
AND
INNOVATIVE SCHEMES

SPECIALISED BRANCHES
- CAPITAL MARKET SERVICE
- NRI
- OVERSEAS
- CORPORATE BANKING
- PERSONAL BANKING
- FUNDS TRANSFER SERVICE

200 branches in India
in Karnataka

VIJAYA BANK
(A Government Of India undertaking)
H.O. 41/2, Trinity Circle, M.G.Road.
Bangalore - 560 001
Your partner in progress

INNOVATIVE SCHEMES
- VIJAYASHREE UNITS
- VIJAYA STOCK INVEST
- VIJAYA GIFT BOND

V
– CASH
– STOCK
– EQUIP

भारत में भूमि सुधारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रदीप पंत

लेखक के अनुसार यद्यपि देश से जमींदारी प्रथा समाप्त की जा चुकी है लेकिन जमींदार और उनके वारिस आज भी बड़े प्रभावशाली हैं। उनके पास काफी ज्यादा बेनामी जमीनें हैं। भूमिहीन किसानों में जो जमीनें बांटी गईं उनमें से बहुत-सी जमीनें बंजर थीं। लेखक का मानना है कि आजादी के बाद गांवों की और किसानों की स्थिति में सुधार हुआ है। सबसे बड़ी बात यह है कि उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है।

किसानों के शोषण की कहानी युग-युगों पुरानी है। धरती पुत्र होते हुए भी अक्सर उनका अपनी धरती पर अधिकार नहीं होता। वे अन्न उपजाते हैं लेकिन प्रायः स्वयं दाने-दाने को मुहताज रहते हैं। बड़े-बड़े फार्मों में वे एक छोर से दूसरे छोर तक फसल लहलहा देते हैं, लेकिन इन फार्मों के एक छोटे से टुकड़े को अपना कहने के लिए वे तरसते रहते हैं। कई बार वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी जिस खेत पर खेती करते हैं, एक दिन पता चलता है कि कर्ज में डूबे होने के कारण वह खेत उनके हाथों से निकल गया।

किसानों की इस दुर्दशा को दूर करने के लिए आजाद भारत में भूमि सुधार के अनेक कदम उठाए गए जैसे जमींदारी प्रथा और बिचौलियों की समाप्ति, जमीन की हदबंदी, फालतू जमीन का वितरण आदि। इन सब उपायों के पीछे किसानों के संघर्ष की लंबी कहानी है, जिसे जाने बिना हम भूमि सुधारों की महत्ता को समझ नहीं सकते।

देश में ब्रिटिश शासन के मजबूती से जड़ें जमा लेने के परिणामस्वरूप समाज के सभी वर्गों की स्थिति बिगड़ती चली गई। लेकिन सबसे बुरा असर पड़ा किसानों पर क्योंकि जमीन के साथ उनके रिश्ते टूटने लगे। ब्रिटिश शासन से पहले किसान खेती तो करते ही थे, जमीन भी उनकी थी। हां, उस जमीन से मिलने वाली फसल का एक हिस्सा नजराने के तौर पर सरकार या राजा को मिलता था। लेकिन जमीन राजा की जायदाद न थी, जायदाद वह किसान की ही थी और नजराना एक निश्चित मात्रा में नहीं दिया जाता था, बल्कि साल में जितनी फसल होती थी उस हिसाब से दिया जाता था। अगर ज्यादा फसल हुई तो ज्यादा नजराना और कम फसल हुई तो कम नजराना। यही नहीं, कभी ब्रिटिश शासन से पूर्व मुगल बादशाहों को अपने किले, इमारतें या महल आदि बनाने के लिए जमीन की जरूरत पड़ी तो उन्होंने उस पर जबरन कब्जा नहीं किया, वरन् उसे किसानों से खरीदा—भले ही यह खरीद कम दामों पर की गई हो। लेकिन अंग्रेजों ने सत्ता पर काबिज होने और धीरे-धीरे पांव पसारने के साथ ही साथ इस परंपरागत व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया। ईस्ट इंडिया कंपनी ने न केवल भूराजस्व या मालगुजारी वसूलने की व्यवस्था आरंभ की बल्कि हर साल यह भूराजस्व बढ़ता चला गया। इससे किसानों के ऊपर भयानक आर्थिक चोट पड़ने लगी। श्री विश्वमित्र उपाध्याय अपनी पुस्तक 'भारत का मुक्ति संघर्ष और रूसी क्रांति' में लिखते हैं "कंपनी (यानी ईस्ट इंडिया कम्पनी) ने 1794 में एक नियम बनाकर यह व्यवस्था की कि रैयत के लिए जमींदारों से कृषि भूमि का पट्टा लेना जरूरी है। इस पट्टे में मालगुजारी की दर निश्चित रहती थी। इस कानून द्वारा रैयत को भूमि के वास्तविक मालिक के बजाय मालगुजारी देने वाला काश्तकार बना दिया गया।"

कहना न होगा कि इस व्यवस्था के पीछे बड़ी चालाकी से बनाई गई योजना छिपी थी। अंग्रेजों ने इस कानून के जरिये किसानों को उनके मालिकाना हक से बेदखल कर दिया था और स्वयं सामने आए बिना जमींदारों को अपना प्रतिनिधि या यूं कहा जाए कि मालगुजारी वसूलने वाला एजेंट बना दिया था। लेकिन पूरी आजादी जमींदारों को भी नहीं दी गई थी क्योंकि मालगुजारी या लगान देना उनके लिए जरूरी था। मतलब यह कि यदि वे मालगुजारी या लगान न दे सकें तो जमीन जब्त। इस तरह कम्पनी सरकार ने मालगुजारी वसूलने वालों को एक ओर परोक्ष रूप से जमीन का मालिक बना दिया, ताकि उनके जरिये लूट की जा सके और दूसरी ओर उन पर भी अंकुश लगा दिया। परिणामस्वरूप 1793 में बिहार, बंगाल, उड़ीसा आदि में कई जगह जमींदारों द्वारा मालगुजारी या लगान न वसूल पाने के कारण बहुत सी जमीन नीलाम कर दी गई। बहरहाल, इस नई शोषणकारी व्यवस्था का अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए जमीदारों ने समर्थन किया और यह समर्थन वर्षों-वर्षों जारी रहा। रजनी पामदत्त ने अपनी पुस्तक 'आज का भारत' में 1928 का उल्लेख करते हुए बंगाल के 'लैंड ओनर्स एसोसिएशन' द्वारा वाइसराय को दिए गए अभिनंदन पत्र की चर्चा की है जिसमें खुले शब्दों में कहा गया था—"महामहिम इस बात का पूर्ण विश्वास कर सकते हैं कि जमींदार लोग सरकार को पूरा समर्थन देंगे तथा पूर्ण निष्ठा के साथ सरकार की मदद करेंगे।" इससे जाहिर है कि अंग्रेज सरकार ने ग्रामीण भू-व्यवस्था को न केवल पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, बल्कि उस पर पूर्ण वर्चस्व भी कायम कर लिया था। इसी का परिणाम है कि बहुत से किसानों की भूमि जमींदारों के हाथों में चली गई, वे धीरे-धीरे जमीन के मालिक बन गए तथा दिनोंदिन अधिकाधिक

देश में ब्रिटिश शासन के मजबूती से जड़ें जमा लेने के परिणामस्वरूप समाज के सभी वर्गों की स्थिति बिगड़ती चली गई। लेकिन सबसे बुरा असर पड़ा किसानों पर, क्योंकि जमीन के साथ उनके रिश्ते टूटने लगे।

शक्तिशाली बनते गए और असली मालिक खेत-मजदूरों में परिवर्तित हो गए। दुर्भाग्यवश, यह क्रम, कम मात्रा में ही सही, आज भी जारी है। यह बात और है कि आज छोटे-छोटे किसानों के खेत मजदूरों में बदल जाने के कुछ दूसरे कारण भी हैं, जैसे कि छोटी जोत होने के कारण आधुनिक कृषि सुविधाओं का लाभ न उठा पाना और फलतः खेती का घाटे के सौदे में बदल जाना तथा अंततः अपने खेत बड़े खेत मालिकों के हाथ औने-पौने दामों में बेच कर न केवल खेत मजदूर बन जाना बल्कि अक्सर धीरे-धीरे बंधुआ मजदूरों में भी परिवर्तित हो जाना।

यद्यपि अंग्रेजों ने ईस्ट इंडिया कंपनी के समय से ही किसान और जमीन के रिश्ते बदलने शुरू कर दिये थे और अंततः उन्हें इसमें सफलता भी मिल गई तथा जमींदारों और ताल्लुकेदारों का एक शक्तिशाली वर्ग उनके हितों की रक्षा करने लगा, किंतु इसका मतलब यह नहीं कि किसान इस समस्त शोषण को चुपचाप देखते, झेलते और सहते रहे। इस दमनकारी व्यवस्था के खिलाफ किसानों और गिरिजनों ने समय-समय पर विद्रोह किए और ताकतवर ब्रिटिश फौज से उनकी कई टक्करें भी हुईं, जिनमें अनेक किसान और आदिवासी शहीद हुए। सन् 1783 में बंगाल के रंगपुर में किसानों ने जबरदस्त विद्रोह किया। सन् 1799 में चुआर में आंदोलन हुआ। सन् 1820 से लेकर बीसवीं शताब्दी में आजादी पाने के कुछ समय पहले तक कोलों, संथालों, रम्पाओं और मुंडाओं ने विद्रोह किए तथा बंगाल के मैमनसिंह, बारीसात तथा नादिया आदि जिलों में किसानों ने जमकर बगावत की। कई जगह इस विद्रोह और बगावत का नेतृत्व जमीदारों ने भी किया, क्योंकि यद्यपि वे ब्रिटिश सत्ता के एजेंट की भूमिका निभा रहे थे, किंतु कई बार ब्रिटिश सत्ता के स्वार्थों के आगे स्वयं उनके स्वार्थों पर भी आंच आती थी, मालगुजारी न अदा कर पाने के कारण उनसे जमीन छीन ली जाती थी। ऐसे में उनका बगावत पर उतर आना स्वाभाविक था। इसके अलावा इस विद्रोह का एक कारण धीरे-धीरे फैलती हुई राष्ट्रीयता की भावना तथा विदेशी शासन से मुक्ति की कामना भी थी। अत्यधिक दमन भी एक ऐसा ही कारण था, जिसके फलस्वरूप कई जगह किसानों के समक्ष बगावत पर उतर आने के अलावा कोई अन्य रास्ता बचा ही न था। महाराष्ट्र के पूना और अहमदनगर जिलों में सशस्त्र किसान विद्रोह हुए। उधर दक्षिण के मालाबार में मोपला किसानों ने आंदोलन किया और यह आंदोलन एक बार नहीं बल्कि 1836 से 1854 के बीच 22 बार हुआ। उधर 1907 में पंजाब के लाहौर, लायलपुर और फिरोजपुर जिलों में किसानों ने ऐसा उग्र विद्रोह किया कि उनके नेता लाला लाजपतराय और अजीत सिंह को निर्वासित ही कर दिया गया। लेकिन बिहार के चम्पारन अंचल में 1908 में निलहे गोरों के विरुद्ध पीड़ित किसानों का विद्रोह उनके आंदोलन के इतिहास का सबसे चमकता हुआ अध्याय है। इस आंदोलन की जड़ें बहुत गहरी थीं क्योंकि इसकी भूमिका पहले-पहल 1850-60 के दशक में ही प्रतिष्ठापित हो चुकी थी। बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रान्त आदि में जो नील की खेती होती थी उस पर अंग्रेजों का एकाधिकार था और वे किसानों को नील का उत्पादन करने के

लिए विवश करते थे। अंततः ऐसी स्थिति भी आई कि किसानों ने ये खेती करने से इंकार कर दिया और हजारों-लाखों किसान विद्रोह पर उतर आए।

कुल मिलाकर निलहे गोरों के विरुद्ध आरंभ हुआ किसान-विद्रोह कभी तेज और कभी धीमी गति से चलता रहा और एक दिन ऐसा भी आया जब इसकी गूंज-अनुगूंज कांग्रेस के मंच तक भी पहुंच गई। लखनऊ में सन् 1916 में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ, उसे नील आंदोलन के बहाने अंदर ही अंदर सुगबुगाते किसान आंदोलन की ओर आकृष्ट होने के लिए विवश होना पड़ा। यही नहीं बाद में महात्मा गांधी चम्पारन गए। उन्होंने किसानों से उन पर हुए अत्याचार की मार्मिक कहानियां सुनीं, उन्हें अंग्रेज कलेक्टर ने जिला छोड़ने का आदेश दिया जिसका पालन

अंग्रेज सरकार ने ग्रामीण भू-व्यवस्था को न केवल पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, बल्कि उस पर पूर्ण वर्चस्व भी कायम कर लिया था। इसी का परिणाम है कि बहुत से किसानों की भूमि जमीदारों के हाथों में चली गई, वे धीरे-धीरे जमीन के मालिक बन गए तथा दिनोंदिन अधिकाधिक शक्तिशाली बनते चले गए और असली मालिक खेत-मजदूरों में परिवर्तित हो गए। दुर्भाग्यवश, यह क्रम कम मात्रा में ही सही, आज भी जारी है।

करने से उन्होंने इंकार कर दिया, उन पर मुकदमा चलाया गया, हजारों की संख्या में किसान उनके समर्थन में अदालत के दरवाजे तोड़ कर अंदर घुस आए, और अंततः ब्रिटिश हुकूमत को गांधीजी व आंदोलनकारी किसानों के आगे झुकना पड़ा। यही नहीं, सरकार को एक आयोग गठित करना पड़ा जिसमें गांधी जी ने किसानों का प्रतिनिधित्व किया।

लाहौर में 26 जनवरी 1929 को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस के अखिल भारतीय सम्मेलन में जो अध्यक्षीय भाषण दिया, उसमें उन्होंने कहा कि देश के सामने तीन मुख्य समस्याएं हैं: अल्पसंख्यकों की समस्या, भारतीय राज्यों की समस्या और मजदूरों तथा किसानों की समस्या। साथ ही उन्होंने कहा कि औद्योगिक मजदूर तो भारत का एक छोटा भाग ही हैं, हालांकि वे तेजी से एक ताकत बनते जा रहे हैं और हम उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते, किंतु बड़ी समस्या किसानों की है और हमारे कार्यक्रमों के तहत उनकी मौजूदा हालत को जरूर शुमार किया जाना चाहिए– यानी उनकी हालत सुधारने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्होंने कहा– ''असली राहत तो भूमि से संबंधित कानूनों और जमीन की पट्टेदारी की वर्तमान व्यवस्था में भारी बदलाव लाकर ही दी जा सकती है।'' पंडित नेहरू ने आगे कहा– ''हमारे बीच यहां बड़े-बड़े जमींदार मौजूद हैं और हम उनका स्वागत करते हैं, लेकिन उन्हें यह महसूस कर लेना चाहिए कि व्यक्तियों द्वारा बड़ी-बड़ी जमीन-जायदादों की मिल्कियत यूरोप की पुरानी सामंती व्यवस्था जैसी प्रणाली है। पर यह प्रणाली दुनिया भर में तेजी से खत्म होती जा रही है। यहां तक कि जिन देशों में पूंजीवाद का शिकंजा कसा हुआ है, वहां भी बड़ी-बड़ी जमीन-जायदादें हिस्सों में बांट कर उन किसानों को दी जा रही हैं जो उन पर खेती-बाड़ी करते हैं।'' नेहरू जी ने कहा कि हमें अपने देश में भी ऐसा ही करना पड़ेगा और इसके लिए उन्होंने बड़े जमींदारों से सहयोग की अपील की।

इसके बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने 1930 में 'पूर्ण स्वराज्य' का जो ऐतिहासिक प्रस्ताव पारित किया उसमें भी किसानों के मुद्दे को सांकेतिक रूप में उठाया गया था। इसमें कहा गया था कि हमारी प्रतिदिन की जो औसत आमदनी है, उसमें से एक बड़ा हिस्सा मालगुजारी के रूप में किसानों से वसूल कर लिया जाता है।

यही नहीं, कांग्रेस के 1931 में आयोजित कराची अधिवेशन में 'स्वराज' की भावी कार्ययोजना के रूप में जो प्रस्ताव पास किया गया, उसके अंतर्गत कहा गया कि 'स्वराज' स्थापित होने पर किसानों द्वारा दी जाने वाली मालगुजारी कम की जाएगी और जहां जरूरी समझा जाएगा, वहां छोटे जमींदारों को राहत दी जाएगी।

सच बात तो यह है कि धीरे-धीरे किसान आंदोलन और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन एक-दूसरे के अभिन्न अंग हो गए। इस काम में कांग्रेस पार्टी और कम्यूनिस्ट पार्टी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन दोनों पार्टियों ने किसानों की भावनाओं, आकांक्षाओं, समस्याओं आदि के साथ अपने को जोड़ा। जगह-जगह किसानों के संगठन बनाए गए और उन्हें उनकी ताकत का अहसास कराया गया। लखनऊ में जहां कांग्रेस के कई ऐतिहासिक सम्मेलन हुए थे, जहां कम्यूनिस्टों ने लेखकों का 'प्रगतिशील लेखक संघ' बनाया, जहां कांग्रेस के झंडे तले मजदूर इकट्ठे हुए, वहीं 1936 में पहली बार 'अखिल भारतीय किसान सभा' की नींव रखी गई। इस सभा की स्थापना के बाद 1938 में किसानों ने बेगार, बेदखली, लगान वृद्धि आदि के खिलाफ राष्ट्रीय स्तर पर संघर्ष किये। किसान सभा की सदस्यता लाखों में पहुंच गई और किसानों ने न केवल अंग्रेजों के खिलाफ बल्कि राजा-महाराजाओं, जमींदारों

और सेठ-साहूकारों के खिलाफ भी संघर्ष करने का निर्णय लिया, क्योंकि अब तक वे समझ व जान चुके थे कि अंग्रेजों की सत्ता गोली-बारूद के साथ ही इनके कंधों पर भी टिकी हुई है। इस प्रकार किसान आंदोलन ने व्यापक जनाधार ग्रहण किया।

द्वितीय विश्व युद्ध के फलस्वरूप अंग्रेजों के कमजोर होने तथा स्वाधीनता आंदोलन के अधिकाधिक तेज होने के परिणामस्वरूप जब ऐसा लगने लगा था कि भारत की आजादी अब कुछ ही वर्षों की बात है तो राष्ट्रीय पुनर्निर्माण, आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए विभिन्न स्तरों पर योजनाएं भी बनाई जाने लगीं। इन सभी में खेती को प्राथमिकता देने और भूमि सुधारों का स्वरूप निर्धारित करने तथा उन्हें अमल में लाने की बात कही गई। जनवरी 1944 में सर्वश्री पुरूषोत्तम दास, ठाकुरदास, जे. आर. डी. टाटा, घनश्यामदास बिड़ला, आर्देशीर दलाल, श्रीराम, कस्तूरभाई लालभाई, ए.डी. श्रौफ और जौन मथाई ने भारत के आर्थिक विकास की योजना बनाई। इस विस्तृत योजना में देश के विकास के लिए धन जुटाने, जनसामान्य को रोटी, कपड़ा और मकान की न्यूनतम सुविधाएं देने, शिक्षा, जनस्वास्थ्य, जल आपूर्ति, राष्ट्रीय आय में वृद्धि के उपायों, बुनियादी उद्योगों, बिजली उत्पादन आदि

1936 में पहली बार 'अखिल भारतीय किसान सभा' की नींव रखी गई। इस सभा की स्थापना के बाद 1938 में किसानों ने बेगार, बेदखली, लगान वृद्धि आदि के खिलाफ राष्ट्रीय स्तर पर संघर्ष किये। किसान सभा की सदस्यता लाखों में पहुंच गई और किसानों ने न केवल अंग्रेजों के खिलाफ, बल्कि राजा-महाराजाओं, जमींदारों और सेठ-साहूकारों के खिलाफ भी संघर्ष करने का निर्णय लिया, क्योंकि अब तक वे समझ व जान चुके थे कि अंग्रेजों की सत्ता गोली बारूद के साथ ही इनके कंधों पर भी टिकी हुई है।

के लक्ष्य निर्धारित करने के साथ ही साथ भूमि सुधारों को भी प्रस्तावित किया गया। योजना में कहा गया– "कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए जरूरी है कि कुछ बुनियादी सुधार किए जाएं। जो सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न हल करना है, वह खेती की जोत के आकार को निर्धारित करने का है। इस समय औसत जोत तीन एकड़ से ज्यादा नहीं है जो कि छोटे-छोटे टुकड़ों में गांवों में फैली पड़ी है।" योजना में छोटी जोतों की समस्या को हल करने के लिए सहकारी खेती करने के विचार को प्रस्तुत करते हुए कहा गया– "इस व्यवस्था (यानी सहकारी खेती) के जरिए किसानों को वर्तमान जोतों पर उनके मालिकाना हक से बेदखल किये बिना कृषि हेतु जोतों का आकार बढ़ाना संभव होगा। सहकारी खेती को, यथाशीघ्र संभव बनाने के लिए, कुछ हद तक अनिवार्यतः लागू करना वांछनीय प्रतीत होता है।'

कहना न होगा कि टाटा और बिड़ला जैसे उद्योगपतियों ने देश के आर्थिक विकास की अपनी इस योजना के अंतर्गत सहकारी खेती पर बल देकर भूमि सुधार का जो प्रारूप प्रस्तुत किया, वह एकाएक ही सामने नहीं आ गया। दरअसल जब यह योजना बनाई गई, तब तक कांग्रेस में समाजवादी विचारधारा अत्यधिक प्रभावी हो चुकी थी, पंडित नेहरू जैसे प्रभावशाली नेता अपने को खुलेआम सोशलिस्ट तथा मजदूरों और किसानों का पक्षधर घोषित कर चुके थे और सोवियत संघ से अत्यधिक प्रभावित थे, जहां कि सहकारी खेती का प्रयोग सफल हो चुका था।

आजादी से पहले 'राष्ट्रीय नियोजन समिति' गठित की गई थी। इस समिति के अंतर्गत 'भूमि नीति, कृषि श्रमिक और बीमा संबंधी उपसमिति' की आजादी से एक साल पहले वर्ष 1946 में विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित हुई जो वस्तुतः स्वाधीन भारत की सरकार के लिए दिशा-निर्देश जैसी थी। रिपोर्ट में स्पष्ट शब्दों में एक राष्ट्रीय भूमि कानून बनाए जाने की महत्ता को रेखांकित करते हुए कहा गया कि जमींदार, ताल्लुकेदार, मालगुजार, कृषि ठेकेदार जैसे किसी भी प्रकार के बिचौलिए परजीवियों को मान्यता नहीं दी जानी चाहिए। इन वर्गों को दिए गए सभी अधिकार, पट्टे, सुविधाएं आदि राष्ट्रीय भूमि कानून के अंतर्गत निर्धारित संक्रमण काल के बाद समाप्त कर दिये जाने चाहिए। यदि कानूनन जरूरी हुआ तो इन्हें मुआवजे दिये जाएं, लेकिन संक्रमण काल समाप्त होने पर इनमें से किसी को भी परजीवी न बनने दिया जाए। यही नहीं, उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश भी की कि संक्रमण काल में छोटी और कम उपज वाली जोतों से कोई कर या भूराजस्व न लिया जाए। इसके साथ ही उप समिति ने किसानों की ऋण माफी, अकाल राहत, सिंचाई व्यवस्था बेहतर बनाने जैसे मुद्दों पर भी विस्तृत सिफारिश प्रस्तुत की। उसने अपने भूमि सुधार प्रस्तावों के अंतर्गत स्पष्ट शब्दों में लिखा कि खेती योग्य फालतू जमीन को समुदाय की संपत्ति माना जाए और उस पर यदि सामूहिक खेती न हो सके तो कम से कम सहकारी समिति बना कर खेती की जाए।

इसी के साथ मार्च 1946 में महान क्रांतिकारी मानवेंद्र नाथ राय ने 'पीपुल्स प्लान' प्रस्तुत किया जो मूलतः मार्च 1944 में बन गया था और जिसके संयोजक श्री वी.एम. तारकुंडे थे। इस 'पीपुल्स प्लान' के अंतर्गत कृषि पर विशेष बल देते हुए कहा गया– "खेती ही हमारी नियोजित अर्थव्यवस्था का आधार होगी

और अपनी योजना के आरंभिक दौर में हमें इसी पर केंद्रित होना पड़ेगा।" कारण यह कि यदि खेती पर जोर दिया जाएगा, जो देश की अधिकांश जनता की रोजी-रोटी का आधार है, तो इससे आंतरिक बाजार का विकास होगा, क्योंकि आजाद भारत में कृषि विकास पर ध्यान केंद्रित करने से किसानों की आमदनी बढ़ेगी। अतः आंतरिक बाजार का फैलना या विकसित होना स्वाभाविक है। आंतरिक बाजार के विकसित होने से उद्योगों को पनपने का मौका मिलेगा। कहने का मतलब यह कि एम.एन. राय और उनके साथियों की इस 'जनता की योजना' के अंतर्गत खेती और किसानों को सर्वाधिक अहमियत दी गई। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि हमारी जो वर्तमान कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है, उसमें

"कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए जरूरी है कि कुछ बुनियादी सुधार किए जाएं। जो सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न हल करना है, वह खेती की जोत के आकार को निर्धारित करने का है। इस समय औसत जोत तीन एकड़ से ज्यादा नहीं है जो कि छोटे-छोटे टुकड़ों में गांवों में फैली पड़ी है।"

व्यापक परिवर्तन करना जरूरी है, अन्यथा जमीन की उत्पादकता बढ़ नहीं पाएगी और यदि बढ़ भी गई तो उसका फायदा लगान वसूलने वालों और सूदखोरों को ही मिलेगा, जबकि जमीन जोतने वाले वास्तविक किसान गरीब के गरीब ही बने रहेंगे। व्यापक परिवर्तन के लिए इस 'जनता की योजना' के अंतर्गत जमीन का राष्ट्रीयकरण करने का प्रस्ताव रखा गया, ताकि जमीन जोतने वालों और राज्य के बीच कोई बिचौलिया न खड़ा हो। साथ ही यह भी प्रस्तावित किया गया कि किसानों के कर्जे एक सिरे से खत्म कर दिए जाएं, देश के बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं पर राज्य का प्रभावशाली नियंत्रण हो और ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के बीच वस्तुओं का आदान-प्रदान सहकारी समितियों के माध्यम से किया जाए।

यह टाटा और बिड़ला समूह द्वारा बनाई गई योजना से दो कदम आगे की योजना थी जिसके अंतर्गत किसानों, खासतौर पर छोटे किसानों, कृषि और भूमि सुधारों को विशेष महत्व दिया गया था। जब 15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हुआ और पंडित नेहरू के नेतृत्व में स्वाधीनता संघर्ष के तपे हुए कर्मठ नेताओं ने शासन की बागडोर संभाली तो उनके सामने प्रश्न था कि राजनीतिक आजादी तो मिल गई, किंतु देश का सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण कैसे किया जाए और विकास के लिए क्या-क्या प्राथमिकताएं तय की जाएं?

चूंकि सत्ता की बागडोर कांग्रेस के हाथों में आई थी, इसलिए उसी को यह प्रश्न हल करने थे। उसी को भारत की भावी प्रगति के लिए एक बुनियादी ढांचा और व्यवस्था खड़ी करनी थी। अतः 17 नवंबर, 1947 को नई दिल्ली में कांग्रेस ने बैठक करके ऐसा प्रस्ताव पास किया जिसमें देश के समग्र विकास के लिए कुछ दिशा-निर्देश तय किए गए। इस प्रस्ताव में यह भी हिदायत दी गई कि "सभी खनिज साधनों के साथ भूमि तथा उत्पादन और वितरण एवं आदान-प्रदान के सभी साधन समाज के होने चाहिए और अपने हित में उसी के द्वारा संचालित किए जाने चाहिए।"

इस प्रस्ताव को पारित करने के बाद पंडित नेहरू के नेतृत्व में एक आर्थिक कार्यक्रम समिति बनाई गई जिसने 11 दिसंबर, 1947 को एक बैठक आयोजित करके अपनी चार उपसमितियां गठित कीं। इनमें से एक उपसमिति कृषि से संबंधित थी जिसके संयोजक प्रोफेसर एन.जी. रंगा थे और दो सदस्य थे– श्री जयप्रकाश नारायण तथा प्रोफेसर एम.एल. दांतवाला। इस उपसमिति के जो विचारणीय विषय थे, उनमें कृषि उत्पादन बढ़ाने के उपाय सुझाना, खेती योग्य फालतू जमीन का उपयोग करना, भूमिहीन मजदूरों की हालत सुधारना, बेहतर फसल के लाभ किसानों तक पहुंचाना, ग्रामीण आबादी की आर्थिक हालत सुधारना आदि शामिल थे। समिति को यह दायित्व भी सौंपा गया कि वह कृषि वित्त व्यवस्था की समस्या पर विचार करे और जोतों के अधिकतम व न्यूनतम आकार को भी निर्धारित करे।

सभी उपसमितियों ने जब अपनी-अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत कर दी तो उसके बाद 25 जनवरी, 1948 को नई दिल्ली में मुख्य समिति की बैठक फिर हुई जिसने विभिन्न विषयों पर एक समग्र

यदि खेती पर जोर दिया जाएगा, जो देश की अधिकांश जनता की रोजी-रोटी का आधार है, तो इससे आंतरिक बाजार का विकास होगा, क्योंकि आजाद भारत में कृषि विकास पर ध्यान केंद्रित करने से किसानों की आमदनी बढ़ेगी। अतः आंतरिक बाजार का फैलना या विकसित होना स्वाभाविक है।

रिपोर्ट तैयार की। इसके अंतर्गत कृषि के संदर्भ में उत्पादन बढ़ाने, तकनीकी शिक्षा का प्रसार करने, नदी घाटी योजनाएं शुरू करने, अनाज भंडार बनाने, बीज सप्लाई करने, कृषि वित्त निगम बनाने आदि के उपाय तो सुझाए ही गए, भूमि सुधारों पर भी जोर दिया गया। इस संदर्भ में जो मुख्य सिफारिशें की गईं, वे थीं– (1) खेत जोतने वालों और राज्य के बीच सभी बिचौलियों को खत्म किया जाए तथा सहकारी समितियों जैसी मुनाफा न कमाने वाली एजेंसियां बना कर मध्यस्थों को हटा दिया जाए (2) राज्य को छोटी जोत वाले किसानों के लिए सहकारी खेती की प्रायोगिक

परियोजनाएं चलानी चाहिए (3) जोत की अधिकतम सीमा तय की जाए, अतिरिक्त जमीन ग्राम-सहकारी समितियों को सौंप दी जाए, छोटी जोतों की चकबंदी की जाए और उनके और छोटे होते जाने को रोकने के लिए कदम उठाए जाएं (4) वर्तमान भूराजस्व व्यवस्था के स्थान पर कृषि आय पर कर की दूसरी व्यवस्था लागू की जाए तथा (5) राज्य सरकारें कृषि मजदूरों को कर्ज से राहत दिलाने के लिए कदम उठाएं।

अंत में मुख्य समिति ने यह एक महत्वपूर्ण सिफारिश की कि कृषि, ग्रामीण और कुटीर उद्योगों, उद्योग, सहकारिता आदि के कार्यक्रमों की जो रूपरेखा विभिन्न उपसमितियों की संस्तुतियों के आधार पर तैयार की गई है, उसे लागू करने के लिए केंद्रीय स्तर पर स्थायी योजना आयोग का गठन किया जाए।

और इस प्रकार योजना आयोग का गठन हुआ, जिसने इस विशाल देश के चतुर्दिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का सूत्रपात किया। जब 1952 में पहली पंचवर्षीय योजना सामने आई तो उसमें कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। यह प्राथमिकता यों ही तय नहीं कर ली गई, बल्कि इसके पीछे यह हकीकत थी कि भारत गांवों का देश है, देश की 70 प्रतिशत से अधिक जनता गांवों में रहती है, वह मूलतः खेती पर निर्भर है, किंतु गुलामी के दौर में उसकी दशा निरंतर दयनीय होती गई। वह कर्ज में डूबती गई, उसके खेत छिन गए, कृषि आधारित उद्योग खत्म हो गए, अतः देश का विकास करना है तो कृषि को प्राथमिकता देनी होगी खेती खेतों की उपज बढ़ानी होगी, उसके लिए खाद, उपकरणों आदि के कारखाने लगाने होंगे, सिंचाई की बेहतर व्यवस्था करनी होगी, आदि। आजादी का नेतृत्व करने वाले नेताओं ने देश के गांव-गांव में घूम कर देखा था कि किसानों की दुर्दशा के लिए केवल अंग्रेज जिम्मेदार थे, बल्कि जमींदार, बिचौलिये, सूदखोर आदि और भी अधिक जिम्मेदार थे, अतः इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को समाप्त करने, भूमि सुधार लागू करने, पंचायतों को अधिकार-पत्र बनाने तथा सहकारिता और सामुदायिक विकास को तरजीह देने पर जोर दिया गया। इस सोच के पीछे, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पंडित नेहरू जैसे नेताओं पर सोवियत समाजवादी विचारों का प्रभाव भी था जिसके तहत शोषित-पीड़ितों को न्याय दिलाने को प्राथमिकता दी जाती थी ताकि एक समतावादी-समाजवादी समाज की रचना की जा सके। साथ ही इसके पीछे यह मंशा भी निहित थी कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जो अभूतपूर्व प्रगति दुनिया भर में हुई है, उसके लाभ भारत के वंचित-पीड़ित जनवासियों को भी दिलाए जाएं।

पहली पंचवर्षीय योजना में तो कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी ही गई। इसके बाद दूसरी से लेकर आठवीं पंचवर्षीय योजना तक के दौर में भी किसी न किसी रूप में कृषि लगातार महत्वपूर्ण बनी रही है। इसी कारण जमींदारी प्रथा की समाप्ति के लिए कदम उठाए गए, हदबंदी कानून बना कर लागू किए गए तथा छोटे किसानों का शोषण रोकने के लिए विभिन्न कदम उठाए गए। भारत सरकार के प्रकाशन 'भारत' (1993) के अनुसार देश में "भूमि सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत खेती करने की बिचौलिया प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया है। परिणामतः दो करोड़ से अधिक काश्तकार सीधे सरकार के संपर्क में आ गए हैं। इसके अलावा राज्यों में पड़ी 60 लाख हेक्टेयर बंजर, परती अथवा अन्य कोटि की भूमि में से अधिकांश का वितरण भूमिहीनों अथवा सीमांत भूस्वामियों में कर दिया गया है। अधिकांश राज्यों में पट्टेदारों को मालिकाना अधिकार दिए जाने, काश्तकारों, उप-काश्तकारों/शेयर क्रापरों के लिए काश्तकारी की सुरक्षा से संबद्ध कानून बनाए गए हैं। एक करोड़ दस लाख काश्तकारों को एक करोड़ हेक्टेयर भूमि

इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता कि अतिरिक्त भूमि के वितरण के नाम पर बहुत सी बंजर जमीन भूमिहीन किसानों को दे दी गई, जिससे उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। विनोबा भावे के ऐतिहासिक भूदान आंदोलन के साथ भी अक्सर ऐसा हुआ।

के मालिकाना अधिकार दिए जा चुके हैं। पचास और साठ के दशकों में विभिन्न राज्यों में भूमि हदबंदी कानून बनाए गए। परिणामतः राज्यों में 9.93 लाख हेक्टेयर से भी अधिक भूमि का अधिग्रहण किया गया और भूमिहीन गरीबों को इसमें से 7.5 लाख हेक्टेयर भूमि वितरित की गई। इसके साथ ही भूमि अभिलेखों को अद्यतन बनाने की दिशा में विभिन्न राज्यों में ठोस कार्रवाइयां की गई हैं तथा 602 लाख हेक्टेयर भूमि की चकबंदी कर दी गई है।"

हो सकता है कि उपरोक्त आंकड़ों में कुछ अतिशयोक्ति हो। यह भी निर्विवाद है कि यद्यपि आज जमींदारी और बिचौलियों की व्यवस्था समाप्त हो चुकी है, किंतु गांवों में पुराने जमींदार या उनके वारिस आज भी प्रभावशाली हैं और उनमें से अनेक के पास बेनामी जमीनें हैं जो भूमि सुधार के उपायों का परोक्ष उल्लंघन है। इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता कि अतिरिक्त भूमि के वितरण के नाम पर बहुत सी बंजर जमीन भूमिहीन किसानों को दे दी गई, जिससे उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। विनोबा भावे

(शेष पृष्ठ 31 पर)

भूमि सुधार : सफलता की शर्तें

प्रो. कमल नयन काबरा

भूमि सुधारों की असफलता हमारे लोकतंत्र और विकास प्रयासों की सबसे कष्टपूर्ण कमी है। भूमि सुधारों की असफलता पर अपनी वेदना व्यक्त करते हुए लेखक ने कहा है कि यदि लोकतंत्र और विकास को बेमानी नहीं रहना है तो सभी नीतियों व कार्यक्रमों की नींव व्यापक भूमि सुधारों द्वारा रखी जानी चाहिए। बिना भूमि सुधारों के हमारी व्यवस्था में कोई मूलभूत बदलाव संभव नहीं है। लेखक ने भूमि सुधारों की असफलता का खुलासा करते हुए बताया है कि सभी कायदा कानूनों को ताक पर रखकर सीधे लाठी अपने हाथ में रखने की भूमि-स्वामियों की ताकत इन सुधारों की राह में सबसे बड़ी अड़चन है। निष्कर्ष के तौर पर लेखक ने कहा है जब तक भूमिहीन मजदूरों को आर्थिक, राजनीतिक और संगठनात्मक रूप से शक्तिशाली नहीं बनाया जाता भूमि के स्वामित्व में परिवर्तन की आशा नहीं की जा सकती।

लगभग आधी सदी से हम हिन्दुस्तानी आजाद हवा में सांस ले रहे हैं। हमने आजादी प्राप्त करने के बाद जमीन के सही, न्यायपूर्ण, समानता-मूलक और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने वाले बंटवारे का राष्ट्रीय संकल्प किया था। गरीबों और भूमिहीनों का देश में प्रबल बहुमत है। भूमि-सुधारों से ये बहुसंख्यक लोग बहुत लाभान्वित हो सकते हैं। हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था ने हमें इस बहुमत से समर्थित सरकारें दी हैं, संघीय और राज्य दोनों स्तरों पर। परन्तु कैसी विडम्बना है कि फिर भी ये बहुमत समर्थित सरकारें जमीन के बंटवारे जैसे बहुसंख्यक हितैषी कार्यक्रम को लागू नहीं कर पायी हैं।

लोकतंत्र की स्थापना के साथ-साथ हमने इन सालों में विकास की दिशा में लगातार प्रयास देखे हैं, खासकर राजकीय स्तर पर। राज्य की नीतियों और कार्यक्रमों का सबसे मुख्य मुद्दा रहा है विकास की गति को तेज करना। भूमि सुधार कार्यक्रम विकास की गति और दिशा दोनों ही के लिए अहम माने गये हैं। जहां तक देश के सबसे दीन-हीन लोगों का सवाल है, विकास का कोई भी कार्यक्रम उन्हें उतना लाभ नहीं दिला सकता जितना भूमि सुधारों द्वारा संभव हो सकता है। वास्तव में भूमिहीन गरीब बाजार और संगठित आर्थिक कामों में भागीदार तभी बन सकते हैं जब उन्हें जीवन यापन हेतु जरूरी अनाज उगाने के लिये कम से कम जमीन का एक टुकड़ा मिल सके। यह सही है कि चौथी योजना से इन भूमिहीन मजदूरों के लिए कुछ रोजगार कार्यक्रम चलाये गये हैं। पर ये रोजगार कार्यक्रम विकास के साधन नहीं वरन असहनीय और अमानवीय गरीबी से थोड़ी-सी तात्कालिक राहत दिलाकर, उन्हें जिन्दा भर रहने देने के साधन हैं। विकास में भागीदारी एक दूसरी प्रकार का, गुणात्मक स्तर पर एक भिन्न किस्म का प्रश्न है जिसका पहला कदम कृषि योग्य जमीन का काश्तकारों के हक में न्यायपूर्ण और समान वितरण है, खासकर गैर कृषि कार्यों और रोजगार के अवसरों के सीमित फैलाव के संदर्भ में। वैसे भी हमारे यहां ब्रिटिश साम्राज्यवादी हुकूमत और अन्याय-अत्याचार का पर्याय सामन्तवाद साथ-साथ कदम से कदम मिलाकर चले थे। इसलिये साम्राज्यवाद उन्मूलन जिस तरह विकास की आवश्यक शर्त था वैसे ही सामन्तवाद को दफन करना भी विकास यात्रा पर प्रयाण करने का आवश्यक पाथेय था।

यदि हमारे उपरोक्त अभिमत में कुछ दम है वाजिब और सार्थक होने का तो उससे कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। ये निष्कर्ष आज के संदर्भ में, जब हम करीब आधी शताब्दी से चली आ रही नीतियों का पुनर्मूल्यांकन कर नयी नीतियों की रचना कर रहे हैं या ऐसा करने का दम भर रहे हैं, हमारे उपरोक्त विचारों के निष्कर्ष और भी ज्यादा रेखांकित हो जाता है आने वाली विकास नीति के लिए।

भारत के वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संकट के सभी विश्लेषण एक बात पर सहमत हैं। वह बात है इस संकट के जन्म और प्रबल होने में भूमि-सुधार कार्यक्रमों की असफलता की भूमिका। यह असफलता हमारे लोकतंत्र और विकास प्रयासों की सबसे गंभीर, सबसे ज्यादा कष्टपूर्ण कमी है। यदि लोकतंत्र और विकास को बेमानी नहीं रहना है, मात्र ढकोसला नहीं बने रहना है या उन्हें आम आदमी के लिये सार्थक, सर्वांगीण तथा टिकाऊ बनना है तो सभी नीतियों और कार्यक्रमों की नींव व्यापक, प्रभावी, दूरगामी और मूलभूत भूमि-सुधारों द्वारा ही रखी जा सकती है। इतने विचार, अनुसंधान, वाद-विवाद और आंदोलन हो चुके हैं जमीन व्यवस्था की पुनःसंरचना को लेकर कि इन बातों को दोहराना दिन में दीया जलाने की तरह अनावश्यक होगा।

वास्तव में भूमिहीन गरीब बाजार और संगठित आर्थिक कामों में भागीदार तभी बन सकते हैं, जब उन्हें जीवन यापन हेतु जरूरी अनाज उगाने के लिये कम से कम जमीन का एक टुकड़ा मिल सके।

भूमि-सुधारों की विफलता लोकतंत्र और विकास प्रयासों की विफलता है। इस विफलता के कारणों पर बहुत कुछ लिखा गया है। दूसरे देशों के अनुभवों के आधार पर भी कई निष्कर्ष निकाले गये हैं। बिना उन सब बातों को यहां दोहराये और बिना उनकी उपयोगिता और सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह लगाये, मैं यह कहना चाहूंगा कि ये अध्ययन-विश्लेषण उन शर्तों और परिस्थितियों को उजागर नहीं कर पाते हैं जिनके आधार पर इन सुविचारित, सुस्पष्ट कमियों को दूर किया जा सके और ऐसी सामाजिक ताकतें और स्थितियां पैदा की जा सकें जिनके आधार पर भूमि-सुधारों के लड़खड़ाते, अधूरे, विकृत किये गये कार्यक्रम को नये सिरे से सफल, सार्थक और प्रभावी अंजाम दिया जा सके।

भूमि-सुधार की असफलता, अपूर्णता और विकृति के लिये कानून की खामियां, प्रशासन की कमजोरियां, राज्य, प्रशासन तथा मुख्य राजनीतिक दलों का वर्ग-गत चरित्र और सीमित निहित स्वार्थ, गरीबों, भूमिहीनों, दलितों और शोषितों के प्रभावशाली और ताकतवर संगठनों का अभाव, भूमि रिकार्डों की कमियां, भूमिपतियों का प्रभुत्व आदि कारणों के बारे में काफी लिखा जा चुका है। ये सब कारण निस्संदेह भूमि-सुधारों को निरस्त करने में अपना योगदान देते आये हैं और अपनी यह कारगुजारी जारी भी रखे हुए हैं। कुछ लोगों ने कुछ बचकाने सुझाव भी दिये हैं। जैसे कि सरकारी स्तर पर, सरकारी अनुदान द्वारा भूमिहीन खेतिहरों को संगठित करके भूमि-सुधारों की सशक्त लाबी बनाना। जन-हितैषी मुखौटा ओढ़ने के लिये भूमि-सुधार कानूनों को संविधान का संरक्षण देने के कानूनी प्रबंध को संरजाम देकर भूमि-सुधारों के प्रति प्रतिबद्धता के दावे पेश किये जाते हैं, मानो कानून स्वतः अपने आप सामाजिक ताकतों के प्रतिरोध के बावजूद लागू हो जायेंगे। इन पचास वर्षों के दौरान हुए कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर गौर करना जरूरी है। उद्योगों में काफी वृद्धि के बावजूद वे जनसंख्या के एक छोटे से हिस्से को रोजगार दे पाए हैं। हरित क्रांति और खाद्यान्न उत्पादन के नये कीर्तिमान छूने के बावजूद ग्रामीण क्षेत्र में बहुत बड़ी जनसंख्या अभी भी पर्याप्त क्रय-शक्ति से वंचित है। सेवाओं के क्षेत्र का अपरिपक्व विकास मुख्य रूप से अनौपचारिक, असंगठित क्षेत्र में हुआ है जो विकास की विषमताओं और उससे वंचित रहने पर गरीबों और साधनहीनों के जीवन-यापन का एक मात्र अवलम्बन रह जाता है।

यदि लोकतंत्र और विकास को बेमानी नहीं रहना है, मात्र ढकोसला नहीं बने रहना है या उन्हें आम आदमी के लिये सार्थक, सर्वांगीण तथा टिकाऊ बनना है तो सभी नीतियों और कार्यक्रमों की नींव व्यापक, प्रभावी, दूरगामी और मूलभूत भूमि सुधारों द्वारा ही रखी जा सकती है।

राजनीति में पंचायतों आदि के बावजूद धन-जन और लाठी के मालिकों का दबदबा बढ़ गया है। नौकरशाही को विकास और परिवर्तन का अगुवा और कारक मानने की भूल अब तो और ज्यादा अक्षम्य हो गयी है क्योंकि अब उनका क्रीतदास और भाड़े के अनुचरों वाला आत्म केन्द्रित चरित्र और ज्यादा मुखर और मजबूत हो गया है। जमीन का बाजारीकरण बहुत बढ़ गया है। गैर कृषि क्षेत्र तथा नगरीकरण के जमीन पर बढ़ते कब्जे के साथ-साथ उसकी व्यापक खरीद-फरोख्त होने लगी है। सबसे गंभीर खतरे की बात तो यह है कि गन्दी, गैर-कानूनी, दो नम्बरी अर्थव्यवस्था के साधन-सम्पन्न तथा नव-धनाढ्य लोग शहरों और कस्बों के आसपास तथा रमणीय टूरिस्ट स्थानों के आसपास अपने पैसे के बल पर खेती की जमीन को औने-पौने खरीदकर "फार्म हाउसेज" या आरामगाह बना रहे हैं। इन आरामगाहों के जरिये काले धन, रिश्वतखोरों और अपराधियों, राजनीतिज्ञों तथा सेठ लोगों की सांठ-गांठ और ज्यादा बढ़ रही है और करों की चोरी में भी ये मददगार होते हैं।

ऐसी स्थिति में जो कारण आम तौर पर बताये जाते हैं वे यह आभास देते हैं कि भूमि सुधारों के विरुद्ध जबरदस्त शक्तियों का समीकरण बन गया है। इसलिये यह प्रचार किया जाता है कि अब बिना मूलभूत क्रांति के भूमि का न्यायपूर्ण, विकासोन्मुख बंटवारा संभव नहीं है। क्या यह नहीं कहा जा सकता कि बिना भूमि-सुधारों

सबसे गंभीर खतरे की बात तो यह है कि गन्दी, गैर-कानूनी, दो नम्बरी अर्थव्यवस्था के साधन-सम्पन्न तथा नवधनाढ्य लोग शहरों और कस्बों के आसपास तथा रमणीय टूरिस्ट स्थानों के आसपास अपने पैसे के बल पर खेती की जमीन को औने-पौने खरीदकर "फार्म हाऊसेज" या आरामगाह बना रहे हैं।

के हमारी व्यवस्था में कोई मूलभूत बदलाव नहीं आ सकता है। नयी आर्थिक नीतियां भूमि-सुधार विरोधी शक्तियों को खुली छूट दे रही हैं। नतीजा यह है कि अब पश्चिम बंगाल और कर्नाटक में भूमि-सुधारों को देसी-परदेसी पूंजी के हित में कमजोर करने की मुहिम शुरू हो गयी है। ऐसी स्थिति में इस तरह के कारण यह संकेत देने लगे हैं कि अभिमन्यु की तरह भूमि-सुधार एक चक्रव्यूह में फंस गये हैं और इनका इस चक्रव्यूह से बाहर निकलना संभव नहीं है।

मेरी समझ में इस तरह की निराशापूर्ण मानसिक स्थिति बनाने की और भूमि-सुधारों को अब कार्यान्वयन की सीमा से बाहर मानने के कोई सच्चे और पुख्ता आधार नहीं है। यह तो हमारी सोच की दरिद्रता, हमारी प्रतिबद्धता की लड़खड़ाहट और भूमि-सुधार विरोधी ताकतों के दबदबे का ही नतीजा है कि भूमि-सुधारों की सफलता की शर्तों का उचित खुलासा तक नहीं हो पाता है, उन पर अमल की बात तो दूर रही।

उपनिवेशी, सामन्ती भारत ने आजादी के बाद कानून-सम्मत शासन और कानून की नजर में सब भारतीयों की समानता के सिद्धान्त अपनाये। इस संवैधानिक कानूनी पृष्ठभूमि में जमीन की मिल्कियत बदलने के लिये कानूनी और प्रशासनिक व्यवस्था का दामन थामा गया। यदि कानून को बनाने वाले राजनीतिज्ञ और कानून का प्रारूप लिखने वाले विधिवेत्ता भूमि-सुधारों के प्रति सचमुच निष्ठावान होते और इस कानून को लागू करने के लिये भू-स्वामित्व और राजस्व के सारे कागजात सही, पूरी और नवीनतम स्थिति दिखाते तब भी इस कार्यक्रम की सफलता के लिये कुछ और शर्तें बाकी रह जातीं। यदि कानून को लागू करने वाले लोग जमींदारों और भूपतियों के प्रभाव से मुक्त होते, कोर्ट-कचहरी इस काम में आड़े आने वाले उपकरण नहीं बनते राजनीतिज्ञ दृढ़-प्रतिज्ञ होते तो भी कुछ मोटी मुश्किलें और बाकी रहतीं। यहां सबसे कड़ी लक्ष्मण रेखा थी भूस्वामियों की अपनी कानूनी, गैर-कानूनी, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और कानून को ताक पर रख सीधे लाठी अपने हाथ में थामने की ताकत। सरकार जमीन का पट्टा दे सकती है, शायद एकबारगी भूमि का आधिपत्य भी सम्भलवा दे, पर जल में रहकर मगर से बैर करने की मूर्खता तो गरीब भूमिहीन नहीं करेगा जो कई तरह से भूस्वामियों पर निर्भर है और उनके 'जल' में रहता है। उसे न तो सरकारी पुलिस की सुरक्षा और पनाह मिल सकती है और न ही वह कोर्ट-कचहरी के दरवाजे ही खटखटा सकता है। जैसे जाति-पंचायतें बागियों का हुक्का पानी बन्द कर देती थीं उसी तर्ज पर भूस्वामी, उनके कारिन्दे, लठैत, व्यापारी, साहूकार जमींदार की जमीन पर सचमुच अधिकार करने वाले का जीना दूभर कर सकते हैं। दूर बैठी दिल्ली सरकार या राज्य प्रशासन

नयी आर्थिक नीतियां भूमि सुधार विरोधी शक्तियों को खुली छू दे रही हैं। नतीजा यह है कि पश्चिम बंगाल और कर्नाटक में भी भूमि सुधारों को देसी-परदेसी पूंजी के हित में कमजोर करने की मुहिम शुरू हो गयी है। ऐसी स्थिति में इस तरह के कारण या संकेत देने लगे हैं कि अभिमन्यु की तरह भूमि सुधार एक चक्रव्यू में फंस गये हैं और इनका इस चक्रव्यूह से बाहर निकलना संभ नहीं है।

कानूनी समानता को धरती पर जीती जागती सच्चाई में नहीं बदल सकती है। आज भी, काफी चेतना, काफी संघर्षों, काफी संगठनात्मक शक्ति, आर्थिक निर्भरता में कमी के बावजूद लठैतों का आतंक तथा कानून और व्यवस्था का पंगुपन वह स्थिति नहीं आने देता है जहां भूमि की मिल्कियत बड़ी मात्रा में लाखों करोड़ लोगों के लिए बदल सके।

इस तरह की आर्थिकेत्तर, गैर कानूनी धौंसपट्टी व्यावहारिक रूप में प्रशासन और राजनीतिज्ञों की नपुंसकता में बदल जाती है। गरीबों को कानूनी शासन और संवैधानिक अधिकारों से वंचित करने के पीछे कुछ आर्थिक कारण भी हैं। जमीन अभी भी ग्रामीण जीवन में शक्ति का सबसे बड़ा स्रोत है। रोटी, रोजी और मकान तीनों उसकी गिरफ्त में हैं जो जमीन पर कब्जा जमाये हुए हैं। जमीन पर लोगों की निर्भरता को घटाये बिना, जमीन के एवं आर्थिक संसाधन के बतौर विकल्प पैदा किये बिना, आप जमी

के मालिक की ताकत नहीं घटा सकते। इसलिये जब तक खेती-बाड़ी आदि कामों के बदले अन्य वैकल्पिक रोजगार तथा आमदनी प्राप्ति के साधन पर्याप्त मात्रा में, विकेन्द्रित रूप में, जहां तक संभव हो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से गरीब, भूमिहीन मजदूरों के सामूहिक अधिकार में उपलब्ध नहीं होते हैं, कानून के सामने

यदि कानून को लागू करने वाले लोग जमींदारों और भूपतियों के प्रभाव से मुक्त होते, कोर्ट-कचहरी इस काम में आड़े आने वाले उपकरण नहीं बनते, राजनीतिक दृढ़-प्रतिज्ञ होते तो भी कुछ मोटी मुश्किलें और बाकी रहतीं। यहां सबसे कड़ी लक्ष्मण रेखा थी भूस्वामियों की अपनी कानूनी, गैर-कानूनी, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और कानून को ताक पर रख सीधे लाठी अपने हाथ में थामने की ताकत।

समानता, कानून-सम्मत शासन, नीतियां और कार्यक्रम भूमि का सही लेखा-जोखा और उसके स्वामित्व में परिवर्तन आदि लागू नहीं हो सकते। इसी तरह इस ध्येय की पूर्ति के लिए गरीब ग्रामीणों की शक्ति बढ़ाने के लिये सामाजिक सुरक्षा, साल भर न्यूनतम मजदूरी पर काम की गारंटी तथा वास्तव में गरीबों को उपलब्ध हो सकने वाली उपयोगी सामाजिक उपभोग सेवायें (जैसे शिक्षा, चिकित्सा, स्वच्छ, रोगाणुरहित पेयजल, शौचालय) भी आवश्यक हैं। राज्य को इन कामों को सबसे ज्यादा प्राथमिकता देनी होगी। अत्यधिक छोटे तथा छितरे गांव भी इस तरह गरीबों के शक्तिकरण में बाधक होंगे। जमीन के उचित और न्यायपूर्ण वितरण से पहले गरीबों का आर्थिक, राजनीतिक, संगठनात्मक और सांस्कृतिक शक्तिकरण करके ही जमीन के असमान बंटवारे को बदला जा सकता है। गरीब इसी आधार पर संगठित हो सकते हैं जब उन्हें भूपतियों से अलग, स्वतंत्र मानवीय गरिमामय जीवन यापन के अवसर मिलें। ऐसे अवसर अपने आप में ही श्रेयस्कर हैं और विद्यमान शक्ति केन्द्रीकरण को तोड़ने के उपाय के रूप में भी। इस तरह की नीतियों और कार्यक्रमों को लागू करवाने में भूपतियों की रोड़ेबांजी कोई खास जोरदार ढंग से आड़े नहीं आयेगी, हो सकता है राज्य के इन प्रयासों का वे समर्थन भी कर दें क्योंकि इस तरह उन्हें भी अपने संसाधनों और सम्पत्ति के प्रयोग के अधिक मानवीय आर्थिक रास्ते मिल सकते हैं। तब वे और अधिक जमीन खरीदने में निवेश करने, उसे छिपाने, बटाईदारी के छद्म तरीके

जमीन अभी भी ग्रामीण जीवन में शक्ति का सबसे बड़ा स्रोत है। रोटी, रोजी और मकान तीनों उसकी गिरफ्त में हैं जो जमीन पर कब्जा जमाये हुए है।

निकालने आदि के बदले ग्रामीण उद्योगों और सेवाओं में निवेश करने की ओर प्रवृत्त हो सकते हैं। इन कार्यक्रमों का प्रभाव धीमा, काफी समय लेने वाला पर प्रभावी, पुख्ता और दूरगामी होगा।

भूमि सुधार के समर्थकों को इन मुद्दों पर विचार कर उन्हें ठोस रूप देना चाहिये। इसमें राज्य और बाजार की ताकतों के अलावा लोगों के अपने पारस्परिक सहकार पर आधारित अपनी मदद आप करने वाले संगठनों की भी काफी बड़ी भूमिका हो सकती है।

लेखक भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर हैं। वे ब्रिटेन के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के नेहरू स्मारक न्यास के प्रथम नेहरू स्कालर हैं। एक दशक से ज्यादा दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य के अलावा पिछले दो दशक से ज्यादा समय से वे भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं, उसके विकास, नीतियों और आयोजना पर अनुसंधान और परामर्शी कार्य कर रहे हैं। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान में वे सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों और सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों के प्रबंधकों को प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। अंग्रेजी में उनकी एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी में उनकी पुस्तक 'भारतीय सार्वजनिक वितरण व्यवस्था' को खाद्य और नागरिक आपूर्ति मंत्रालय का प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया। विभिन्न प्रतिष्ठित शैक्षिक पत्रिकाओं और समाचार पत्रों में उनके लेख छपते रहते हैं। प्रोफेसर काबरा भारतीय खाद्य निगम के निदेशक और सरकार की कई समितियों के अध्यक्ष भी हैं।

भूमि सुधार एवं गरीबी उन्मूलन

प्रो. कामता प्रसाद

देश में गरीबी उन्मूलन के उद्देश्य से भूमि सुधार कार्यक्रम की क्या भूमिका हो सकती है, इसकी चर्चा करते हुए लेखक ने बताया है कि देश में जो भूमि गरीब परिवारों में वितरित की जा चुकी है उससे मात्र 50 लाख परिवारों को फायदा हुआ है। यदि मुकद्दमों और अन्य विवादों में फंसी भूमि भी वितरित कर दी जाए तो 22 लाख और गरीबों को लाभ पहुंचेगा। देश में गरीबों की कुल संख्या को देखते हुए यह बहुत कम है। अंत में लेखक ने कहा है गांवों में गरीबी की व्यापक समस्या और कृषि पर जनसंख्या के बढ़ते भार को देखते हुए केवल भूमि सुधार द्वारा इस महान समस्या को हल नहीं किया जा सकता है, कुछ सहायता अवश्य मिल सकती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति को करीब पचास वर्ष होने वाले हैं। पर गरीबी की समस्या अभी भी बरकरार है। यह ठीक है कि पिछले पन्द्रह वर्षों में भारत सरकार द्वारा किए गए विशेष प्रयासों के चलते इस स्थिति में सुधार हुआ है। पर अभी भी समस्या अत्यन्त गंभीर है। विभिन्न अनुमानों के अनुसार भारतीय जनसंख्या का तीस से चालीस प्रतिशत गरीबी की रेखा से नीचे है। गरीबी उन्मूलन के उद्देश्य को प्राप्त करने में भूमि सुधार की क्या भूमिका हो सकती है, इसी प्रश्न पर हम यहां विचार करेंगे।

जैसा कि हम जानते हैं, सम्पत्ति स्वामित्व तथा रोजगार आमदनी के मुख्य साधन हैं। जो गरीब हैं, उनके पास सम्पत्ति नहीं के बराबर है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि ही सम्पत्ति का मुख्य आधार है।

पर गरीब ग्रामीण जनता या तो भूमिहीन है या उनके पास बहुत कम भूमि है। ऐसी हालत में यदि इन गरीबों को कृषि योग्य भूमि का स्वामित्व दिला दिया जाए तो इससे इनकी गरीबी दूर होने में मदद मिलेगी। अब प्रश्न यह उठता है कि यह कहां तक सम्भव है?

भारत के सभी राज्यों में भूमिहीन मजदूरों तथा सीमान्त किसानों में भूमि वितरण के लिए भूमि सीमा अधिनियम लागू हैं। ये अधिनियम करीब 35 वर्ष पुराने हैं। जुलाई 1972 में इन पर राष्ट्रीय स्तर पर विचार विमर्श कर संशोधन किए गए। तब से इन नियमों के तहत काम हो रहा है।

इन अधिनियमों के चलते आरम्भ से लेकर 30 नवम्बर 1994 तक 73.42 लाख एकड़ जमीन भूमि सीमा के ऊपर घोषित हो चुकी है। इसमें से 62.82 लाख एकड़ जमीन का कब्जा भी मिल गया है तथा 51.03 लाख एकड़ जमीन 49.49 लाख गरीब परिवारों में वितरित कर दी गई है। सबसे ज्यादा प्रभाव पश्चिम बंगाल में पड़ा है जहां कि 9.48 लाख एकड़ जमीन 20.82 लाख गरीब परिवारों में वितरित की गई है। दूसरा महत्वपूर्ण राज्य आन्ध्र प्रदेश है जहां 5.53 लाख एकड़ जमीन 4.81 लाख परिवारों में वितरित की गई है। महाराष्ट्र का तीसरा नम्बर है। यहां 5.51 लाख एकड़ जमीन 1.40 लाख परिवारों में वितरित की गई है। इसके विपरीत पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक, गुजरात तथा तमिलनाडु में कम जमीन का वितरण हुआ है। लाभान्वित परिवारों में आधे से ज्यादा लोग अनुसूचित जाति तथा जनजाति के हैं।

ऊपर दिए गए आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि गरीब लोगों में वितरित करने के लिए जितनी जमीन उपलब्ध हो सकी है, वह बहुत ही कम है। यह तो देश की समस्त कृषि योग्य भूमि का मात्र दो प्रतिशत ही है। लाभान्वित परिवारों की संख्या भी

बहुत ही कम है। यह कहा जा सकता है कि भूमि सीमा से ऊपर घोषित जमीन 73.42 लाख एकड़ है जबकि वितरित जमीन केवल 51.03 लाख एकड़। बाकी 22.39 लाख एकड़ जमीन में से कुछ तो विवादास्पद है तथा उनके सम्बन्ध में मुकदमे चल रहे हैं। कुछ जमीन बंजर है यानि कृषि के लायक नहीं है। पर यदि हम यह मान भी लें कि बाकी सभी अतिरिक्त (surplus) घोषित जमीन भी गरीब परिवारों में वितरण के लिए उपलब्ध हो जाए, तब भी एक एकड़ प्रति परिवार के हिसाब से अधिक से अधिक केवल 22 लाख और परिवारों को लाभान्वित किया जा सकता है। गरीबों की संख्या को ध्यान में रखते हुए यह बहुत ही कम है।

इसके अलावा एक और बात जो सामने आती है वह यह है कि प्रति लाभान्वित व्यक्ति को औसत रूप से लगभग एक एकड़ जमीन ही मिल पाई है। पश्चिम बंगाल में तो यह और भी कम है केवल आधा एकड़। इसके अलावा यह भी पाया गया है कि इस प्रयोजन के लिए जो जमीन उपलब्ध होती है वह अधिकतर घटिया किस्म की है। साथ ही यह भी देखा गया है कि भूमि वितरण से लाभान्वित होने वाले परिवार प्रायः इतने गरीब होते हैं कि उनके पास खेती करने के लिए अपनी पूंजी भी यथेष्ट मात्रा में नहीं होती है। इन्हें बैंकों से साख मिलने में भी कठिनाई होती है। यह ठीक है कि सरकार द्वारा उन्हें बीज, खाद आदि के लिए वित्तीय सहायता देने की योजना है। पर अब तक के अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह सहायता भी कम ही लोगों को मिल पाती है। फिर इसकी मात्रा भी यथेष्ट नहीं है। इन सब कारणों के चलते भूमि सुधार कानूनों का गरीबी उन्मूलन में अब तक कोई विशेष योगदान नहीं हो सका है।

जैसे-जैसे सिंचाई का विस्तार होगा, वैसे-वैसे अतिरिक्त जमीन मिलने की संभावना होगी बशर्ते कि प्रशासन सतर्क रहे और सिंचाई के साधन उपलब्ध होने के साथ ही नई भूमि सीमा लागू कर दी जाए।

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या प्रति गरीब परिवार को केवल एक एकड़ जमीन देने से इसे हम गरीबी रेखा के ऊपर ला सकते हैं? इसके लिए कितनी जमीन चाहिए, इसका सही अनुमान नहीं है। यह बहुत कुछ जमीन की किस्म तथा सिंचाई के साधनों पर निर्भर करेगा। पिछड़ा क्षेत्र विकास की राष्ट्रीय समिति के अनुसार इसके लिए करीब दो एकड़ सिंचित जमीन चाहिए। असिंचित जमीन की मात्रा तो और भी ज्यादा होगी। एक अनुमान के अनुसार ऐसी जमीन की मात्रा पांच एकड़ होनी चाहिए। प्रति व्यक्ति इतनी जमीन देने पर लाभान्वितों की संख्या और कम हो जाएगी। अतः प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भूमि वितरण द्वारा केवल थोड़े से लोगों को ही गरीबी की रेखा से ऊपर लाया जा सकता है। अतः गरीबी दूर करने की रणनीति में यह तरीका अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सकता।

इस सम्बन्ध में एक और संभावना भी है। यदि अधिनियमों में संशोधन कर प्रति परिवार अधिकतम भूमि सीमा को और कम कर दिया जाए तो सरकार को भूमिहीनों तथा गरीब परिवारों में वितरण के लिए अधिक जमीन मिल सकती है। पर मौजूदा सामाजिक और आर्थिक ताकतों को देखते हुए यह काम उतना आसान नहीं है। इससे मध्यम वर्ग तथा सशक्त पिछड़ी जातियों के हितों की क्षति होगी जिनकी संख्या लाखों में है। वर्तमान परिस्थिति में कोई भी सरकार उन्हें छेड़ना पसन्द नहीं करेगी। फिर इससे ज्यादा जमीन प्राप्ति की उम्मीद भी नहीं है। सिंचाई के विस्तार से इस दिशा में कुछ राहत मिल सकती है। जैसा कि हम जानते है सिंचित भूमि पर भूमि सीमा कम निश्चित की गई। अतः जैसे-जैसे सिंचाई का विस्तार होगा, वैसे-वैसे अतिरिक्त जमीन मिलने की सम्भावना होगी बशर्ते कि प्रशासन सतर्क रहे और सिंचाई के साधन उपलब्ध होने के साथ ही नई भूमि सीमा लागू कर दी जाए। दूसरी तरफ जनसंख्या में लगातार वृद्धि के चलते कृषि भूमि के टुकड़े होते जा रहे हैं। बड़े जोतों का आकार छोटा होता जा रहा है। अतः इनकी कुल संख्या तथा इनके अन्तर्गत कुल जमीन की मात्रा भी कम होती जा रही है। इसके चलते अतिरिक्त जमीन मिलने की संभावना भी कम होती जा रही है।

वस्तुस्थिति का सही-सही पता तभी चलेगा जबकि भूमि के रिकार्ड भी ठीक हों। पिछले दस वर्षों से भारत सरकार इस दिशा में प्रयत्न कर रही है परंतु सफलता केवल आंशिक ही मिली है। इस काम को जितनी जल्दी पूरा किया जाए उतना अच्छा होगा।

भूमि सीमा अधिनियम के तहत घोषित अतिरिक्त भूमि के आंकड़े कहां तक सही हैं, इसको लेकर विशेषज्ञों में विवाद है। National Sample Survey तथा Agricultural Census के आंकड़ों के आधार पर कुछ लोगों ने यह अनुमान लगाया है कि अतिरिक्त भूमि की मात्रा बहुत ज्यादा होनी चाहिए। इन दो प्रकार के आंकड़ों में अन्तर के कुछ कारण तो स्पष्ट हैं। यदि किसी परिवार में परिवार के मुखिया के अलावा बालिग सदस्य हों या

परिवार में पांच से अधिक लोग रहते हों तो कानूनन उस परिवार की भूमि सीमा बढ़ जाएगी। धार्मिक ट्रस्टों तथा बड़े-बड़े बाग-बगीचे वालों को भूमि सीमा से ज्यादा जमीन रखने की इजाजत है। पर कुछ कारण अस्पष्ट भी हैं जैसे जमीन का बेनामी स्वामित्व या भूमि सीमा अधिनियम के पालन में लापरवाही। वस्तुस्थिति का सही-सही पता तभी चलेगा जबकि भूमि के रिकार्ड भी ठीक हों। पिछले दस वर्षों से भारत सरकार इस दिशा में प्रयत्न कर रही है परन्तु सफलता केवल आंशिक ही मिली है। इस काम को जितनी जल्दी पूरा किया जाए उतना अच्छा होगा। इसके बाद उन भूपतियों का पता लगाना आसान हो सकेगा जिनके पास अभी भी भूमि सीमा से काफी अधिक जमीन है। आरम्भ में बहुत बड़े-बड़े भूमिपतियों की अतिरिक्त जमीन को लेना ही ठीक होगा। राजनीतिक तथा आर्थिक, दोनों ही दृष्टिकोणों से यह लाभदायक रहेगा।

बेहतर तो यह होता कि जमीन सीमांत किसानों में वितरित की जाती क्योंकि वे भी गरीबी की रेखा से नीचे ही जीवन बसर करते हैं। उनके पास थोड़ी बहुत जमीन पहले से ही रहती है। अतः उन्हें अपनी खेती करने की आदत रहती है। यदि एकाध एकड़ जमीन उन्हें और मिल जाये और वह एक जगह हो तो उनके पास उतनी जमीन हो जायेगी कि वे उससे उपज पैदा कर गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सकते हैं।

अब तक हमने वितरण हेतु अतिरिक्त जमीन की उपलब्धता पर विचार किया। गरीबी निराकरण के सम्बन्ध में एक और बात ध्यान देने योग्य है। अतिरिक्त जमीन का वितरण किस तरह के लोगों में हो। अभी तक यह जमीन प्रायः भूमिहीन किसानों में वितरित की गई है। पर यह पाया गया है कि पूंजी के अभाव तथा जोखिम उठाने की अक्षमता के कारण इन लोगों ने उस जमीन का सदुपयोग नहीं किया है। या फिर वितरित जमीन भी इतनी कम रहती है कि इसके चलते इतनी आमदनी नहीं हो पाती कि लाभान्वित परिवार गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सकें। बेहतर तो यह होता कि जमीन सीमान्त किसानों में वितरित की जाती क्योंकि वे भी गरीबी की रेखा से नीचे ही जीवन बसर करते हैं। उनके पास थोड़ी बहुत जमीन पहले से ही रहती है। अतः उन्हें अपनी खेती करने की आदत रहती है। यदि एकाध एकड़ जमीन उन्हें और मिल जाये और वह एक जगह हो तो उनके पास इतनी जमीन हो जायेगी कि वे उससे उपज पैदा कर गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सकते हैं। अतः इस प्रकार से, उपस्थित कठिनाइयों के बावजूद, भूमि सुधार को गरीबी निराकरण प्रोग्राम से जोड़ा जा सकता है।

अन्त में यह फिर से बताना जरूरी है कि भारत के गांवों में गरीबी की एक व्यापक समस्या है। कृषि पर जनसंख्या के अधिक भार को देखते हुए, केवल भूमि सुधार के द्वारा ही इस विकराल समस्या का निराकरण सम्भव नहीं है। हां, भूमि सुधार द्वारा इसमें कुछ सहायता अवश्य मिलेगी बशर्ते कि उपरोक्त वर्णित सुझावों को ध्यान में रखा जाए।

लेखक भारत के एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं ग्रामीण विकास विशेषज्ञ हैं। वे दिल्ली स्थित भारतीय लोक प्रशासन संस्थान में अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास के प्रोफेसर हैं। इसके पूर्व वे भारत सरकार के कृषि मूल्य आयोग तथा न्यूनतम मजदूरी सलाहकार परिषद के अध्यक्ष के रूप में काम कर चुके हैं। 1983 में वे भारतीय आर्थिक परिषद के अध्यक्ष रहे। ग्रामीण विकास के विशेषज्ञ के रूप में वे अन्य देशों में सलाहकार भी रहे हैं। उन्होंने कई एक शोध ग्रन्थों तथा शोध पत्रों की रचना की है। विकास संबंधी दो महत्वपूर्ण स्वैच्छिक संस्थाओं के भी वे अध्यक्ष हैं।

गांव के सभी लोगों को, जो भूमि की काश्त करना चाहते हों, भूमि मिलनी चाहिए। इन सबको देने पर अगर कुछ बचे, तो दो-चार एकड़ किसी के पास अधिक रहने में कोई उज्र नहीं।

—विनोबा भावे

दो सपने : कितने पूरे, कितने अधूरे

रफीक शास्त्री

गांधीजी चाहते थे कि गांव स्वावलम्बी हों। उनकी सभी जरूरतें गांव में ही पूरी हों। इसके अलावा उनका सपना था गांव में स्कूल, खेल का मैदान, चौपाल, रंगमंच जैसी सुविधाएं हों। दूसरी तरफ पंडित नेहरू का भी गांवों के बारे में सपना था। वे गांवों की तरक्की के लिए ट्रेक्टरों, ट्यूबवेलों, सिंचाई और बिजली के लिए बड़े-बड़े बांधों, उर्वरकों और मशीनों को जरूरी मानते थे। आजादी के 48 वर्ष बाद ये दोनों सपने कितने पूरे हुए इसका लेखा जोखा पढ़िए इस लेख में।

गांवों की उन्नति और विकास का एक सपना गांधी जी का था और एक सपना पंडित जवाहरलाल नेहरू का था। गांधी जी देश की तरक्की की बुनियाद गांवों को मानते थे। उनकी कल्पना स्वावलम्बी गांवों के समूह विकसित करने की थी। ऐसे ग्राम समूह, जो मनुष्य की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में पूरी तरह स्वावलम्बी हों। उनके नजदीक ऐसे गांवों की श्रृंखला अपने लोगों के खाने के लिए अनाज और कपड़ों के लिए कपास उगाये। गांव के लोग उस कपास से रूई, रूई से धागे और धागों से हथकरघों पर कपड़े बुनेंगे। पशुओं के लिए चारा उगाया जायेगा और उनके चरने के लिए शामलात भूमि होंगी। इससे जो भूमि बचेगी उस पर नकदी फसल उगायी जायेगी। गांव में रंगमंच, स्कूल, खेल का मैदान और चौपाल होगी। गांव का शासन ग्राम पंचायत के हाथ में होगा जिनका चुनाव गांव वाले हर साल करेंगे।

ग्राम स्वराज की कल्पना

ये वे विचार हैं, जो महात्मा गांधी के लेखों और भाषणों से उभर कर सामने आते हैं। गांधी जी दक्षिण अफ्रीका में अपने प्रवास के दौरान आश्रम जीवन-पद्धति के कुछ प्रयोग कर चुके थे। भारत आने पर उन्होंने अपने इन प्रयोगों को जारी रखा। साबरमती और वर्धा के आश्रम में उन्होंने ग्राम्य जीवन की अपनी कल्पना को व्यावहारिक रूप में बरतने की भी कोशिश की।

सामन्ती व्यवस्था का तोड़

ब्रिटिश शासन काल में महात्मा गांधी जी सक्रिय राजनीति से कुछ हट कर ग्राम सुधार का प्रयोग कर रहे थे, उस वक्त गांवों की हालत बहुत खस्ता थी। जमींदारी और सामंतवादी व्यवस्था में गरीब किसान और खेत मजदूर पिस रहे थे। भूमि का स्वामित्व ज्यादातर छोटे-बड़े जमींदारों और सामन्तों के हाथ में था। भूमि प्रकृति की देन है। मनुष्य ने इस भूमि पर अनाज और दूसरी फसलें उगाना सीखा। मगर राजनीतिक व्यवस्था से जुड़ कर भूमि का स्वामित्व राजतंत्र और बलतंत्र के अधीन हो गया। बलवान और धनवान प्रकृति से बेमोल मिली भूमि के स्वामी बन बैठे। राजशाही व्यवस्था ने अपने राजतंत्र को मजबूत बनाने के लिए जागीरें बांटनी शुरू कीं और इस प्रकार गांवों में भूस्वामियों और भूमि पर काम करके फसल उगाने वालों के दो वर्ग बन गए। फसल का मालिक भूस्वामी बन गया और फसल उगाने वाले अपनी खून-पसीने की कमाई के लिए भूस्वामियों के मुहताज बन गये। गांधी जी जब ग्राम स्वराज की कल्पना कर रहे थे, उस वक्त तक भूमि के स्वामित्व का सवाल काफी विकराल रूप ले चुका था। गांधी जी समस्याओं के नैतिक समाधान के पक्षधर थे। सामन्ती व्यवस्था में खेतों पर काम करने वालों का कल्याण कैसे हो, यह बात उनकी निगाह से ओझल नहीं थी।

भूमि का स्वामित्व - 'ट्रस्टीशिप'

गांधी जी ने औद्योगिक कल-कारखाने और कृषि भूमि के स्वामित्व के मामले में 'ट्रस्टीशिप' का विचार दिया था। उनका मानना था कि धन-दौलत, कल कारखानों, और भूमि को किसी को अपनी व्यक्तिगत मिल्कियत नहीं मानना चाहिए। उनके

मालिक वस्तुतः उनके 'ट्रस्टी' या 'न्यासी' हैं। उन्हें सबका विश्वास प्राप्त करके सबके भले के लिए इनका उपयोग करना चाहिए। गांधी जी के ग्रामस्वराज की कल्पना 'ट्रस्टीशिप' के इसी नैतिक मूल्य पर आधारित थी। ये कल्पना समाजवादी व्यवस्था से भिन्न थी, जिसमें मिल्कियत का अधिकार राज्य का माना जाता है। 'ट्रस्टीशिप' और पंचायती व्यवस्था के गिर्द ही गांधीजी का ग्राम स्वराज का सपना केन्द्रित था।

ये ग्राम पंचायतें उस राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था की विखरी कड़ियां थीं जो गांधी जी आजादी के बाद हिन्दुस्तान में लागू देखना चाहते थे। मगर इन कड़ियों को राज्य और केन्द्र की शासन व्यवस्था से कैसे जोड़ा जाए, इस पर पूरी तरह विचार करने का उन्हें अवसर ही नहीं मिल पाया। गांधी जी की एक कार्यशैली ओर थी कि वह व्यावहारिक समस्याओं पर उसी वक्त गहराई से विचार करते थे, जब उसे सचमुच हल करने का मौका आता था। डा. आविद हुसैन ने अपनी पुस्तक 'द वे ऑफ नेहरू एन्ड गांधी' में उसका बहुत सुगम विश्लेषण किया है। देश की आजादी से पहले और बाद में देश में साम्प्रदायिक हिंसा की जो आग भड़की,

गांधी जी जब ग्राम स्वराज की कल्पना कर रहे थे, उस वक्त तक भूमि के स्वामित्व का सवाल काफी विकराल रूप ले चुका था। गांधी जी समस्याओं के नैतिक समाधान के पक्षधर थे। सामन्ती व्यवस्था में खेतों पर काम करने वालों का कल्याण कैसे हो यह बात उनकी निगाह से ओझल नहीं थी।

गांधी जी उसे बुझाने में जी जान से लग गये। स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने का जब वक्त आया, उस वक्त उन्हें अपने ग्राम स्वराज की कल्पना में रंग भरने का अवसर नहीं मिला और साम्प्रदायिकता की आग बुझाने में उन्होंने अपनी आहुति दे दी।

दूसरा सपना

गांव की शान्ति और सादगी के प्रति पंडित जवाहरलाल नेहरू के मन में बहुत आकर्षण था। पंडित जी ने अपनी मृत्यु से पहले जो वसीयत लिखवाई थी उससे यह साफ झलक जाता है कि वह प्रकृति के सीधे-सादे ओर धरती के निकट की जिन्दगी पर कितने मोहित थे। गांवों के शान्त जीवन के पीछे कितना दुख दर्द है उसका भी उन्हें अच्छी तरह एहसास था। गांवों के इसी दुखी जीवन को बदलना उनका एक सपना था।

गांधी जी चम्पारन के किसानों की लड़ाई लड़ते हुए भारतीय राजनीति के क्षितिज पर आये थे। मगर अब यह बात प्रायः लोग भूलते जा रहे हैं कि पंडित नेहरू को अपने राजनीतिक जीवन के बिल्कुल प्रारम्भिक चरण में अवध के किसानों के बीच जाने और उनकी समस्याओं को देखने, समझने का अवसर मिला था। पंडित मोतीलाल नेहरू के विलासितापूर्ण जीवन वाले पारिवारिक परिवेश में पले-बढ़े, इंग्लैण्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले पंडित जवाहर लाल नेहरू ने जब भारतीय राजनीति में पहला कदम रखा तो शुरू में ही उनका सामना ग्रामीण जीवन की कठोरता से हुआ। पंडित जी को ग्रामीण जीवन की कटुताओं का अनुभव अवध के किसानों के दरिद्र जीवन को देख कर हुआ।

नेहरू जी की पीड़ा

जवाहरलाल जी जब से इंग्लैड से आये थे, गर्मियों का मौसम पहाड़ों पर गुजारते थे। उन्हें भारत के मैदानी इलाकों की चिलचिलाती धूप और उसमें अर्द्धनग्न किसानों की कड़ी मेहनत का कोई अनुभव नहीं था। उसी जमाने में अवध के सब अनपढ़ किसान नेताओं ने अवध के किसानों को हुकुमत और जमींदारी के जुल्म के खिलाफ आवाज उठाने के लिए संगठित किया था। उनमें से कुछ लोग पंडित नेहरू और उनके साथियों को बुलाकर ले गए थे ताकि वे अपनी आंखों से किसानों की दुर्दशा देख सकें। गर्मी के दिनों में देहात के इस दौरे ने पंडित जी के जीवन पर गहरा असर डाला। अपनी आत्मकथा में वह लिखते हैं कि उनकी मुसीबतों को देखकर मेरी गर्दन शर्म से झुक गई। शर्म तो मुझे अपनी विलासिता की जिन्दगी और शहरों की तुच्छ राजनीति पर आयी जो देश के इन अर्धनग्न लोगों की ओर नहीं देखती थी। हिन्दुस्तान की गरीबी और पिछड़ेपन को देखकर दिल कटा जाता था।

पंडित जी के जीवन के इस नये अनुभव और उनकी मनोदशा पर टिप्पणी करते हुए डा. एस. गोपाल लिखते हैं "पंडित नेहरू किसानों की बेचैनी को राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर मोड़ देना चाहते थे कि मगर उस वक्त वह ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वामित्व सम्बन्धी समस्याओं का पूरी तरह आकलन नहीं कर पाये थे। महात्मा गांधी भूमि के स्वामित्व की समस्या को समझते थे और 'ट्रस्टीशिप' का विचार देकर वह इसके नैतिक समाधान के पक्षधर थे। बाद में उनके इसी विचार ने भूदान आन्दोलन का रूप लिया, जिसे उनके

प्रथम सत्याग्रही आचार्य विनोबा भावे ने आगे बढ़ाया। पंडित जी ने अपने राजनीतिक जीवन में किसानों की दुर्दशा की पीड़ा तो महसूस कर ली थी, मगर ग्रामीण भारत के सर्वांगीण जीवन, उसकी विविध समस्याओं और उनके समाधान के पहलुओं को समझने का मौका उन्हें बाद मे मिला। चुनावी राजनीति के सिलसिले में 1936 के बाद उन्हें सारे भारत का तूफानी दौरा करना पड़ा। अवध के किसानों की जो हालत उन्होंने देखी थी, देश के अन्य भागों में स्थिति उससे भिन्न नहीं थी। कहीं-कहीं तो उससे भी बदतर थी।

महात्मा गांधी को स्वतंत्र भारत की शासन व्यवस्था बनाने, चलाने और देश को उन्नति और विकास के मार्ग पर आगे ले जाने की योजनाएं बनाने का मौका नहीं मिला था। पंडित जी को इन सभी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। आजादी की लड़ाई के दौरान पंडित जी ने कई तरह के मतभेदों के बावजूद गांधी जी की बहुत सी बातें आजादी की लड़ाई के हथियार के रूप में स्वीकार कर ली थीं। मगर आजादी मिलने के बाद नक्शा कुछ और तरह का था।

मतभेद और सहमति

आजादी की लड़ाई के दौरान पंडित नेहरू और आधुनिक शिक्षा प्राप्त बहुत से राष्ट्रवादी नेताओं का महात्मा गांधी से एक महत्वपूर्ण मतभेद था। पंडित जी स्वयं लिखते हैं कि हममें से बहुत कम लोग थे जो मशीनों के इस्तेमाल और नई सभ्यता के बारे में गांधी जी के रूढ़िवादी विचारों से सहमत थे। पंडित जी मानते थे कि आत्मनिर्भर गांवों की कल्पना बहुत व्यावहारिक नहीं। इसमें लोगों का जीवन स्तर बहुत नीचा रह पाएगा। यह व्यवस्था आबादी के बढ़ते बोझ को संभाल नहीं पाएगी। हाथ की कताई और बुनाई व्यक्तिगत उत्पादन का प्रतीक है। नये आधुनिक युग की चुनौतियों से इसका तालमेल बैठना मुश्किल था। उनका पक्का विश्वास था कि आत्म-निर्भर ग्रामीण इकाइयों से गांवों और समाज की आर्थिक समस्याएं हल नहीं हो सकतीं।

भूमि का स्वामित्व

ग्रामीण जीवन के मूल में सबसे बड़ा सवाल भूमि के स्वामित्व का रहा है। गांवों की तरक्की के लिए चाहे कैसी भी योजना बने या बनायी जाये बुनियादी मुद्दा यही रहेगा कि भूमि का स्वामी कौन है। भूमि को जोतने वाला उसका स्वामी है या नहीं।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कांग्रेस में भूमि सुधार पर मोटी सहमति बन गई थी। जमींदारी उन्मूलन उसके कार्यक्रम में शामिल कर लिया गया था। आजादी के बाद जमींदारी उन्मूलन के कानून भी बने, मगर ग्रामीण समाज में इससे विषमता बहुत ज्यादा दूर नहीं हो सकी। भूमि को बांटने अर्थात भूमि सुधार का कार्यक्रम पूरी तरह लागू नहीं हो सके यानि कि ग्रामीण समाज पर जमींदारों की जगह बड़े किसानों का प्रभाव बढ़ने लगा।

विचारधारा का टकराव

महात्मा गांधी संसदीय लोकतंत्र की बजाय विकेन्द्रित शासन पर आधारित पंचायती व्यवस्था के पक्षधर थे। उस बारे में उन्होंने आजादी मिलने से पहले पंडित नेहरू को एक सख्त पत्र भी लिखा था। पंडित जी ने उसका बहुत कठोर उत्तर देते हुए गांधी जी के

ग्रामीण जीवन के मूल में सबसे बड़ा सवाल भूमि के स्वामित्व का रहा है। गांवों की तरक्की के लिए चाहे कैसी भी योजना बने या बनायी जाये बुनियादी मुद्दा यही रहेगा कि भूमि का स्वामी कौन है। भूमि को जोतने वाला उसका स्वामी है या नहीं।

विचारों को एक दार्शनिक कल्पना बताया था। वह चाहते थे कि किसी दार्शनिक उलझन में पड़े बिना हमें देश के लिए कुछ सुनिश्चित लक्ष्य बना कर उसके लिए काम करना चाहिए। उसमें अनाज के उत्पादन में आत्मनिर्भरता, सभी के लिए कपड़े और मकानों की व्यवस्था तथा शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं पर विशेष ध्यान दिया जाए। इस प्रकार 1945 के अपने इस पत्र में उन्होंने यहां तक कह दिया था कि गांधी जी ने जो तस्वीर पेश की है, कांग्रेस ने कभी उसे स्वीकार नहीं किया। उनका कहना था कि आज के युग में भारत सारी दुनिया से अलग-थलग नहीं रह सकता और ऐसी व्यवस्था नहीं बना सकता जिससे विज्ञान तथा टेक्नोलाजी के क्षेत्र में तेजी से हो रही प्रगति की ओर से आंख बन्द कर ली जाए।

संसदीय लोकतंत्र

आजादी मिलने पर संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था लागू करने वाला संविधान बना, जिसमें 'एक व्यक्ति एक वोट' की व्यवस्था की गयी थी। पंडित नेहरू 'एक व्यक्ति एक वोट' को बहुत क्रांतिकारी कल्पना मानते थे। उनका विचार था इस व्यवस्था से समाज में फैली बहुत सी आर्थिक और सामाजिक कुरीतियों का

खात्मा हो जाएगा। इसी के साथ दूसरा क्रांतिकारी कदम जमींदारी उन्मूलन का था। मगर जमींदारी उन्मूलन से बड़े काश्तकार मजबूत हुए और ग्रामीण समाज पर सामन्ती व्यवस्था की पकड़ दूसरे रूप में मजबूत हुई। 'एक व्यक्ति एक वोट' की व्यवस्था से बड़े किसानों को छोटे किसानों और खेत मजदूरों के वोट से अपनी राजनीतिक सत्ता बढ़ाने में मदद मिली।

इस स्थिति का तोड़ करने के लिए भूमि का पुनर्वितरण करना जरूरी हो गया। अधिकतम जोत की सीमा निर्धारित करने वाले भूमि सुधार कानून बनाये जाने लगे और कुछ राज्यों में इसी के साथ चकबन्दी कार्यक्रम भी हाथ में लिया गया। मगर कानूनी दाव पेंच और समाज पर बड़े किसानों के दबदबे के कारण इसमें बहुत ज्यादा प्रगति नहीं हो सकी।

खेती और गांवों की तरक्की के लिए पंडित जी की योजना में ट्रेक्टरों, ट्यूबवेलों, सिंचाई और बिजली के लिए बड़े-बड़े बांधों, रासायनिक खादों तथा मशीनी औजारों के इस्तेमाल को प्रमुखता दी गयी थी। गांधी जी इसके मुकाबले हाथ की शक्ति और हरी खाद के इस्तेमाल के पक्षधर थे।

पंचवर्षीय योजनाएं और सामुदायिक विकास कार्यक्रम

देश के विकास की जब पंचवर्षीय योजनाएं बननी शुरू हुई तो सम्पूर्ण देश के विकास के सन्दर्भ में ग्रामीण विकास के भी कार्यक्रम बने। सिंचाई और बिजली के लिए बांधों का निर्माण इस्पात, कीटनाशक, रासायनिक उर्वरक, ट्रेक्टरों आदि के उत्पादन का काम तेजी से शुरू हुआ। ग्रामीण जीवन को समग्र रूप से प्रभावित करने वाली सामुदायिक विकास प्रखण्डों की योजना भी इसमें शामिल की गयी। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक प्रगति का लाभ खेत खलिहानों तक पहुंचाना और खेती बाड़ी के काम आने वाला आवश्यक साज-सामान किसानों को उपलब्ध कराना था। भूमि सुधार कार्यक्रम भी इसमें शामिल किया गया, मगर इसमें विशेष प्रगति नहीं होने के कारण सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का सबसे ज्यादा लाभ बड़े किसानों को ही मिला।

महात्मा गांधी सत्ता के विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे और ग्राम पंचायतों को मजबूत बनाने पर उनका विशेष जोर था। पंडित जी पंचायतों के माध्यम से ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाने के पक्षधर थे। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिए पंचायतों और सहकारी संस्थाओं को सक्रिय बनाने की कल्पना की गयी थी। मगर पंचायतों के नाम पर जो ढांचा बना हुआ था उस पर प्रभावशाली वर्ग का वर्चस्व था। जहां कहीं पंचायतें बनीं वहां पर भी यह वर्ग उन पर हावी रहा। इससे विकास का लाभ सभी वर्गों को समान रूप से नहीं मिल सका।

नयी लोकतांत्रिक व्यवस्था में पंचायतों का स्वरूप क्या हो, इस पर नयी परिस्थितियों में विचार करना जरूरी हो गया था। पंडित जी चाहते थे कि पंचायतों को भूमि सुधार और ग्रामीण विकास की धुरी बनाया जाए। पंचायतों का स्वरूप तय करने के लिए बलवंतराय मेहता समिति नियुक्त की गयी, जिसने देश भर में त्रिस्तरीय पंचायती राज का ढांचा खड़ा करने की सिफारिश की। कई राज्यों में इस पंचायती राज व्यवस्था को लागू भी किया, मगर पंचायती राज की ये संस्थाएं पूरी तरह राज्य सरकारों की कृपादृष्टि पर चल रही थीं। पंचायती राज व्यवस्था को राज्य सरकारों के अनुचित हस्तक्षेप से बचाने तथा उन्हें एक स्वतंत्र एवं संवैधानिक दर्जा देने के उद्देश्य से हाल में संविधान में संशोधन किया जा चुका है। पंचायत को स्वतंत्र संवैधानिक दर्जा मिल जाने से ग्रामीण स्वरूप का गांधी जी का एक सपना किसी हद तक पूरा होता दिखाई दे रहा है, मगर भूमि के स्वामित्व के लिए 'ट्रस्टीशिप' की उनकी कल्पना अभी भी मृग-मरीचिका बनी हुई है।

तो क्या संवैधानिक दर्जा प्राप्त ये पंचायती राज संस्थाएं गांवों में भूमि सुधार कार्यक्रमों को आगे बढ़ा सकेंगी। विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जबकि भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नवीं सूची में शामिल करके भूमि वितरण के मामलों को न्यायालयों के लम्बे विवाद में उलझाने से मुक्त कर दिया गया है। इसमें सबसे बड़ी बाधा भूमि के ठीक-ठीक रिकार्ड रखने की है। अब जबकि लम्बे चौड़े रिकार्ड रखने वाले कम्प्यूटरों का प्रचलन हो चुका है आशा है कि भूमि रिकार्ड की समस्या भी जल्दी हल हो जायेगी और भूमि सुधार का कार्यक्रम पंचायती राज संस्थाओं के सक्रिय सहयोग से पूरा हो सकेगा।

अब जबकि लम्बे चौड़े रिकार्ड रखने वाले कम्प्यूटरों का प्रचलन हो चुका है आशा है कि भूमि रिकार्ड की समस्या भी जल्दी हल हो जायेगी और भूमि सुधार का कार्यक्रम पंचायती राज संस्थाओं के सक्रिय सहयोग से पूरा हो सकेगा।

कृषि भूमि के स्वामित्व में जो विषमता है उसकी एक मिसाल बिहार को सामने रख कर दी जा सकती है, जहां पिछले कुछ वर्षों

में भूमि सुधार कार्यक्रमों में पूरी आस्था रखने वाली शक्तियां सत्ता में है और जहां आचार्य विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन के प्रति भी लोग अपनी रुचि दिखा चुके हैं। बिहार में 1983 में 1400 ऐसे बड़े भूमि मालिकों की पहचान हो गयी थी, जिनके पास भूमि की हदबन्दी से कहीं ज्यादा भूमि थी। इन में भी दस भूमि पतियों के पास एक लाख सोलह हजार एकड़ से ज्यादा भूमि थी। बाद में राज्य सरकार द्वारा जारी सूची के अनुसार एक सौ से ज्यादा भूपतियों के पास 500 एकड़ से ज्यादा भूमि थी। 1990 में जारी सूची में ऐसे 35 और भूपतियों का नाम जुड़ गया। मगर राजनीतिक और अन्य कारणों से फाजिल भूमि के वितरण का काम पूरी तरह नहीं हो पा रहा है। बिहार में भूदान आन्दोलन के अंतर्गत 21 लाख एकड़ भूमि प्राप्त हुई थी, जिसमें से केवल 7 लाख एकड़ भूमि ही वितरित हो सकी है। राज्य में 1984 में 17 लाख 85 हजार एकड़ भूमि कानूनी जोत सीमा से फाजिल घोषित की गयी थी, किन्तु इसमें से केवल 3 लाख 85 हजार एकड़ भूमि ही अधिग्रहीत की जा सकी है।

बिहार की मिसाल इसलिए भी दी जा रही है कि वहां हाल के वर्षों में भूमि विवाद ने राजनीतिक हिंसा का रूप लेना शुरू कर दिया है।

नयी उदार आर्थिक नीति का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ना शुरू हो गया है। देश-विदेश की बड़ी-बड़ी कम्पनियां गांवों पर दस्तक देने लगी हैं। अगर समय रहते भूमि सुधार कार्यक्रम लागू नहीं हुआ तो गांवों में आज व्याप्त विषमता समय के गुजरने के साथ और पेचीदा रूप ले लेगी।

पी. टी. आई. में समाचार सम्पादक। इससे पूर्व 'समाचार भारती' की स्थापना से ही उसके साथ जुड़े रहे। 'समाचार' और 'यूनिवार्ता' में भी रहे। 1953 में काशी विद्यापीठ से शास्त्री और 1955 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम. ए. हिन्दी। जामिया मिलिया-इस्लामिया की समाज शिक्षा पत्रिका (तालीम-व-तरक्की) का संपादन किया।

(पृष्ठ 19 का शेष)

भारत में भूमि सुधारों की....

के ऐतिहासिक भूदान आंदोलन के साथ भी अक्सर ऐसा हुआ। विनोबाजी ने गांव-गांव घूम कर संपन्न किसानों से जमीन लेकर गरीब किसानों में बांटी, किंतु देखने में आया कि उसमें से बहुत सी जमीन बंजर थी।

इन तमाम तथ्यों के बावजूद यह भी एक हकीकत है कि भारतीय गांवों और भारतीय किसानों की स्थिति आज उतनी दयनीय नहीं है जितनी कि आजादी से पहले थी। भूमि सुधारों ने उन्हें यदि 'बहुत कुछ' नहीं तो 'थोड़ा बहुत' तो दिया ही है। उनमें से अधिकांश आज जमींदारों और सूदखोरों के मुहताज नहीं हैं। सबसे बड़ी बात यह कि उनमें से बहुतों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना आई है और परिवर्तन की आकांक्षा जागी है। यही अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है।

सृजनात्मक लेखन और पत्रकारिता में समान रूप से सक्रिय लेखक की डेढ़ दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें उपन्यास, कहानी संग्रह, व्यंग्य संग्रह, यूरोप यात्राओं के संस्मरणों की पुस्तकें शामिल हैं। उनका राजनीतिक व्यंग्य उपन्यास 'महामहिम' विशेष चर्चित रहा है। हाल में उनकी प्रमुख कहानियों का संग्रह 'चर्चित कहानियां' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। उन्होंने यूनिसेफ के लिए लगभग एक दर्जन कठपुतली नाटक लिखे हैं और हिन्दी अकादमी, दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान आदि से पुरस्कृत-सम्मानित हो चुके हैं।

जमीन से रिश्ते ही भविष्य का नक्शा बनाएंगे

जितेन्द्र गुप्त

जात पांत पर आधारित ग्रामीण समाज को सामंती प्रवृत्तियों से मुक्त करने और लोकतंत्र की खुली हवा में लाने के लिए मतदान का अधिकार ही काफी नहीं था, जोत की अधिकतम सीमा भी जल्दी बांधी जाती और उस पर अमल होता तो इस कार्य में बड़ी मदद मिलती। यह मत व्यक्त करते हुए लेखक ने बताया है कि भूमि सुधार के 1972 से पहले और बाद बने कानूनों की गिरफ्त से बचने के लिए भूमि स्वामियों को बहुतेरा समय मिला और उन्होंने बेनामी हस्तांतरण तथा अन्य उपायों से कानून को धता बता दी। लेखक का कहना है कि देश में बेरोजगारी और बढ़ती जरूरता के अनुसार पैदावार बढ़ाने के लिए भूमि सुधारों को गति देना आवश्यक है क्योंकि 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम के अंतर्गत किए अन्य सभी उपाय अपर्याप्त सिद्ध हुए हैं।

कोई तीन सौ साल पहले तक खेती ही राजनैतिक और आर्थिक सत्ता का सबसे भरोसेमंद आधार थी– भारत में भी और सात समंदर पार भी। उद्योग थे मगर धुआं उगलने वाली चिमनियां नहीं थीं। एक ही छत के नीचे बड़े पैमाने पर माल तैयार करने वाले कारखाने या मजदूर नहीं थे। इंग्लैंड में, फिर जर्मनी और फ्रांस में आया मशीन युग, जिसने इन देशों में खेतिहर समाज के मूल्यों और जीवन-शैली को दफनाकर औद्योगिक समाज की नींव रखी। अब इस शती के आखिरी चरण में कम्प्यूटर आधारित संचार क्रांति एक बार फिर दूरगामी परिवर्तन का संदेश दे रही है। आल्विन टाफ्लर के शब्दों में कृषि क्रांति, औद्योगिक क्रांति के बाद यह संचार क्रांति विकास यात्रा की तीसरी लहर है जिसमें बुद्धि-बल सत्ता का स्रोत होगा।

भारत में कमोबेश तीनों लहरें एक साथ चल रही हैं। सकल राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी एक-तिहाई से अधिक नहीं बची है जबकि उद्योग और सेवा क्षेत्रों का योग दो-तिहाई तक पहुंच गया है। उपग्रह, टी वी, टेलीफोन, फैक्स, इंटरनेट द्वारा तमाम विषयों की अधुनातन जानकारी घर बैठे प्राप्त की जा सकती है। तीसरी लहर भारत और अन्य विकासशील देशों को अपनी लपेट में लेने जा रही है।

राष्ट्रीय उत्पाद, राजस्व और व्यावसायिक लाभकारिता की दृष्टि से कृषि क्षेत्र का वर्चस्व भले ही घट गया हो, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से आजीविका प्रदान करने में वह पहले नंबर पर है। इसलिए भारत में कृषि भूमि का दर्जा सर्वोपरि है और आगे भी यही स्थिति रहेगी। पश्चिमी देशों की तर्ज पर अकेले औद्योगीकरण द्वारा अर्थव्यवस्था का कायाकल्प भारत और चीन सरीखे अधिक आबादी वाले देशों में नहीं हो सकेगा क्योंकि बुनियादी परिस्थितियों में जमीन-आसमान का अंतर है। पश्चिम की टेक्नालाजी का भरपूर फायदा अलबत्ता हम उठा सकते हैं– कुछ नकल करके, कुछ अपने अनुरूप ढालकर और काफी कुछ स्वयं नई विधियां ईजाद करके। नई और पारंपरिक प्रणालियों में सामंजस्य बिठा कर बढ़त हासिल की जा सकती है।

अंतर्राष्ट्रीय परिवर्तन की आंधी ने कृषि भूमि से हमारे और काश्तकारों के रिश्ते कैसे बदले, फिर कैसे उन्हें सुधारने की कोशिश हुई और अब हो रही है, यह समझने और समझाने के लिए पीछे मुड़कर देखना जरूरी है।

प्लासी की लड़ाई (सन् 1757) के अंग्रेज विजेताओं ने बंगाल में लगान वसूलने का अधिकार हथिया लिया। कुछ ही वर्षों बाद बिहार और उड़ीसा के इलाके ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार में

आ गए। लगान की दरें ड्योढ़ी से भी अधिक हो गईं। लगान और व्यापारिक लूट का ही परिणाम था 1770 का दुर्भिक्ष जिसमें बंगाल में लाखों लोग भुखमरी के शिकार हुए।

अंग्रेजों ने इन क्षेत्रों में लगान वसूली के लिए जमींदार नियुक्त किए और जमीन के मालिकाना अधिकार उनको सौंप दिए। भूमि पर काश्तकार का आनुवंशिक अधिकार समाप्त हो गया। जमींदार वसूली के बाद निर्धारित भाग सरकारी खजाने में जमा करके शेष राशि अपने ऐशो आराम के लिए रख लेता। हलवाहों से खुदकाश्त वाली जमीन पर खेती कराता। प्राकृतिक विपदा आने पर भी

राष्ट्रीय उत्पाद, राजस्व और व्यावसायिक लाभकारिता की दृष्टि से कृषि क्षेत्र का वर्चस्व भले ही घट गया हो, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से आजीविका प्रदान करने में वह पहले नंबर पर है।

लगान में छूट न मिलने पर काश्तकार कर्ज लेता और उसे चुका न पाने पर बेदखल कर दिया जाता। लगान भी इतना कि किसान के पास अपने गुजारे लायक मुश्किल से कुछ बचता। इस तरह साहूकारी का धंधा चमका। जमींदार, साहूकार और सरकार तीनों काश्तकार को कंगाली की ओर धकेलते रहे। रैयतवाड़ी क्षेत्रों में जमीन सरकार की हो गई जिस पर काश्तकार बटाईदार जैसी हैसियत से खेती करता और पेट काट कर भी लगान अदा करता।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से काश्तकार पर दूसरी जबर्दस्त मार पड़ने लगी। ब्रितानी कारखानों का माल भारत में आने और निर्यात के रास्ते बंद किए जाने से भारतीय उद्योग चौपट होने लगे। उनमें लगे लोग भुखमरी के शिकार होने लगे। बहुत से लोगों ने गांवों में आश्रय लिया, क्योंकि वहां जमीन थी और मजदूरी करने की गुंजाइश भी। इस तरह खेतिहर मजदूरों की जमात वर्ग विशेष के रूप में पहचानी जाने लगी। कृषि भूमि पर आबादी का दबाव बढ़ता गया।

अंग्रेजों की कृषि और काश्तकार नीति के अनेक कुपरिणाम निकले जिनमें से कुछ का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा :

- सन् 1770 से 1942 तक कई इलाकों में कई बार गंभीर दुर्भिक्ष पड़े जिनमें लगभग तीन करोड़ भारतीय भुखमरी के शिकार हुए।
- 1911 से 1941 के बीच अनाज के उत्पादन में 29 प्रतिशत कमी आई। नकदी फसलों का क्षेत्रफल तो बढ़ गया था, मगर वास्तविक कारण यह था कि कृषि क्षेत्र में जमींदार और काश्तकार पूंजी निवेश नहीं कर रहे थे। आम काश्तकार की कमर लगान के बोझ से टूट चुकी थी। अधिकतर किसान कर्ज के बोझ से कराह रहे थे। कहा जाने लगा था कि भारतीय किसान कर्ज में पैदा होता है और कर्जदार ही मरता है।
- उन्नीसवीं शताब्दी में जमींदारी और सूदखोरी के खिलाफ कई जगह किसानों ने विद्रोह किया जैसे कि मलाबार क्षेत्र में मोपला विद्रोह, छोटा नागपुर क्षेत्र में कोल विद्रोह आदि।

स्वाधीनता संघर्ष के अंतिम चरण में स्वाधीन भारत की अर्थव्यवस्था के बारे में देखे गए सपनों में कृषि क्षेत्र को परोपजीवी बिचौलियों के चंगुल से मुक्त कराने का संकल्प शामिल था। राष्ट्रीय आयोजन समिति ने सभी बिचौलियों को समाप्त करने, काश्तकारों को भू-स्वामित्व सौंपने, बटाईदारी प्रथा खत्म करने और उपज का समुचित मूल्य दिलाने की सिफारिश की। अंततः कांग्रेस कार्यकारिणी ने 1945 में जोतने वाले को जमीन दिलाने, लगान में कमी करने, खेतिहर मजदूरों को जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी दिलाने का प्रस्ताव पारित किया।

सन् 1947 में अंग्रेजों की वापसी के बाद राज्य सरकारों ने जमींदारी उन्मूलन कानून बनाए। जमींदारी प्रथा की समाप्ति निश्चय ही एक क्रांतिकारी कदम था बावजूद इसके कि जमींदार कानून बनने और लागू होने की लंबी प्रक्रिया का लाभ उठाने में सफल रहे। बड़े पैमाने पर बेदखलियां हुईं और जमींदारों ने खुदकाश्त के नाम पर बहुत-सी जमीन अपने कब्जे में कर ली।

जमींदारी और जागीरदारी चली गई। उनकी जगह ले ली बड़े भूस्वामियों ने जिनके पास पैसे, लाठी और बुद्धि का बल था। अशिक्षा, गरीबी और कर्ज के बोझ से दबी ग्रामीण आबादी में केवल उन लोगों को लाभ मिला जिन्हें जमीन पर मालिकाना हक मिले। भूमिहीन खेतिहर मजदूर, जिनमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जाति के लोगों की संख्या अधिक है, लगभग कोरे रह गए।

जात-पांत और जमीन पर आधारित ग्रामीण समाज को सामंती प्रवृत्तियों से मुक्त कराने और लोकतंत्र की खुली हवा में

लाने के लिए मतदान का अधिकार काफी नहीं है। जोत की अधिकतम सीमा भी जल्द बांधी जाती और उस पर अमल होता तो इस कार्य में बहुत मदद मिलती। लेकिन ऐसा नहीं हो सका। बहुत से राजनेता भूस्वामी वर्ग के थे या उसका समर्थन खोने का जोखिम नहीं उठाना चाहते थे। व्यावहारिक राजनीति का तकाजा कहें या राजनैतिक संकल्प का अभाव, जिसके कारण राष्ट्रीय स्तर पर कोई कारगर आम राय नहीं बन पाई।

सन् 1972 में आयोजित मुख्यमंत्री सम्मेलन में कृषि भूमि की हदबंदी के लिए राष्ट्रीय मार्गदर्शक सिद्धांत बनाए गए। दो फसली सिंचित भूमि के लिए 10 से 18 एकड़, एक फसली भूमि के लिए 27 एकड़ और सभी प्रकार की दूसरी जमीनों के लिए 54 एकड़ की सीमा बांधी गई। चाय, काफी, रबड़ आदि के बागान, व्यावसायिक और औद्योगिक इकाइयों के कब्जे वाली जमीन हदबंदी से मुक्त रखी गई। चीनी कारखानों को 100 एकड़ जमीन रखने की छूट मिली।

राज्य सरकारें अधिकतम सीमा से कम सीमा निश्चित करने के लिए स्वतंत्र थीं। केरल में ऐसा हुआ भी। फाजिल जमीन भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को दी जानी थी, खासकर अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों को। जमींदारों की विदाई तो आसानी से हो गई मगर फाजिल जमीन को कब्जे में लेना और असहाय लोगों में बांटना दुर्गम चोटी पर चढ़ने जैसा साबित हुआ।

सन् 1972 के पहले और बाद में बने कानून की गिरफ्त से बचने के लिए भूस्वामियों को बहुतेरा समय मिल गया– बहुतों ने बेनामी हस्तांतरण और हेराफेरी के जरिए कानून को धता बता दिया। इस तरह बहुत लोगों के पास फाजिल जमीन है। ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्री डा० जगन्नाथ मिश्र ने हाल में राज्य सरकारों को भूमि सुधार के बारे में जो पत्र लिखा है उसके अनुसार 10 लाख 65 हजार एकड़ भूमि विभिन्न स्तरों पर मुकदमों में फंसी है। इन्हें जल्द निपटाने के लिए हाईकोर्ट की विशेष बेंच बनाने का सुझाव दिया गया है। ट्रिब्यूनल भी गठित किए जा सकते हैं। इसी पत्र के अनुसार आठ लाख एकड़ जमीन बांटी जानी है और राज्य सरकारें फाजिल जमीन का उपयोग दूसरे कार्यों के लिए कर रही हैं। भूमि के मोह से राज्य सरकारें भी मुक्त नहीं हैं।

राज्य सरकारें हदबंदी कानूनों पर अमल अपनी सुविधा के अनुसार करती रही हैं। राजनैतिक दल भी इसके अपवाद नहीं रहे। 1990 की बात है। तत्कालीन उप प्रधानमंत्री श्री देवीलाल के मंत्रालय ने भूमि सुधार और पंचायती राज पर विचार के लिए आमंत्रित मुख्यमंत्री सम्मेलन में कुछ प्रस्ताव और दस्तावेज रखे। ये दो महीने पहले राज्यों को भेजे जा चुके थे। इस बीच लोगों ने ताऊ (श्री देवीलाल) को समझाया कि प्रस्तावित भूमि सुधार आपके समर्थकों की खाट खड़ी कर देंगे। अतः 11-12 जून को हुए सम्मेलन में देवीलाल शहरी जमीन की हदबंदी पर ही बोले।

सन् 1972 के पहले और बाद में बने कानून की गिरफ्त से बचने के लिए भूस्वामियों को बहुतेरा समय मिल गया–बहुतों ने बेनामी हस्तांतरण और हेराफेरी के जरिए कानून को धता बता दिया।

मुख्यमंत्रियों में कांग्रेस के चिमनभाई पटेल (गुजरात), भाजपा के सुंदरलाल पटवा (मध्यप्रदेश) और जनता दल के बीजू पटनायक (उड़ीसा) की राय थी कि भूमि सुधार कार्यक्रम को आगे बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो हो चुका वही बहुत है।

मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी के ज्योति बसु (पं. बंगाल) भूमि सुधारों के पक्ष में बोले और मुलायम सिंह यादव (उत्तर प्रदेश) का रुख सकारात्मक रहा। लालू प्रसाद यादव (बिहार) ने ललकारते हुए कहा कि जो कानून पर अमल नहीं करा सकता वह इस्तीफा दे दे। यह बात अलग है कि जमीन की लूट और खेत जोतने वालों को अपने अधिकारों से वंचित रखने में उनका प्रदेश सबसे आगे है।

भूमि सुधार का सबसे ज्यादा काम पश्चिम बंगाल और केरल में हुआ है। इसका श्रेय वामपंथी दलों की पहल को है। पश्चिम बंगाल में 'आपरेशन बर्गा' के नाम से बटाईदारों को रिकार्ड में लाने का अभियान चलाया और उन्हें काश्तकाराना हक दिलवाया गया। भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी से शहरी भूस्वामियों की नाराजगी का एक मुख्य कारण यह भी है।

इस मुख्यमंत्री सम्मेलन में लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी के आई. ए. एस. प्रोबेशनरों द्वारा किए गए सर्वेक्षण के निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए थे। अठारह राज्यों के 111 जिलों के सर्वेक्षण से ये तथ्य उभर कर सामने आए :

(1) जिन भूस्वामियों के पास हदबंदी की सीमा से अधिक जमीन है उनमें 60 प्रतिशत ऊंची जातियों के हैं।

(2) हदबंदी से संबंधित अधिकतर मामले 1971 से 1980 के बीच दायर किए गए।

3) जितनी फाजिल जमीन मिलने का अनुमान लगाया गया था उसके मुकाबले बहुत कम जमीन फाजिल घोषित हुई।

4) अधिग्रहीत फाजिल जमीन के 95 प्रतिशत भाग पर सिंचाई का कोई प्रबंध नहीं है।

5) अधिग्रहीत भूमि का केवल 54 प्रतिशत वितरित किया गया है।

6) बहुत से पुराने भूस्वामियों ने फाजिल जमीन पाने वालों का कब्जा नहीं कायम रहने दिया।

7) वास्तविक काश्तकारों या बटाईदारों के नाम रिकार्ड में दर्ज नहीं हैं। असम, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार में ऐसे मामलों का प्रतिशत 41 से लेकर 95 प्रतिशत है।

ती कोई भी तकनालाजी या जीवन शैली हमारी समस्याओं को ल करने में सहायक नहीं हो सकती जो रोज़गार के अवसर न ढ़ाए और श्रमशक्ति का समुचित उपयोग न करे।

इस तरह के विरोधाभास भारतीय जीवन की असलियत के स्से हैं। गांवों में भूस्वामियों, साहूकारों और अन्य ताकतवर वर्गों , जिनमें सरकारी अमला भी शामिल है, हित एकाकार हो जाते । राजनीति भी इन्हें स्वीकार कर लेती है, हालांकि उस पर दूसरे ाव भी रहते हैं। इन दबावों के कारण ही भारत सरकार ने विधान में संशोधन करके भूमि सुधार कानूनों को नौंवी अनुसूची रखने का फैसला किया है ताकि उनकी वैधता को अदालत चुनौती न दी जा सके।

भूमि सुधार में ढील देने के कारण अनेक समस्याएं जटिलतर ती जा रही हैं। मसलन श्रमशक्ति के समुचित उपयोग और जगार के अवसरों में वृद्धि, देश की बढ़ती जरूरतों के अनुसार ती की पैदावार में वृद्धि की समस्याओं को शायद ही कोई केंद्र रकार लंबे समय तक अनदेखा कर सकती है। इन उद्देश्यों की र्ति के लिए भूमि सुधार को गति देना आवश्यक ही नही अनिवार्य क्योंकि 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम के अधीन किए गए सभी ाय अपर्याप्त और अधूरे साबित हुए हैं।

एक नजर जोतों के आकार और उनकी संख्या पर भी डालते लें।

1971 की जनगणना के साथ कृषि संबंधी आंकड़े भी संकलित किए गए। एक हेक्टेयर (2.47 एकड़) से कम क्षेत्रफल वाली सीमांतक जोतों का अनुपात 50.6 प्रतिशत था, जो 20 वर्ष बाद बढ़कर 59 प्रतिशत हो गया। एक से दो हेक्टेयर की छोटी जोतों का प्रतिशत 19 प्रतिशत ही बना रहा। इस प्रकार 78 प्रतिशत भूस्वामियों के पास केवल 21 प्रतिशत कृषि भूमि है जबकि 22 प्रतिशत भूस्वामियों का 78 प्रतिशत भूमि पर कब्जा है।

छोटी जोतों के बारे में ज्ञात हुआ कि सिंचाई और गहन खेती के मामले में वे दूसरों से कहीं आगे हैं। छोटी जोत वाला किसान जी-तोड़ मेहनत करता है ताकि वह आत्मनिर्भर हो सके। पूरा परिवार खेती में जुट जाता है। जबकि बड़ी जोत वाले काश्तकार को दिहाड़ी पर मजदूर रखने पड़ते हैं और वह प्रायः पूरा ध्यान केंद्रित नहीं कर पाता। उसकी दूसरी व्यापारिक दिलचस्पियां भी होती हैं। जैसे साहूकारी या खेती के अलावा अन्य धंधे।

दूसरी ओर यह भी सही है कि बड़ा भूस्वामी खेती में अधिक पूंजी लगा सकता है, खाद और उन्नत बीज का और उपज की बिक्री का बेहतर प्रबंध कर सकता है। लेकिन वह जोत के आकार के अनुपात में श्रमशक्ति का कम उपयोग करता है। श्रमिकों की जगह पूंजी और मशीनों का अधिक सहारा लेता है। इसलिए हरित क्रांति वाले क्षेत्रों में भी आरंभ में श्रमशक्ति का उपयोग बढ़ता है

आजादी जब मिली तब 1947 में ब्रिटिश भारत की सकल कृषि भूमि पर जमींदारों का स्वामित्व था और 1991 में तीन चौथाई कृषि क्षेत्र पर एक चौथाई से भी कम लोगों का कब्जा था। इस अर्धसामंती ढांचे में परिवर्तन किए बिना खेती या गांव के विकास की योजनाएं रेत में नहर बनाने जैसी कोशिशें ही साबित होंगी।

मगर जल्द ही वह घटने लगता है। रोजगार के अवसर बढ़ाने में बड़ी और उपजाऊ जोतें अधिक सहायक नहीं होतीं, यह अनेक सर्वेक्षणों से सिद्ध हो चुका है।

खेती के आधुनिकीकरण के समर्थक, बड़े काश्तकारों और उद्योगपतियों का तर्क है कि हदबंदी खत्म कर दी जाए या उसकी सीमा इतनी बढ़ा दी जाए कि अधुनातन विधि से खेतों की उत्पादकता बढ़ाई जा सके। नई आर्थिक नीति अपनाए जाने के बाद कृषि क्षेत्र को पूरी तरह बंधनमुक्त करने का दबाव बढ़ रहा है। कृषि क्षेत्र में प्रवेश के लिए देसी और विदेशी कंपनियों की छटपटाहट बढ़ गई है।

इसके विपरीत कृषि विशेषज्ञों और अर्थशास्त्रियों की खासी बड़ी जमात, जो तंग दायरे से बाहर निकल कर सोचती है और देश के सामने खड़ी चुनौतियों का जवाब खोजती है, उपरोक्त विचारधारा से सहमत नहीं है। ऐसी कोई भी टेक्नोलाजी या जीवन शैली हमारी समस्याओं को हल करने में सहायक नहीं हो सकती जो रोजगार के अवसर न बढ़ाए और श्रम शक्ति का समुचित उपयोग न करे।

उद्योगों और भूमि स्वामित्व का विकेंद्रीकरण, सहायक उद्यमों का विकास-विस्तार, गांवों में सांस्थानिक ढांचे की मजबूती, नई टैक्नोलाजी का प्रचार-प्रसार जैसे उपाय ही सहायक हो सकते हैं। ये भी मौजूदा स्थिति में कारगर होते नहीं दीखते क्योंकि सरकारी सुविधाओं का अधिकांश लाभ बड़े और समर्थ किसान हड़प जाते हैं। आजादी जब मिली तब 1947 में ब्रिटिश भारत की सकल कृषि भूमि पर जमींदारों का स्वामित्व था और 1991 में तीन चौथाई कृषि क्षेत्र पर एक चौथाई से भी कम लोगों का कब्जा था। इस अर्द्ध सामंती ढांचे में परिवर्तन किए बिना खेती या गांव के विकास की योजनाएं रेत में नहर बनाने जैसी कोशिशें ही साबित होंगी।

भूमि सुधारों और हदबंदी के पक्ष में सबसे बड़ा तर्क सार्वभौमिक अनुभव है। 1990 में न्यूयार्क से प्रकाशित पुस्तक 'द पोलिटिकल इकोनॉमी आफ रूरल पावर्टी : द केस फार लैंड रिफार्म्स' में श्री घोनेमी 15 देशों के भूमि सुधार कार्यक्रमों का

1948-49 में एक साथ विकास यात्रा आरंभ करने वाले चीन और भारत में से चीन ने खेती के मामले में भारत के मुकाबले तीन गुना अधिक प्रगति की है। अनाज की उत्पादकता, पोषण, निरक्षरता उन्मूलन आदि सभी बातों में चीन आगे निकल गया है, हालांकि भारत ने खेती की उन्नति और गरीबी उन्मूलन पर यथेष्ट धन खर्च किया है।

विश्लेषण करके इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि जिन देशों में कृषि भूमि के स्वामित्व का विकेंद्रीकरण जितना अधिक है उन देशों के गांवों में सबसे गरीब वर्ग की स्थिति उतनी ही अच्छी है। लेखक ने भूमि सुधार कार्यक्रम पूरी तरह लागू करने वाले देशों (चीन, क्यूबा, इराक, दक्षिण कोरिया) और आंशिक भूमि सुधार वाले देशों (मेक्सिको, बोलीविया, पेरू, ईरान और भारत समेत सात अन्य देशों) के आंकड़े दिए हैं। 1948-49 में एक साथ विकास यात्रा आरंभ करने वाले चीन और भारत में से चीन ने खेती के मामले में भारत के मुकाबले तीन गुना अधिक प्रगति की है। अनाज की उत्पादकता, पोषण, निरक्षरता उन्मूलन आदि सभी बातों में चीन आगे निकल गया है, हालांकि भारत ने खेती की उन्नति और गरीबी उन्मूलन पर यथेष्ट धन खर्च किया है।

घोनेमी ने पाया कि केरल राज्य में, जहां भूमि-सुधार कार्यक्रम अधिक उत्साह से लागू किए गए, घनी आबादी और बेरोजगारी के बावजूद गरीबी की गंभीरता और गरीबों की संख्या घटी है। केरल में हदबंदी की सीमा अन्य राज्यों से नीची है और काश्तकारों को मालिकाना हक मिले हैं। भूमि वितरण का अखिल भारतीय औसत तीन प्रतिशत है, मगर केरल में वह सबसे अधिक – 17.5 प्रतिशत रहा। ग्रामीण क्षेत्रों में ट्रेड यूनियनों की मौजूदगी और मजदूरी की बेहतर दर तथा शिक्षा के प्रसार सरीखी सहायक परिस्थितियों ने भी गरीबी घटाने में मदद की है, किंतु मुख्य श्रेय भूमि सुधार को दिया गया है।

जात-पांत और ऊंच-नीच में विश्वास करने वाले पारंपरिक समाजों में भूमि सुधार से न केवल विषमताएं घटती हैं वरन् सहकारी प्रयास और वित्तीय एवं सेवा संगठनों को भी अधिक सफलता मिलती है।

आधुनिक संगठित उद्योग और मशीन बहुल खेती को आदर्श कम और श्रम बचाने वाली पूंजी अधिक चाहिए इसलिए ये दोनों रोजगार के अवसर बढ़ाने या गरीबी घटाने में कदापि सक्षम नहीं हैं।

कृषि क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय या बड़ी देसी कंपनियों का प्रवेश हानिकर ही सिद्ध होगा, क्योंकि उनके लक्ष्य और व्यावसायिक तौर-तरीके ग्राम विकास के उद्देश्य से मेल नहीं खाते।

आठवीं योजना में आर्थिक विकास और अन्य क्षेत्रों में 'जनता की भागीदारी' के आग्रह और नई आर्थिक नीति का टकराव बचाना होगा। किसानों की जमीन पर कंपनियों का कब्जा होने देने से भूमि सुधार के उद्देश्य भी नहीं पूरे होंगे।

संगठित उद्योग दो तरह से किसानों की मदद भी कर सकते हैं और अपने दीर्घकालीन लक्ष्य भी पूरे कर सकते हैं। कृषि उपज में दिलचस्पी रखने वाले उद्योगपति और व्यवसायी किसानों के समूहों, उनकी सहकारी समितियों को बीज, खाद, कर्ज आदि उपलब्ध कराने में सहायक बनकर उनसे उनकी उपज खरीदने को युक्तिसंगत करार कर सकते हैं। दोनों पक्षों को लाभ होगा– उत्पादकता और उत्पादन दोनों बढ़ेंगे। इसी तरह दूसरे उद्योग, जहां

सा संभव है, गांवों में उत्पादन केंद्र खोल या खुलवाकर अपनी
बचत करते हुए लोगों की क्रय शक्ति बढ़ाकर बाजार का दायरा
ौर विकास की रफ्तार बढ़ा सकते हैं।

यह तयशुदा बात है कि अधिसंख्य छोटे किसानों और सात
रोड़ भूमिहीन मजदूरों की फौज को अकेले खेती या पूंजी बहुल
द्योगों से रोजी-रोटी नहीं मिल सकती। छोटे उद्यम और बागवानी,

ामवासी लाभ, भाईचारे और आत्म-सम्मान की भाषा जानते हैं। धनहीन किसान और खेतिहर मजदूर में भारतीय सामाजिक वस्था और सदियों की उपेक्षा ने बहुत-सी कुठाएं भर दी हैं, जिन्हें हचानना होगा।

शुपालन, डेयरी उद्योग, मत्स्य पालन आदि सहायक उद्यमों का
लाव ही उनको आर्थिक संबल और खुशहाली प्रदान कर सकता
।

निजी क्षेत्र की कंपनियां उन्नत बीज, गैर-रासायनिक खाद और
ीटनाशक के लगभग अछूते क्षेत्रों में पैठकर मुनाफा कमा सकती
। तात्कालिक लाभ के लिए विदेशी सहयोग या टेक्नोलाजी का
ंधानुकरण दूरंदेशी या बुद्धिमानी नहीं है।

सरकारों की ग्राम-विकास और खेती की उन्नति की योजनाएं अपेक्षित नतीजे नहीं दे रहीं तो इसका मूल कारण है कि सरकारी तंत्र में खामी है और किसानों को यह अहसास नहीं दिया जाता कि ये उनकी अपनी योजनाएं हैं। इसलिए उनका आंतरिक सहयोग नहीं मिल पाता। ग्रामवासी लाभ, भाईचारे और आत्म-सम्मान की भाषा जानते हैं। साधनहीन किसान और खेतिहर मजदूर में भारतीय सामाजिक व्यवस्था और सदियों की उपेक्षा ने बहुत-सी कुंठाएं भर दी हैं, जिन्हें पहचानना होगा।

कई क्षेत्रों में आदिवासियों और अन्य गरीब वर्गों के शोषण ने नक्सलवादी जैसे हिंसावादी आंदोलनों को जन्म दिया है। मुख्य आर्थिक धारा में से बाहर किए गए इन लोगों की प्रतिक्रिया सामाजिक-आर्थिक तंत्र के खिलाफ है। इस तंत्र को सुधारने की आवश्यकता है, जिसमें भूमि सुधार की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

सितंबर 1955 से जनवरी 1965 तक समाचार सेवा प्रभाग, आकाशवाणी और प्रकाशन विभाग से संबद्ध। फरवरी 1965 से मई 1992 तक दिनमान, दिनमान टाइम्स और नवभारत टाइम्स नई दिल्ली में सहायक संपादक। मई 1992 से स्वतंत्र पत्रकारिता।
पुस्तक : 'पत्रकारिता में अनुवाद की समस्याएं' भोलानाथ तिवारी के सहयोग से।

किसानों का--फिर वे भूमिहीन मजदूर हों या मेहनत करने वाले जमीन-मालिक हों -- स्थान पहला है। उनके परिश्रम से ही पृथ्वी फलप्रसू और समृद्ध हुई है और इसलिए सच कहा जाय तो जमीन उनकी ही है या होनी चाहिये, जमीन से दूर रहने वाले जमींदारों की नहीं।

--महात्मा गांधी

आम धारणा

गाँव में रहने वाला औसत व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिये
मौसम और कर्ज देने वालों पर निर्भर करता है।

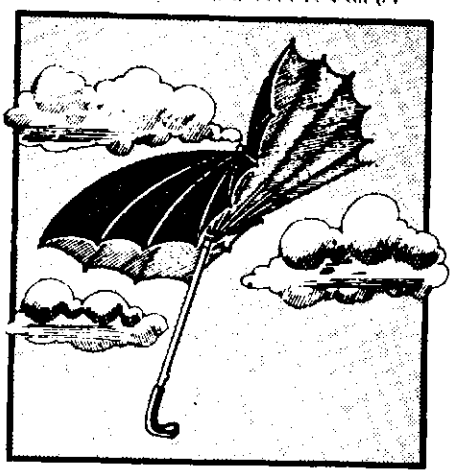

वास्तविकता

समय बदल चुका है। गांवों का दृश्य भी बदल चुका है।
और अब ग्रामीण व्यक्ति अपना भाग्य स्वयं निर्धारित करता है।
क्योंकि आज राज्य सरकारों की पहल पर एन सी डी सी द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त किसान
सहकारी समितियों ने जगह-जगह पर उर्वरक संयंत्र, चीनी मिलें, तिलहन विधायन इकाईयाँ,
कताई मिलें – यहाँ तक कि कुक्कुट एवं मत्स्य उद्योग भी स्थापित किये हैं।
और इनसे ग्रामीणों को रोज़गार के साथ-साथ विकास के कई अवसर प्राप्त हुए हैं।

सहकारी गतिविधियों की योजना बनाने, प्रोत्साहन, मार्गदर्शन एवं उन्हें सहयोग देने से लेकर
संयंत्रों की स्थापना, उत्पाद के विपणन एवं वितरण तक एन सी डी सी
ग्राम्य जीवन के हर क्षेत्र में शामिल है।
और क्यों न हो ? अच्छा मौसम तो
ग्राम्य जीवन में हमेशा ही
महत्वपूर्ण रहा है।

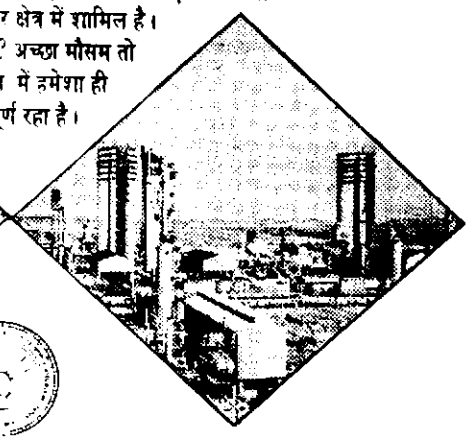

नेशनल को-ऑपरेटिव डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन
4, सिरी इन्स्टीट्यूशनल एरिया, हौज खास, नई दिल्ली-110016

एन सी डी सी – एक सहकारिता कथा

F.N/XIII-933 H.D

आर्थिक विकास की आवश्यक शर्त

डा० गिरीश मिश्र

यदि हम देश में व्यापक निर्धनता, बढ़ती हुई आर्थिक विषमता, बेतहाशा बढ़ती जनसंख्या और बेरोजगारी जैसी समस्याओं का हल चाहते हैं तो हमें गांवों की ओर ध्यान देना होगा और वहां सभी समस्याओं के केन्द्र बिन्दु भूमि सुधार का स्थायी हल ढूंढना होगा। यह मत व्यक्त करते हुए लेखक ने कहा है कि भूमि सुधारों के बिना उन्नत कृषि के लाभों को एक सीमा से आगे नहीं बढ़ाया जा सकेगा और पंचायती राज जैसे सत्ता के विकेन्द्रीकरण के प्रयास भी वांछित परिणाम नहीं दे पाएंगें।

वर्षों पूर्व जब द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उपनिवेशवाद के चंगुल से मुक्त देशों ने अपना ध्यान आर्थिक विकास पर केन्द्रित करना आरंभ किया तब प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. गुन्नार मिर्डल ने कहा : "कृषि क्षेत्र में ही दीर्घकालीन आर्थिक विकास की लड़ाई का फ़ैसला होगा।" इस प्रकार उन्होंने आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र की अहम भूमिका को रेखांकित कर नए आजाद हुए मुल्कों का ध्यान उसकी स्थिति और समस्याओं की ओर खींचा।

आर्थिक इतिहास का प्रत्येक अध्येता इस बात से भली भांति परिचित है कि आज के विकसित देशों जैसे ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, इटली आदि ने जब अपनी विकास यात्रा आरंभ की तब उनके यहां सर्वप्रथम कृषि के क्षेत्र में दूरगामी परिवर्तन हुए जिनके फलस्वरूप नवस्थापित कारखानों को कच्चा माल, मजदूर, औद्योगिक नगरों के वासियों के लिए खाद्य पदार्थ और निवेश के लिए पूंजी प्राप्त होने लगी। कृषि क्षेत्र में लगे लोगों की आय बढ़ने से औद्योगिक वस्तुओं की मांग में वृद्धि हुई और इस प्रकार औद्योगिक उत्पादन के लिए बाजार की समस्या का काफी हद तक हल निकल आया। इससे नवस्थापित उद्योगों को अपने उत्पादन का पैमाना बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिला।

वहां कृषि क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए वे मुख्य रूप से भूस्वामित्व की व्यवस्था और जमीन के इस्तेमाल तथा कृषि के संगठन ढांचे से सम्बद्ध थे। चूंकि उनके यहां की स्थितियां स्वतंत्रता के बाद के भारत से बिल्कुल भिन्न थीं, इसलिए उन्होंने जो दिशा अपनायी, वह भी अलग थी। उदाहरण के तौर पर उनके यहां भूमि और जनसंख्या के बीच अनुपात हमारे यहां से काफी कुछ विपरीत था इसलिए वहां भूमि के पुनर्वितरण की समस्या महत्वपूर्ण नहीं थी। नवस्थापित उद्योगों में श्रमिकों की मांग इतनी तेजी से बढ़ रही थी कि कृषि पर जनसंख्या का दबाव द्रुत गति से गिरा और कृषि क्षेत्र से लोग निकलकर उद्योगों में लगने लगे, जहां अपेक्षाकृत आय अधिक थी।

भारत में स्थितियां भिन्न रही हैं। इसलिए यहां कृषि क्षेत्र की समस्याओं को हल कर पाना उतना आसान नहीं है। आज आजादी के लगभग आधी सदी के बाद भी कृषि क्षेत्र की समस्याएं पूरी तरह से हल नहीं की जा सकी हैं। परिणामस्वरूप अनेक कठिनाइयों और विकृतियों का सामना करना पड़ रहा है।

आइए, हम अपनी कृषि क्षेत्र की समस्याओं की ओर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें। मुगल काल के दौरान भूमि व्यवस्था और कृषि संगठन को एक सुव्यवस्थित रूप दिया गया। उस समय के अभिलेखों तथा अध्ययनों के अनुसार भूमि पर निजी स्वामित्व

नहीं था। भूमि पर सामुदायिक स्वामित्व या पूरे गांव की मिल्कियत थी। हां, उस पर खेती करने वालों को तब तक बेदखल नहीं किया जा सकता था जब तक वे लगान देते रहते थे और इस प्रकार किसानों को भूमि के इस्तेमाल का अधिकार था यद्यपि वे उसे खरीद-बेच नहीं सकते थे। जमींदार, जागीरदार, ताल्लुकेदार आदि सरकारी मुलाजिम थे जिनका काम लगान वसूल कर सरकारी खजाने में पहुंचाना था। जब तक मुगल सम्राट ताकतवर रहे तब तक इनमें से किसी की भी इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह किसानों को मनमाने ढंग से उत्पीड़ित या बेदखल कर सके। इस प्रकार

आज आजादी के लगभग आधी सदी के बाद भी कृषि क्षेत्र की समस्याएं पूरी तरह से हल नहीं की जा सकी हैं। परिणामस्वरूप अनेक कठिनाइयों और विकृतियों का सामना करना पड़ रहा है।

यहां इस बात को रेखांकित करना आवश्यक है कि भारत की भूमि व्यवस्था और कृषि के ढांचे का स्वरूप पश्चिमी देशों की सामन्ती प्रणाली से भिन्न था। 'एशियायी उत्पादन प्रणाली' के संदर्भ में जो बहस चली हैं उनमें यह बात विशेष रूप से उभर कर सामने आई है।

अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद भारत की भूमि व्यवस्था और कृषि ढांचे को पुनर्गठित करने की कोशिश की गई। अंग्रेजी शासकों को तत्कालीन व्यवस्था के विषय में बहुत कम ज्ञान था और वे अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद ठीक-ठीक जानकारी नहीं प्राप्त कर सके। बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिलने से लेकर 1789 तक (यानी 24-25 वर्षों तक) नयी व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित करने के लिए अनेक प्रयोग किए गए जो एक के बाद एक घाटे के सौदे साबित हुए और किसान तबाह हो गए। सन् 1770-71 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा में भयंकर अकाल पड़े जिनमें एक तिहाई जनसंख्या नष्ट हो गई। प्रसिद्ध साहित्यकार बंकिमचन्द्र ने अपनी रचनाओं में उन दिनों के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं।

लार्ड कार्नवालिस ने 1789 में जो व्यवस्था कायम की उसे 1793 में स्थायी रूप से लागू कर दिया गया और इस प्रकार 'चिरस्थायी प्रबंध' या 'दमामी बंदोबस्त' की शुरुआत हुई। इस व्यवस्था के अंतर्गत लगभग एक सौ साल तक अंग्रेजों ने न तो सर्वे-सेटलमेंट कराकर जमीन जोतने वालों के हकों और नामों को दर्ज करवाया और न उनके हितों की रक्षा का इंतजाम किया। सरकार का वास्ता मात्र भूराजस्व की रकम समय से प्राप्त करने से रहा। जमींदार किसानों के साथ क्या करते हैं, इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया।

जमींदारों ने किसानों के शोषण-उत्पीड़न में कोई कसर नहीं छोड़ी। किसानों को जोती जानेवाली जमीन पर पक्का स्वामित्व नहीं दिया गया और वे जो कुछ उत्पन्न करते थे उसका अधिकांश उनसे ले लिया जाता था। इससे किसानों के पास खेती कार्य में निवेश के लिए न धन रहा और न इच्छा-शक्ति।

चूंकि जमीन पर स्वामित्व और जमींदारी एक लाभप्रद निवेश के रूप में देखी जाती थी और सामाजिक सम्मान का आधार थी, इसलिए ऐसे अनेक लोगों ने उनमें पैसे लगाये जिनका खेती करने का कतई इरादा नहीं था। जमीन के असली जोतने वालों तथा सरकार के बीच अनेक मध्यवर्ती श्रेणियां आ गईं। जमींदार और बड़े काश्तकार लगान-जीवी हो गये तथा उनका कारोबार उत्पीड़क कारिंदों के ऊपर आ गया। महाजनों और गल्ला व्यापारियों ने भी अपना फंदा फैलाया। गांवों में निर्धनता, अज्ञानता आदि का साम्राज्य व्याप्त हो गया। अकाल और रोग लोगों को दबोचने लगे। जमीन का संकेन्द्रण थोड़े से हाथों में हो गया। खेतीबाड़ी के लिए आवश्यक सुविधाएं जैसे सिंचाई, उन्नत बीज, कृषि संबंधी जानकारियां, निवेश, विपणन के अवसर आदि प्रदान करने की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

बंगाल, बिहार और उड़ीसा के बाहर रैयतवाड़ी और महलवाड़ी व्यवस्थाएं कायम की गईं। अनेक भिन्नताओं के बावजूद अन्य प्रदेशों में भी किसानों की हालत कुछ खास बेहतर नहीं हुई। वहां भी जमीन का वितरण असमान हो गया, व्यापारियों और सूदखोर महाजनों के चंगुल में किसान फंसते गये तथा दूरस्थ भूमि मालिकों का एक समूह सामने आया जिसका मुख्य उद्देश्य किसानों से अधिक से अधिक लगान प्राप्त करना हो गया। किसानों पर लगान का बोझ बढ़ता ही गया। अनेकानेक किसानों को अपनी जमीन से हाथ धोने पड़े।

पूरी उन्नीसवीं शताब्दी तथा वर्तमान सदी के पूर्वार्ध के दौरान किसानों ने शोषण एवं उत्पीड़न के विरुद्ध कई बार विद्रोह और आंदोलन किये। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास इनसे अभिन्न रूप से जुड़ा रहा और इसने अपार शक्ति तभी प्राप्त की जब महात्मा गांधी ने इसे किसानों के साथ जोड़ा। 1920 के बाद

किसान और उसकी समस्याएं कांग्रेस के हर अधिवेशन पर हावी रहीं।

ब्रिटिश शासनकाल के दौरान परंपरागत उद्योगों के पतन के कारण कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या का दबाव तेजी से बढ़ा। सन् 1880 में 12.3 प्रतिशत जनसंख्या उद्योगों में लगी थी परंतु 1945 में केवल 9 प्रतिशत जनसंख्या उद्योगों में कार्यरत थी। इस दौरान कृषि पर निर्भर जनसंख्या का प्रतिशत 56 से बढ़कर 73 हो गया। आजादी के एक साल बाद 1948 में यू. पी. जमींदारी एबोलिशन कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा : "हमारी कृषि भूमि व्यवस्था धराशायी हो गई है। वह देश में उत्पादक शक्तियों के विकास को अवरुद्ध कर रही है। इतना ही नहीं, वह देश को भारी अशांति और हिंसा की ओर लेकर जा रही है।"

इसीलिए आजादी के तुरंत बाद भूमि सुधार और कृषि के पुनर्गठन की ओर ध्यान दिया गया। सबसे पहले बिचौलियों के उन्मूलन की दिशा में कदम उठाये गये। जमींदारों, जागीरदारों, ताल्लुकेदारों तथा अन्य मध्यवर्ती लगानजीवी वर्गों जैसे मुकर्ररीदारों, ठेकेदारों, पटनीदारों आदि को समाप्त कर सरकार और किसानों के बीच सीधा संबंध कायम करने के लिए कानून

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास इनसे (किसान आंदोलन से) अभिन्न रूप से जुड़ा रहा और इसने अपार शक्ति तभी प्राप्त की जब महात्मा गांधी ने इसे किसानों के साथ जोड़ा। 1920 के बाद किसान और उसकी समस्याएं कांग्रेस के हर अधिवेशन पर हावी रहीं।

बनाए गए। इन निहित स्वार्थों की ओर से इन कानूनों को बनाते समय तथा इनके कार्यान्वयन के मार्ग में अनेकानेक रोड़े अटकाए गए। इन कानूनों के विरोधियों का कहना था कि आधुनिकतम प्रौद्योगिकी तथा उन्नत सुविधाओं का सहारा लेकर तत्कालीन भूस्वामी कृषि क्षेत्र में उत्पादक शक्तियों को बढ़ा सकते हैं और वे कार्य कुशलता में वृद्धि कर सकते हैं। परंतु इस तर्क को अस्वीकार कर दिया गया क्योंकि लगभग दो सौ सालों से जिनका चरित्र परजीवी था वे अंचानक उत्पादक शक्तियों के विकास के संवाहक कैसे हो सकते हैं?

बिचौलियों के उन्मूलन संबंधी कानूनों को न्यायालयों में चुनौती दी गई। याद रहे कि भारतीय संविधान में पहला संशोधन इसी चुनौती का सामना करने के लिए किया गया। बिहार में जमींदारी उन्मूलन संबंधी कानून को उच्चतम न्यायालय ने मुआवजे के प्रश्न पर मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाला बतलाते हुए रद्द कर दिया। इसके बाद संसद को संविधान में संशोधन कर न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को सीमित करना पड़ा।

इसके बाद काश्तकारी की व्यवस्था में सुधार का मसला हाथ में लिया गया जिसके अंतर्गत लगान का विनियमन, किसानों को अपनी जमीन पर स्वामित्व प्रदान करना तथा उन्हें बेदखली से बचाना शामिल था। अनेक किसानों के पास ऐसे प्रमाण पत्र नहीं थे जिनसे वे अपने द्वारा जोती जाने वाली भूमि पर अपना अधिकार

बिचौलियों के उन्मूलन संबंधी कानूनों को न्यायालयों में चुनौती दी गई। याद रहे कि भारतीय संविधान में पहला संशोधन इसी चुनौती का सामना करने के लिए किया गया।

या कब्जा साबित कर सकें। 1950 के दशक के दौरान 20 प्रतिशत कृषि भूमि पर बटाईदारों या ऐसे किसानों द्वारा खेती की जाती थी जिनको जब चाहे तब बेदखल किया जा सकता था। 1961 में भी इस स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। आज भी बिना किसी लिखा पढ़ी के जमीन किसानों को खेती करने के लिए दे दी जाती है। सारी कार्रवाई मौखिक होती है जिसके फलस्वरूप उन्हें यह साबित करना कठिन हो जाता है कि वे ही जमीन के असली जोतने वाले हैं। बेदखली की तलवार हमेशा उनके सिर पर लटकती रहती है जिस कारण वे खेतीबाड़ी में समुचित निवेश नहीं कर पाते और न ही उन्हें उपज में उचित हिस्सा मिलता है जिससे उनकी दिलचस्पी उत्पादन और कार्यकुशलता बढ़ाने में हो। कहना न होगा कि जनसंख्या में तेज वृद्धि और कृषि क्षेत्र के बाहर रोजगार के अवसरों में पर्याप्त बढ़ोत्तरी न होने के कारण जमीन की मांग बढ़ती जा रही है। चूंकि जमीन की आपूर्ति सीमित है और उसका संकेद्रण हो गया है, इसलिए उसके मालिक जमीन चाहने वालों पर अपनी मर्जी से शर्तें लादते हैं। किसानों की आर्थिक और सामाजिक स्थितियां ऐसी नहीं होतीं कि वे भूस्वामियों की शर्तों को मानने से इंकार करें या मोल-तोल करें।

हमारे यहां के भूस्वामी वैसे नहीं हैं जैसे 16वीं और 18वीं शताब्दियों में ब्रिटेन के भूस्वामी थे। वहां भूस्वामी फसलों की नयी किस्मों को विकसित करने, खेतीबाड़ी के नये औजारों का ईजाद करने, सिंचाई आदि की सुविधाएं देने तथा उचित परामर्श उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान करते थे। इसके विपरीत हमारे यहां

जो भूस्वामी हैं, उनका मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक लगान वसूल करना है। अधिकतर भूस्वामी अपने किसानों को बदलते रहते हैं, जिससे कोई किसान किसी खास खेत पर बहुत दिनों तक काबिज न रह सके।

तीसरी पंचवर्षीय योजना ने इन बातों को स्पष्ट रूप से स्वीकारा और तबसे किसानों की स्थिति को मजबूत बनाने की दिशा में अधिक तत्परता से कदम उठाने की बात हुई।

भूमि सुधार की दिशा में एक बड़ा कदम जोत की अधिकतम सीमा निर्धारित करना और उससे फाजिल जमीन को लेकर उन लोगों को देना रहा है जिनके पास जमीन बहुत कम या नहीं है।

आज भी बिना किसी लिखा पढ़ी के जमीन किसानों को खेती करने के लिए दे दी जाती है। सारी कार्रवाई मौखिक होती है जिसके फलस्वरूप उन्हें यह साबित करना कठिन हो जाता है कि वे ही जमीन के असली जोतने वाले हैं।

चूंकि उत्पादन के सभी साधनों में भूमि ही एक मात्र साधन है जिसकी मात्रा को बढ़ाना असंभव है और फिर इसके चाहने वाले अनगिनत हैं इसलिए इसके ऊपर स्वामित्व को सीमित करना आवश्यक है। यदि इस दिशा में सोच-समझ कर कदम उठाये जाएं तो गांवों में सामाजिक-आर्थिक समानता आएगी और कृषि उत्पादन में भी वृद्धि होगी।

यह कहना कि इस कार्रवाई के कारण कृषि की कार्यकुशलता घटेगी क्योंकि जोतों का आकार छोटा हो जाएगा, सही नहीं साबित हुआ है। भारत में अधिकतर बड़ी जोतें पश्चिमी देशों की बड़ी यंत्रीकृत जोतों से सर्वथा भिन्न हैं। यहां पर छोटी जोतें, जिनपर उनके स्वामी स्वयं खेती करते हैं, अधिक कार्यकुशल हैं। यदि उन्हें सहकारी संस्थाओं तथा अन्य विभागों से उपयुक्त समय पर अपेक्षित सहायता मिले तो कोई कारण नहीं है कि उनकी उत्पादकता और कार्यकुशलता न बढ़ सके। यह भी कहा गया कि छोटी जोतों को यदि सहकारी खेती के लिए प्रोत्साहित किया जाए तो उन्हें पश्चिमी देशों के बड़े फार्मों की तरह ही सारे लाभ मिल सकेंगे।

भारत में जमीन की किस्मों में अंतर तथा सिंचाई की सुविधाओं में भिन्नता को ध्यान में रखकर जोतों की सीमाओं को निर्धारित किया गया। बाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा इससे संबद्ध कानूनों को अवैध घोषित करने पर संसद ने संविधान में संशोधन कर न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को सीमित कर दिया।

इन कानूनों के कार्यान्वयन में अनेक अड़चनें आयीं। बहुतेरे भूस्वामियों ने अपनी जोतों का बंटवारा अपने सगे-संबंधियों में काफी पीछे की तारीखों में कर दिया और अपने हिंदू अविभाजित परिवारों को कागज पर विखंडित कर दिया। जमीन को कानून लागू होने से पहले की तारीखों में बेचा भी गया। कुसुम नैयर की प्रसिद्ध पुस्तक 'इन द डिफेंस आफ इरेशनल पेज़ेंट' में बिहार के एक बड़े भूस्वामी के साक्षात्कार द्वारा कानून के दायरे से अपनी हजारों एकड़ जमीन को बचाने के तरीकों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस साक्षात्कार से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भूस्वामियों के ताकतवर राजनीतिक नेताओं और सरकारी अफसरों से पारिवारिक तथा अन्य रिश्तों के कारण भी कानूनों का कार्यान्वयन मुश्किल हो जाता है। विश्वसनीय भू-अभिलेखों का अभाव भी एक बड़ी बाधा है।

संक्षेप में भूमि सुधार अत्यन्त आवश्यक हैं, फिर भी उनसे संबद्ध कानूनों का कार्यान्वयन राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव, गरीब किसानों और खेतिहर मजदूरों के कारगर संगठनों और आंदोलनों के न होने, भू-अभिलेखों के अभाव, कानूनी एवं न्यायिक अड़चनों तथा प्रशासनिक उदासीनता के कारण नहीं हो सका है।

सरकार ने इन कठिनाइयों को दूर करने की दिशा में अनेक कदम उठाये हैं, परन्तु पूरी सफलता नहीं मिल पायी है। भूमि सुधार जिन इलाकों में असफल रहा वहीं हिंसा और अशांति का वातावरण व्याप्त है। इसका एक प्रमुख उदाहरण बिहार के वे जिले हैं जहां हत्या, लूटपाट, अपहरण आदि रोज की घटनाएं हैं। अपराधकर्मियों

भूस्वामियों के ताकतवर राजनीतिक नेताओं और सरकारी अफसरों से पारिवारिक तथा अन्य रिश्तों के कारण भी कानूनों का कार्यान्वयन मुश्किल हो जाता है। विश्वसनीय भू-अभिलेखों का अभाव भी एक बड़ी बाधा है।

से लेकर राजनीतिक उग्रवादी सक्रिय हैं, और अनेकानेक 'सेनाएं' भी कार्यरत हैं। यही हाल आंध्र प्रदेश के कतिपय भागों में है। जहां कानून और व्यवस्था की स्थिति ठीक नहीं होगी वहां किसी भी प्रकार के आर्थिक विकास का कार्यक्रम नहीं चलाया जा सकता। बिहार के मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद यादव के सामने

संभावित विदेशी और देशी निवेशक कानून और व्यवस्था तथा जान-माल की सुरक्षा का प्रश्न बार-बार उठा रहे हैं।

कहना नहीं होगा कि कानून और व्यवस्था की स्थिति डंडे के बल पर स्थायी रूप से ठीक नहीं की जा सकती। टिकाऊ समाधान निकालने के लिए मूल कारण जमीन की समस्या पर ध्यान देना होगा।

आज ग्रामीण क्षेत्र में जमीन के सवाल को संतोषप्रद ढंग से हल नहीं किये जाने तथा कृषि एवं ग्रामीण विकास को गति नहीं देने के कारण ही बड़े पैमाने पर गांवों से लोग शहरों की ओर भागते नजर आ रहे हैं। नगरों में भीड़भाड़, प्रदूषण, अपराध, गंदी बस्तियों का फैलाव, सरकारी जमीन पर अवैध कब्जा, अनधिकृत बस्तियों का निर्माण आदि बहुत कुछ इसी का परिणाम है। गांवों का शांत, सुखद और सौहार्दपूर्ण जीवन अब पुराने काव्य ग्रंथों में ही देखा जा सकता है। वहां रोजी रोटी की समस्या विकराल बन गई है।

यदि हम देश की व्यापक निर्धनता, बढ़ती हुई विषमता, तेज जनसंख्या वृद्धि और भयंकर बेरोजगारी की समस्याओं का कारगर हल निकालना चाहते हैं तो हमें गांवों की ओर ध्यान देना होगा और वहां की समस्याओं के केंद्र बिंदु 'भूमि' के प्रश्न का स्थायी हल निकालना होगा। जब तक यह नहीं होगा तब तक आर्थिक विकास की गाड़ी को उदारीकरण और सुधारों के बावजूद बहुत दूर तक नहीं ले जाया जा सकता।

आज जरूरत है कि जोतों के ढांचे और काश्तकारी के स्वरूप को ऐसा बनाया जाए कि उत्पादन में तेज वृद्धि के साथ ही प्रगति के फायदे उचित ढंग से वितरित हों।

भूमि सुधारों के बिना कृषि विकास एक सीमा के बाद उत्पादन और कार्यकुशलता को नहीं बढ़ा पायेगा बल्कि विषमता और असंतोष को जन्म देगा। ऐसा हरित क्रांति के संदर्भ में अनेक इलाकों में देखा गया है। इसी प्रकार सत्ता के विकेन्द्रण के लिए पंचायती राज जैसे कार्यक्रम भी वांछित परिणाम नहीं दे सकेंगे।

जन्म : 30 दिसम्बर 1939, बिहार के पूर्वी चम्पारण जिले में।

कार्य : सहायक प्रोफेसर काशी विद्यापीठ वाराणसी (1963-65), लेक्चरार और फिर रीडर, किरोड़ीमल कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय (1965 से) बीच में तीन वर्षों तक नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय में फेलो के रूप में शोध कार्य। आर्थिक इतिहास के विशेषज्ञ।

प्रकाशन : अग्रेरियन प्राब्लम्स ऑफ परमामेंट सेट्लमेंट – ए केस स्टडी ऑफ चम्पारण; पब्लिक सेक्टर इन इंडियन इकानमी; इकॉनमिक सिस्टम्स; आर्थिक प्रणालियां; नेहरू एंड द कांग्रेस : इकॉनमिक पालिसीज; ऐन इकॉनमिक हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया; वेस्टर्न फाइनेंशियल इंस्टीट्यूशन्स एंड डेवलपिंग कंट्रीज; डेब्ट प्रॉब्लेम : डाइमेंशन्स एंड एप्रोचेज; इंटेलेक्चुयल प्रॉपर्टी राइट्स एंड न्यू इंटरनेशनल इकॉनमिक आर्डर; राम मनोहर लोहिया : द मैन एंड हिज इज्म (सहलेखक)। इनके अतिरिक्त अनेक लेख।

कोई भी गरीब किसान के बारे में नहीं सोचता जो देश की रीढ़ की हड्डी है। और चूंकि किसान कमजोर और गरीब है, देश कमजोर और गरीब है। अगर हम भारत को खुशहाल बनाना चाहते हैं जहां स्वस्थ और शिक्षित स्त्री-पुरुष रहते हों तो हमें इस स्थिति को बदलना चाहिए। भारत का भविष्य किसान पर निर्भर है।

—जवाहरलाल नेहरू

भूमि सुधार : ग्रामीण विकास एवं सामाजिक न्याय

डा० लक्ष्मीरानी कुलश्रेष्ठ

लेखिका के अनुसार भूमि सुधार कार्यक्रम देश में निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम की शुरुआत मात्र था। इसकी गति बहुत धीमी रही है। इन सुधारों की गति में तेजी लाने की जरूरत है। भूमि के असमान वितरण को दूर करने के अलावा कृषि उत्पादकता बढ़ाना भी जरूरी है। लेखिका की मान्यता है कि यदि हम 30 करोड़ अधभूखे ग्रामीण बेरोजगारों की समस्याओं को हल करके 21वीं शताब्दी में प्रवेश करना चाहते हैं तो हमें भूमि सुधारों की तह तक पहुंचना चाहिए।

भूमि सुधारों से आशय भूमि के स्वामित्व, काश्त तथा प्रबन्ध से सम्बन्धित नीतियों में किये गये सभी प्रकार के परिवर्तनों से है। भारत के योजना आयोग के अनुसार भूमि सुधार लागू करने के उद्देश्य थे– कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये उन बाधाओं को दूर करना जो कृषि ढांचे में प्राचीन काल से चली आ रही हैं तथा कृषि पद्धति में विद्यमान शोषण तथा सामाजिक अन्याय के सभी तत्वों को समाप्त करना ताकि किसान को सुरक्षा प्राप्त हो सके एवं ग्रामीण जनसंख्या के सभी वर्गों को समान प्रतिष्ठा व अवसर प्राप्त हो सकें। इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु लागू किये गये भूमि सुधार थे– मध्यस्थों का उन्मूलन, जमींदारों व काश्तकारों के बीच सम्बन्धों के नियमन हेतु उचित लगान का निर्धारण, काश्त की सुरक्षा, काश्तकारों को राज्य के सीधे सम्पर्क में लाना तथा शनैः शनैः काश्तकारों को भूमि का स्वामित्व प्रदान करना, जोतों की उच्चतम सीमा का निर्धारण करके अतिरेक भूमि का पुनर्वितरण करना, आर्थिक जोतों के आकार में वृद्धि करना, बिखरी हुई जोतों की चकबंदी करना तथा आर्थिक आकार से कम जोतों के उपविभाजन व विखण्डन को रोकना, सहकारी खेती का विकास करना ताकि जोतों को आर्थिक इकाई बनाकर बड़े पैमाने की खेती के लाभ प्राप्त किये जा सकें तथा भूस्वामित्व के अभिलेखों का नवीनीकरण करना।

भारत में भूमि सुधार नीति के मूल्यांकन हेतु हमें यह देखना होगा कि यह सुधार आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की कसौटी पर कहां तक खरे उतरे हैं। विकास के अन्तर्गत वे सुधार आते हैं जिनसे उत्पादन व उत्पादकता बढ़ती है। सामाजिक न्याय के अंतर्गत मूल बात यह आती है कि किसानों को अपनी मेहनत एवं निवेश का पूरा फल मिले तथा कृषि अर्थव्यवस्था में असमानतायें कम हों। स्पष्टतः हमारे लिये भूमि सुधार की वही नीति ठीक होगी जो गांवों के विकास तथा सामाजिक न्याय की प्राप्ति में सहायक हो।

इस कसौटी के आधार पर भूमि सुधार कार्यक्रमों की दिशा बिल्कुल ठीक रहती है। उदाहरण के लिये जमींदारी उन्मूलन से न केवल सरकार के साथ किसानों का सीधा संपर्क स्थापित हो गया है बल्कि शोषणकारी वर्ग को हटा दिया गया है। लगान के निर्धारण, काश्तकारी सुरक्षा आदि उपायों का उद्देश्य यह रहा है कि काश्तकारों के प्रति न्याय किया जा सके और खेती में उन्नति लाने के लिये वे अभिप्रेरित हो सकें। जोत की सीमाबंदी नीति भी हमारे आदर्शों से मेल खाती है। इसके अंतर्गत बड़े बड़े भू-स्वामियों से फालतू भूमि लेकर भूमिहीन एवं छोटे किसानों के बीच उसे बांटने की व्यवस्था है। इससे भू-स्वामित्व की असमानतायें घटेंगी तथा छोटे किसानों द्वारा कुशल खेती के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न होंगी। छोटी जोतों के आकार में वृद्धि लाने तथा बिखरी जोतों की चकबंदी करने के लिए अपनाये गये

विभिन्न उपायों का उद्देश्य भी छोटे पैमाने की खेती को कुशल बनाना है। इस प्रकार भूमि सुधार सम्बन्धी समस्त उपाय विकास व न्याय के उद्देश्यों के अनुरूप हैं लेकिन भूमि सुधार के क्षेत्र में अभी तक जो प्रगति हुई है, वह बहुत ही धीमी व असंतोषजनक है। 1987 में श्री एम० एल० दांतवाला ने लिखा था कि जमींदारी उन्मूलन को छोड़कर अन्य किसी दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं की जा सकी है। आज भी देश में बहुत बड़े पैमाने पर खेती काश्तकारों द्वारा की जाती है, अनेक स्थानों पर लगान की दर ऊंची है और बेदखली का डर काश्तकारों को है। सीमाबन्दी नीति के अन्तर्गत बहुत थोड़ी भूमि ही प्राप्त की जा सकी है तथा भूमिहीन व छोटे किसानों के मध्य उसका बंटवारा और भी कम रहा है, ग्रामीण क्षेत्र में भारी असमानतायें बनी हुई हैं। कुछ राज्यों में काश्तकारी प्रथा अनौपचारिक रूप से अभी भी विद्यमान है।

हमारे लिए भूमि सुधार की वही नीति ठीक होगी जो गांवों के विकास तथा सामाजिक न्याय की प्राप्ति में सहायक हो।

इस प्रकार ठीक दिशा होने पर भी भूमि सुधार का कार्य वांछित गति से आगे नहीं बढ़ सका है। अतः भूमि सुधारों से विकास और सामाजिक न्याय के मोर्चे पर जिन अच्छे परिणामों की आशा की गई थी, वे प्राप्त नहीं हो सके हैं। विभिन्न अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भूमि सुधारों का निर्धन काश्तकारों पर विपरीत प्रभाव पड़ा है जबकि धनी मध्यस्थ पहले से अधिक प्रभावी हुए हैं। भूमि सुधारों की इस धीमी व असंतोषजनक प्रगति में इन दोषों व कमियों का मुख्य हाथ रहा है :

- विभिन्न राज्य के कानूनों में खुदकाश्त की जो परिभाषा दी गई, वह दोषपूर्ण थी। अधिकतर राज्यों में खुद देखरेख को खुदकाश्त का हिस्सा मान लिया गया, यद्यपि गांव में भू-स्वामी की मौजूदगी अनिवार्य नहीं थी। खुदकाश्त की इस दोषपूर्ण परिभाषा के आधार पर बहुत बड़े पैमाने पर काश्तकारों को भूमि से बेदखल किया गया। इन कानूनों में इस बात की व्यवस्था नहीं थी कि जमीन की मिल्कियत केवल उन्हीं किसानों के पास रहेगी जो स्वयं खेती करेंगे। इस अपर्याप्त नीति का परिणाम यह रहा कि कृषि क्षेत्र में सामन्ती, अर्द्ध सामन्ती भूस्वामी पैदा हो गये जो स्वयं खेती न करके बटाई या मजदूरी पर खेती कराते हैं। बहुत सी भूमि गैर कृषि लोगों के हाथों में भी चली गई। मध्यस्थों को भी खुदकाश्त के लिये बहुत बड़ी जमीन अपने पास रखने की अनुमति दी गई, जो जमींदारी उन्मूलन के उद्देश्यों के विपरीत था। कानूनों के क्रियान्वयन के पश्चात जमींदारों का केवल नाम बदल गया तथा ये अन्यत्र वासी भू-स्वामी बन गये हैं।

- भूमिसुधारों के अधिकांश अधिनियम राज्यों द्वारा तुरन्त लागू न करके कुछ समय उपरान्त लागू किये गये। इस दौरान समृद्धशाली मध्यस्थ भूमि को अपने परिवारजनों के नाम हस्तांतरित करके कानूनों की सीमा से बच निकले। कानून बनाने व क्रियान्वित करने में इतना अधिक अंतराल अन्य किसी क्षेत्र में नहीं रहा।

- उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्यों में बटाई के आधार पर खेती करने वालों को काश्तकार का दर्जा नहीं दिया गया, यद्यपि ये काफी बड़ी भूमि पर काश्त करते थे। बड़े व समृद्धशाली काश्तकारों द्वारा बटाई पर भूमि देने का कोई लिखित अनुबंध नहीं किया जाता, अतः इस प्रकार के काश्तकारों के अधिकारों की सुरक्षा का कोई प्रावधान नहीं है। भूमि सुधारों के बाद काश्तकारों ने भूमि खरीदने के अधिकार या तो स्वेच्छा से या फिर दबाव में समर्पित कर दिये। चौथी पंचवर्षीय योजना में पहली बार इस समस्या के समाधान के लिए यह सुझाव दिया गया था कि स्वैच्छिक समर्पण केवल राज्य के ही पक्ष में करने की अनुमति दी जानी चाहिए। परन्तु बहुत कम राज्यों ने इस सुझाव को स्वीकार किया।

- जोत की सीमाबंदी के अंतर्गत इस बात की कोई व्यवस्था नहीं की गई कि इससे प्राप्त अतिरिक्त भूमि केवल स्वयं खेती करने वाले किसानों को ही मिलेगी। जोत के आकार में वृद्धि और जोत विखण्डन को दूर करने की नीति को अच्छी खेती के साथ नहीं जोड़ा गया; इस नीति में यह व्यवस्था नहीं की गई कि चकबंदी के बाद यदि जोत का आकार आर्थिक न हो पाये तो आवश्यक रूप से उसे सहकारी खेती का अंग बनना पड़ेगा।

- विभिन्न राज्यों तथा एक ही राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में भूमि की उच्चतम सीमा में काफी अधिक अन्तर रहा है। सीमाबंदी कानूनों में एकरूपता लाने के उद्देश्य से जुलाई 1972 में राज्य मंत्रियों की गोष्ठी बुलाई गई थी परन्तु तब तक काफी क्षति हो चुकी थी तथा विभिन्न किस्म के हस्तान्तरणों व भ्रष्ट तरीकों की वजह से बहुत कम भूमि अतिरिक्त भूमि के रूप में प्राप्त हो सकी। सीमाबन्दी कानूनों से रियायतों व छूटों की सूची भी बहुत लम्बी थी।

भूमि सुधारों के अधिकांश अधिनियम राज्यों द्वारा तुरंत लागू न करके कुछ समय उपरांत लागू किये गये। इस दौरान समृद्धशाली मध्यस्थ भूमि को अपने परिवारजनों के नाम हस्तांतरित करके कानूनों की सीमा से बच निकले। कानून बनाने व क्रियान्वित करने में इतना अंतराल अन्य किसी क्षेत्र में नहीं रहा।

- यदि हम भूमि सुधार के सब पहलुओं को एक साथ लें तो सुसम्बद्ध दृष्टिकोण का अभाव स्पष्ट दिखाई देगा। वास्तव में हमारी भूमि सुधार नीति व उसके कार्यान्वयन की सबसे बड़ी कमी यही रही है। भूमि सुधार के अंश वास्तव में एक दूसरे से जुड़े हुये हैं और इनकी प्रगति एक दूसरे पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिये सीमाबंदी का पहलू जोत के उपविभाजन व विखण्डन से जुड़ा हुआ है। सीमाबंदी से प्राप्त होने वाली अतिरिक्त भूमि छोटी एवं बिखरी जोतों की समस्या के समाधान में सहायक हो सकती है। इसी प्रकार काश्तकारी सुधार के अन्तर्गत छोटे किसानों को भूस्वामी बनाने की नीति में सीमाबंदी कार्यक्रम महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। इस प्रकार का सुसम्बद्ध दृष्टिकोण अपनाने से भूमि सुधार की लागत कम हो जाती है। भूमि सुधार सम्बन्धी कानून बनाना, उन्हें लागू करने के लिये प्रशिक्षित कर्मचारी वर्ग तैयार करना, भूमि का पूरा रिकार्ड रखना आदि ऐसे कार्य हैं जिन्हें यदि भूमि सुधार के सब पहलुओं के लिये किया जाये तो स्पष्टतः लागत कम बैठती है तथा इन्हें लागू करना अपेक्षाकृत आसान हो जाता है। लेकिन देश में भूमि सुधार के सम्बन्ध में ऐसा दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया। भूमि सुधारों को आर्थिक विकास की मुख्यधारा से पृथक रखकर लागू किया गया तथा भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न अंशों पर जोर डाला गया। अतः भूमि सुधार हेतु अनुकूल वातावरण नहीं बन पाया। चकबंदी कार्यक्रम को बिना ग्रामीण अधःसंरचना को विकसित किये लागू किया गया। अतः वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सके।

- प्रारम्भ से ही वित्तीय अभाव भूमि सुधारों की दुर्बलता का आधार रहे हैं। भूमि सुधारों हेतु वित्त की पंचवर्षीय योजनाओं में अलग से कोई व्यवस्था नहीं की गई।

- वर्तमान में स्वामित्व वाली भूमि पर तो सीमा कानून लागू हैं लेकिन बटाई पर भूमि लेकर खेती करने वालों पर यह सीमा लागू नहीं है। अनेक राज्यों में अनुसूचित जाति/जनजाति के व्यक्तियों को अपनी भूमि कृषि कार्य हेतु दूसरों को पट्टे पर देने की अनुमति मिल सकती है, जो गलत है। जोत चकबंदी की योजना को लागू करने से अनेक काश्तकार व बटाईदार भूमि से बेदखल हुए हैं। चकबंदी से पूर्व जोत विखन्डित होने के कारण बटाई पर दे दी जाती थी, लेकिन अब एक ही खण्ड में होने से स्वयं कृषि संभव हुई है।

- भूमि सुधार के क्षेत्र में धीमी व असंतोषजनक प्रगति के लिए राजनीतिक कारक कम महत्वपूर्ण नहीं ठहरते। देश में इसके लिये अनुकूल राजनीतिक वातावरण का बड़ा अभाव है। न तो विभिन्न राजनीतिक संगठन इस विषय में एक राय रखते हैं और न ही देश का प्रशासनिक ढांचा भूमि सुधारों के प्रति वचनबद्ध है। ऐसी स्थिति में सही ढंग के अधिनियमों को बनाया जाना और कड़ाई के साथ उनको अमल में लाना कैसे संभव हो सकता है?

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भूमि सुधार भारत में असफल रहे हैं, लेकिन कोई भी इनके महत्व से इंकार नहीं कर सकता। सन् 1960 के दशक के मध्य में नवीन कृषि तकनीक से यह उम्मीद बंधी थी कि इसे बड़े स्तर पर प्रयोग करने से उत्पादन व ग्रामीण निर्धनता की समस्या से निजात मिल सकेगी लेकिन 1970 के बाद यह मोह भंग हो गया कि केवल नवीन कृषि तकनीक निर्धनता की समस्या का समाधान प्रस्तुत करती है। गरीब व अमीर किसानों में बड़ी असमानताओं के कारण केवल धनी किसान ही इस तकनीक का प्रयोग करने में सक्षम थे। हरित क्रांति की सीमित सफलता के बाद यह भ्रम दूर हो जाने से कृषि विकास के कार्यक्रमों में भूमि सुधारों को एक बार फिर से महत्व दिया जाने लगा है। कृषि विकास में भूमि सुधारों का महत्व इस दृष्टि से है कि जब

भी कृषि सम्बन्धों में मध्यस्थों को हटाकर काश्तकार को भूमि का स्वामित्व दे दिया जाता है तो कृषि भूमि पर स्थायी सुधार के लिये अनुकूल स्थिति बनती है। इस स्थिति में काश्तकार भूमि पर निवेश करने के लिये तैयार रहता है, जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है। इससे एक ओर काश्तकार के उपभोग स्तर को ऊंचा उठाने में सहायता मिलती है, वहीं इससे कृषि क्षेत्र में आर्थिक आधिक्य में भी वृद्धि होती है, जिसके निवेश द्वारा कृषि विकास की सम्भावनायें बढ़ती हैं।

यह सर्वविदित है कि भारत में भूमि सुधार कार्यक्रम संतोषजनक परिणाम नहीं दे सके हैं। इसका कारण नीति सम्बन्धी दोष नहीं बल्कि इन्हें असमान ढंग से लागू करना है। भूमि सुधार

भूमि सुधारों को आर्थिक विकास की मुख्यधारा से पृथक रखकर लागू किया गया तथा भिन्न भिन्न समय पर भिन्न भिन्न अंशों पर जोर डाला गया। अतः भूमि सुधार हेतु अनुकूल वातावरण नहीं बन पाया। चकबंदी कार्यक्रम को बिना ग्रामीण अधःसंरचना को विकसित किये लागू किया गया। अतः वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सके।

नीतियों ने, जिनका मुख्य उद्देश्य भूमिहीनों को राहत देना था– स्वकृषि को बढ़ावा दिया, इस कारण काश्तकार भूमि से बेदखल कर दिये गये। इन कानूनों ने ग्रामीण विशिष्ट वर्ग के आधार को ही मजबूत किया है। अतः भूमि सुधारों के वास्तविक लाभार्थी धनी कृषक ही रहे हैं। इन कानूनों का संरक्षण काश्तकारों की केवल ऊपरी सतह को ही प्राप्त हुआ है। सभी काश्तकारों को नहीं। पिछले 45 वर्षों की प्रगति से यह स्पष्ट है कि ये सुधार स्वामित्व के वितरण तथा ग्रामीण निर्धनता का उन्मूलन करने में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं कर सके हैं। इन्होंने न तो भूमिहीनों तथा सीमान्त कृषकों की कोई मदद की है और न काश्तकारों व सह-काश्तकारों के हितों को ही कोई संरक्षण प्रदान किया है। इनका उद्देश्य भूमिहीनों एवं सीमान्त कृषकों को मालिकाना हक दिलाना रहा है, ताकि वे भूमि से अधिक आय प्राप्त करके निर्धनता का निवारण कर सकें।

अतः भूमि सुधार उपायों को नई दिशा देने तथा निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम का आधार बनाने की आवश्यकता है। भूमि सुधार ग्राम्य विकास का आधार है। कृषि का भविष्य भूमि के ढांचागत संतुलन तथा उसके अनुकूलतम उपयोग पर निर्भर करता है। भूमि सुधार एवं ग्रामोत्थान के मुद्दे एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। भूमि सुधारों का उद्देश्य कृषि जनित आय का समतापूर्ण वितरण होना चाहिये। चूंकि विकास एवं न्याय दोनों दृष्टियों से यह कार्य बहुत महत्वपूर्ण व आवश्यक है, अतः स्थिति में तेजी से सुधार लाने हेतु उपाय किये जाने चाहिये।

सभी भूमि सुधार कानूनों एवं कुछ अन्य कानूनों को संविधान की नवीं अनुसूची में अविलम्ब शामिल किया जाये ताकि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर इन्हें न्यायालय में चुनौती न दी जा सके। यह प्रसन्नता का विषय है कि संसद के मानसून सत्र में पारित 81वें संविधान संशोधन अधिनियम में सभी भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नवीं सूची में शामिल किया जा रहा है। इससे पूर्व 13 अधिनियम प्रथम संशोधन द्वारा 14 अधिनियम 1984 के 47वें संशोधन द्वारा तथा 55 भूमि सुधार अधिनियम 1990 के 66वें संशोधन द्वारा नवीं अनुसूची में शामिल किये जा चुके हैं। जो अधिनियम अभी तक बनाये गये हैं उन्हें भरपूर ढंग से अमल में लाया जाये।

भूमि के सम्बन्ध में सारे रिकार्ड पूरे व सही हों तथा समय के साथ इसमें आवश्यक संशोधन होते रहने चाहिये। हमारे यहां भूमि अभिलेखों में सुधार की पर्याप्त गुंजायश है। अभिलेखों का वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है, इनकी अपडेटिंग व निरीक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है। इनको तैयार करने की लागत भी अधिक आती है। समुचित भू राजस्व एवं भूमि अभिलेख प्रणाली कृषि विकास कार्यक्रमों हेतु जरूरी है। प्रत्येक राज्य में राजस्व मशीनरी को सशक्त बनाया जाये ताकि काश्तकारी व सीमा निर्धारण जैसे कानूनों का प्रभावशाली क्रियान्वयन हो सके। इस मशीनरी को कानूनों के क्रियान्वयन में आने वाली परेशानियों को दूर करने के लिए कानूनी अधिकार प्राप्त होने चाहिए।

सीमाबंदी कानूनों को प्रभावी तरीके से शीघ्र लागू किया जाए। बेनामी हस्तान्तरणों को रोका जाये, राज्य द्वारा इस प्रकार के हस्तान्तरणों की जांच कराकर दोषियों को दण्डित किया जाए। यद्यपि उत्पादकता की दृष्टि से सीमाबंदी कानूनों का विरोध इन आधारों पर किया जाता रहा है कि इससे शहरों व ग्रामीण आय में अन्तराल बढ़ने की संभावना है क्योंकि शहरी सम्पत्ति पर इस प्रकार का कोई सीमा निर्धारण नहीं है। इनसे कृषि के यंत्रीकरण की प्रक्रिया हतोत्साहित होगी क्योंकि छोटी जोतों पर यांत्रिक कृषि

अनार्थिक होती है। सीमा निर्धारण के बाद भी यदि उत्तराधिकार के नियमानुसार भूमि का विभाजन निरंतर जारी रहा तो आगामी पीढ़ियों को अनार्थिक जोतें ही हाथ लगेंगी। यह सत्य है कि उत्पादन बढ़ाने के लिये यांत्रिक कृषि जरूरी है लेकिन श्रम सघन कृषि से भी समान परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। जापान इसका उदाहरण है; हम छोटी जोतों पर भी वैज्ञानिक ढंग से कृषि कर सकते हैं। छोटी जोतों के ह्रेते हुये सहकारी आधार पर भी हम यांत्रिक कृषि के लाभ प्राप्त कर सकते हैं। अतः यांत्रिक कृषि व उत्पादन वृद्धि में सीमाबंदी कानून बाधक नहीं है, लेकिन यह भी सत्य है कि भूमि सीमा बंदी का नारा भारतीय संदर्भ में अब और अधिक नहीं चल सकता। आवंटित करने के लिए अब और भूमि उपलब्ध नहीं।

बहुत से राज्यों में सिंचाई प्रणाली के कमाण्ड क्षेत्रों में एक या दोनों फसलों हेतु पानी का उपयोग करने की पसंद किसानों के हाथ में है। सीमाबंदी कानूनों से यह भय है कि इन परियोजनाओं की पूर्ण क्षमता प्रयुक्त न हो सके; अतः यह निर्णय व्यक्तिगत सनक पर न छोड़े जायें। सीमाबंदी कानून सिंचाई प्रणाली की जल उपयोग क्षमता के आधार पर लागू किये जायें ताकि भारी लागत से सृजित सिंचाई क्षमता अप्रयुक्त न रह जाये।

अभी तक अतिरिक्त भूमि का वितरण उन्हीं क्षेत्रों तक था जहां केन्द्र प्रायोजित कार्यक्रम एस० एफ० डी० ए०, आई० आर० डी० पी० आदि लागू नहीं थे। आवश्यकता भूमि को सभी क्षेत्रों में वितरित करने की तथा राज्य सरकार द्वारा आबंटित भूमि के विकास हेतु विशिष्ट कार्यक्रमों को बनाये जाने की है। भूदान में मिली भूमि के त्वरित वितरण व विकास करने की भी जरूरत है, विशेष रूप से वह भूमि जो सघन ब्लाकों में स्थित हो।

भूमि सुधारों से जिन किसानों को लाभ पहुंचा है उन्हें संगठित किया जाये तथा आवश्यक कृषि साधन उपलब्ध कराये जायें। भारत में शोषित वर्ग को संगठित करना बहुत कठिन कार्य है लेकिन उन्हें संगठित करना बहुत आवश्यक है। यदि भारत की राजनीतिक शक्ति शोषितों की समस्याओं का समाधान पा सके, जिनका बड़ा वर्ग गांवों में निवास करता है तब कोई भी आंदोलन किसानों को आकर्षित न कर सकेगा। यदि कृषिगत प्रश्न अनुत्तरित रहते हैं तब नक्सलवादी या गुरिल्ला लड़ाइयां होती हैं। पिछले कई वर्षों में कृषक आंदोलनों ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय किसान भी आंदोलनकारी हो सकता है। समितियों, राजनीतिक सम्मेलनों आदि के माध्यम से भूमि सुधार के कार्य से लोगों को सम्बद्ध करने की आवश्यकता है। संभवतः सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि देश में भूमि सुधार के लिये अनुकूल जनमत तैयार किया जाये। यह राज्य का विषय है इन सुधारों को स्थायी एवं उस राज्य की परिस्थितियों के अनुरूप बनाया जाये।

भूमि सुधार केवल उन प्रयासों की श्रृंखला की शुरुआत मात्र थी जिसमें ग्रामीण निर्धन वर्ग न्यूनतम आय को प्राप्त करके निर्धनता से निजात पा सके। लेकिन अब इन सुधार कार्यक्रमों को अन्य प्रयासों से गति प्रदान करने की आवश्यकता है। ग्रामीण विकास हेतु कृषि उत्पादकता में वृद्धि करना जरूरी है, लेकिन असमान कृषि व्यवस्था में यह अत्यन्त कठिन कार्य है; इस हेतु भूमि सुधार आवश्यक है। अतः ग्रामीण विकास हेतु हमें तीन मोर्चे संभालने होंगे। सर्वप्रथम – भूमि वितरण के लक्ष्य को प्राप्त करना। द्वितीय – पूर्ति ढांचे को लचीला बनाना। तृतीय – ग्रामीण अधःसंरचना को सशक्त बनाना। भूमि सुधारों के बाद आवश्यकता

भूमि सुधारों का प्रश्न आर्थिक है तथा राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित है। जब तक भूमि सुधार कार्यक्रम ग्रामीण जीवन की तह तक नहीं पहुंचेंगे, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का आधार एवं सुपर स्ट्रक्चर दोनों ही कमजोर रहेंगे।

पूर्ति पक्ष के तत्वों – तकनीकी, उर्वरक, साख, सिंचाई, अधःसंरचना आदि में सुधार करने तथा कृषि निर्यात पर नियंत्रण समाप्त करने की है। ग्रामीण अधःसंरचना का विकास इसलिये जरूरी है कि किसान को कृषि आगतें पर्याप्त मात्रा में समय पर व न्यूनतम लागत पर उपलब्ध हो सकें तथा उपभोक्ताओं द्वारा उनके उत्पाद हेतु चुकाये गये मूल्य में उनको अधिकतम अंश मिल सके। कृषि व्यापार को स्वतंत्र छोड़ देने से यद्यपि मूल्यवृद्धि की संभावना है, लेकिन इस स्थिति का सामना जरूरतमंदों हेतु सुरक्षानेट स्थापित करके किया जा सकता है।

अनुभवों से यह स्पष्ट है कि भूमि के लीज मार्केट को स्वतंत्र कर देने से साधन प्रयोगों में समानता व कुशलता बढ़ सकती है। जहां भूमि पर दबाव अधिक, मजदूरी कम, निर्धनता अधिक है वहां काश्तकार व छोटे सीमान्त किसान भी पट्टे पर भूमि ले सकते हैं। इससे भूमि, श्रम व अन्य साधनों का अधिक कुशल प्रयोग संभव हो सकेगा। दूसरी ओर उन क्षेत्रों में जहां तकनीकी परिवर्तन व वृद्धि की ऊंची दरें, भूमि पर कम दबाव, ऊंची मजदूरी दरें हैं,

(शेष पृष्ठ 84 पर)

भूमि सुधार और कृषि उत्पादन

सुन्दर लाल कुकरेजा

सरकार के पास फालतू बेकार पड़ी जमीन को गरीबों में बांटने के बारे में जो नीति तय की गई थी उस पर पूरी तरह अमल नहीं किया गया। इस तरह भूदान में प्राप्त जमीन में भी लगभग आधी भूमि का ही वितरण किया गया। यह जानकारी देते हुए लेखक ने विचार व्यक्त किया है कि भूमि सुधारों को केवल भूमि के वितरण और उसके दस्तावेजों की तैयारी तक सीमित न रखते हुए कृषि क्षेत्र के विकास को भी इन सुधारों के एक अंग के रूप में अपनाना होगा।

इस देश में, जहां 70 प्रतिशत लोग अपनी आजीविका के लिए खेती और खेतों पर आश्रित हों, भूमि सुधारों की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से कृषि आधारित और उससे संबंधित विषयों की ओर निरन्तर ध्यान दिया जाता रहा है। स्वतंत्रता के तत्काल पश्चात् किसानों की सबसे बड़ी समस्या भूमि के असमान वितरण की थी। जब एक ओर जमींदारों के पास बड़े-बड़े खेत और भूसम्पति थी तो दूसरी ओर किसानी के लिए तत्पर लोगों के पास जमीन का एक छोटा टुकड़ा भी नहीं था। भूमि का यह असमान वितरण, गरीबी का मुख्य कारण समझा जाता था और इसीलिए सरकार ने सबसे पहले जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करके चकबन्दी का काम हाथों में लिया था। उसी के साथ भूमि सीमा संबंधी कानून बना कर कुछ लोगों के कब्जे में पड़ी अत्यधिक जमीन को मुक्त कराया गया और उसका वितरण उन लोगों में किया गया जिनके पास जमीन नहीं थी। उसी दौरान 'जो जमीन जोते, वही उसका मालिक हो' का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया और भूमि सुधारों को आगे बढ़ाने में वह पर्याप्त प्रेरणादायक सिद्ध हुआ।

किन्तु जैसा कि कहा जाता है, संसार के अनेक युद्ध, भूमि पर अधिकार जमाने और उस पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए लड़े गए, यह काम इतना आसान नहीं था कि भूस्वामी अपनी सम्पति केवल कानून बना देने से ही छोड़ने को तैयार हो जाते। कानून के साथ साथ उनकी सोच और मनोवृत्ति में भी समय के अनुकूल परिवर्तन आवश्यक था। यह परिवर्तन लाने और समाज के सम्पन्न वर्ग में वंचितों के प्रति चेतना व सद्भाव जगाने के लिए आचार्य विनोबा भावे जैसे सन्तों ने भूदान आन्दोलन शुरू किया था। उन्होने समाज का आह्वान किया था कि अगर आपके चार बेटे हैं तो मुझे पांचवा बेटा मानकर जमीन दे दो। उनका यह आह्वान भूदान आंदोलन का मूल मंत्र बन गया था और इसके माध्यम से लाखों एकड़ जमीन, भूमिहीनों में वितरण के लिए उपलब्ध हो सकी थी।

भूदान आन्दोलन और भूमि सुधारों की आवश्यकता के इस सामाजिक पहलू के साथ ही एक महत्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न भी जुड़ा था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश का आर्थिक विकास करने के लिए संसाधनों का अभाव था और जो कुछ साधन उपलब्ध थे, उनका अधिकतर उपयोग औद्योगिक विकास का ढांचा खड़ा करने के लिए किया जा रहा था। इसलिए भारत का मूल धंधा-कृषि और खेतीबाड़ी उपेक्षित ही रह गया था। एक ओर तो भारत की जनसंख्या बढ़ रही थी। दूसरी ओर कृषि उत्पादन इतना कम हो गया था कि अपना पेट भरने के लिए भारत को हर वर्ष भिक्षापात्र हाथ में लेकर विदेशों से अन्न मांगना पड़ता था। अगर उन्हीं दिनों कृषि उत्पादन बढ़ाने और भूमि सुधार लागू करने के लिए उतने प्रयास किए जाते जितने औद्योगिक विकास के लिए किए गए तो आज हमारी स्थिति बहुत भिन्न होती। यह देश के लिए दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति थी कि उद्योगों के विकास को जहां प्रगति और विकास तथा आधुनिकता का प्रतीक समझा गया, वहां कृषि उत्पादन को दूसरी श्रेणी का दर्जा देकर उसकी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जा सका।

भूमि सुधार के अभिन्न अंग

कृषि क्षेत्र की उपेक्षा के कारण न केवल हमारा खाद्यान्न उत्पादन हमारी बढ़ती मांग की अपेक्षा कम रहा अपितु हमने खेत खलिहानों में निवेश की ओर भी ध्यान नहीं दिया। हम समुचित मात्रा में न तो सिंचाई के साधन जुटा पाए, न सूखे का सामना करने की रणनीति पर अमल कर सके। भूमि सुधारों का कोई भी प्रयास तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक हम केवल कृषि योग्य, सिंचित भूमि के वितरण और उस पर खेती करने वालों के अधिकारों व हितों के बारे में सोचते ही रहेंगे। परती और बंजर भूमि का विकास, जहां वर्षा कम होती है, वहां बारानी खेती को बढ़ावा देना और जहां सिंचाई के साधन नहीं हैं, उन इलाकों में वहां की परिस्थितियों के अनुकूल फसलें उगाने के प्रयास भी भूमि सुधारों का ही अभिन्न अंग हैं। हमारा उद्देश्य एक से छीन कर दूसरे को जमीन देना नहीं है। हमारा लक्ष्य होना चाहिए भारत में प्रति व्यक्ति जमीन की उपलब्धता और उसकी उर्वरकता में वृद्धि करना जिससे हमें अधिक अन्न उत्पादन के लिए ही नहीं, पशुओं के चरागाह, सड़कों, बांधों, कारखानों, आवासीय मकानों व अन्य सुविधाओं के लिए भी जमीन मिल सके। तभी हमारा कृषि का उत्पादन बढ़ेगा, ग्रामीण विकास होगा और ग्रामीण जनता का जीवन स्तर-ऊंचा उठ सकेगा। गांवों से शहरों की ओर पलायन को रोकने का भी यही एकमात्र उपाय है कि हम काम की तलाश में भटक रहे अपने बेरोजगार युवकों को गांवों में ही काम और रोजगार उपलब्ध करा सकें। गरीबी उन्मूलन के हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति का यह सबसे टिकाऊ और लाभदायक मार्ग है कि उन कारणों को दूर किया जाए जो व्यक्ति या समाज की सम्पन्नता के मार्ग में बाधक हैं। भूमि का हर स्तर पर सुधार ऐसा ही मार्ग है।

कृषि उत्पादन बढ़ाने और भूमि सुधार लागू करने के लिए उतने प्रयास किए जाते जितने औद्योगिक विकास के लिए किए गए तो आज हमारी स्थिति बहुत भिन्न होती।

भूमि उपलब्धता में कमी

भूमि सुधारों की आवश्यकता इसलिए भी अधिक है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भारत में प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता कम होती जा रही है। भौगोलिक रूप से जो कारण इसके लिए उत्तरदायी हैं उनमें भूमि क्षरण, जल प्लावित होने के कारण भूमि की अनुपयोगिता, उद्योगों, रक्षा संस्थानों, आवासीय इकाइयों, सड़कों, रेलों आदि के लिए भूमि की आवश्यकता में वृद्धि शामिल हैं। उर्वरकता खत्म या कम हो जाने से भी जमीन खेती के योग्य नहीं रह जाती है। दूसरी ओर आबादी का निरन्तर विस्तार हो रहा है। यही कारण है कि 1950 में जहां प्रति व्यक्ति 0.89 हेक्टेयर भूमि उपलब्ध थी, वहां यह अनुमान लगाया जा रहा है कि एक दशक बाद यानी सन् 2007 तक भूमि की प्रति व्यक्ति उपलब्धता केवल एक तिहाई अर्थात 0.30 हेक्टेयर ही रह जाएगी। बढ़ती जनसंख्या और घटती जमीन के दबाव का असर पशुधन पर भी पड़ने लगा है। पशुधन के लिए 1950 में प्रति व्यक्ति 1.1 हेक्टेयर भूमि उपलब्ध थी लेकिन अगले दशक के अंत तक यह आधी रह जाने की आशंका है। दूसरी ओर इस समय विविध ग्रामीण और शहरी आवश्यकताओं, सड़क, रेल, उद्योग आदि के लिए दो करोड़ पन्द्रह लाख हेक्टेयर भूमि का उपयोग हो रहा है। सन् 2007 तक इन प्रयोजनों के लिए करीब 50 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता होगी अर्थात उतनी ही मात्रा में कृषि योग्य भूमि कम हो जाएगी और उसी अनुपात में कृषि उत्पादन भी प्रभावित होगा।

हम पहले ही अपनी आज की आवश्यकता को पूरा करने के लिए भविष्य से उधार लेकर अपना पर्यावरण नष्ट करने में लगे हैं। आंकड़े इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि हमने नगरों, गांवों की सड़कों और उद्योगों के लिए वनों की कटाई की है। यह भी ठीक है कि कुछ वनों को काट कर हमने कृषि के बुआई क्षेत्र में वृद्धि की है, लेकिन अब ऐसी कोई गुंजाइश नजर नहीं आती।

इस समस्या का केवल एक ही विकल्प हो सकता है कि बंजर भूमि, लवणता तथा क्षारीयता और जल प्लावन से प्रभावित भूमि का सुधार किया जाए। तभी हम कृषि योग्य और बुआई के क्षेत्र में आने वाली भूमि को प्राप्त कर सकेंगे। हमें यह नीति निर्धारित करनी होगी कि उपलब्ध बंजर भूमि का सुधार करने में जहां कहीं आवश्यक हो, भूमि सुधार कार्य निष्पादन की गति को कम किए बिना निजी क्षेत्र की पहलशक्ति तथा सुविज्ञता का उपयोग किया जाए।

भारत में भूमि सुधारों की एक महती आवश्यकता भूमि क्षरण या अपकर्ष को रोकने की है। भूमि अपकर्ष की स्थिति बहुत ही भयावह है। 1984-85 में लगभग 17 करोड़ 40 लाख हेक्टेयर

भूमि कटाव और क्षरण की विभिन्न समस्याओं से प्रभावित थी। इसमें से लगभग 8 लाख हेक्टेयर भूमि जल प्लावन, 40 लाख हेक्टेयर तंग घाटियों और दर्रों, 35 लाख हेक्टेयर क्षारीयता से और लगभग 60 लाख हेक्टेयर भूमि लवणता और रेतीले क्षेत्र से प्रभावित है। इस भूमि में सुधार के लिए पिछले दशक में काफी प्रयास किए गए और करीब एक चौथाई भूमि में सुधार किया भी गया है, तथापि यह समस्या अभी बहुत गंभीर है।

सूखा व बाढ़ की रोकथाम

सूखा और बाढ़ की रोकथाम, भूमि सुधारों का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है। यह ऐसी समस्याएं हैं जो लगभग हर वर्ष कृषि को बुरी तरह प्रभावित करती हैं और कृषि उत्पादन के हमारे प्रयासों को निष्फल कर देने के साथ ही किसानों को भी प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का नुकसान पहुंचाती हैं। अनुमान है कि प्रति वर्ष औसतन 80 लाख हेक्टेयर भूमि बाढ़ की चपेट में आ जाती है और खड़ी फसलें नष्ट हो जाती हैं। जो जमीन बाढ़ से प्रभावित होती है, उसमें से लगभग 40 प्रतिशत कृषि क्षेत्र होता है। कुल मिलाकर 6 करोड़ 40 लाख हेक्टेयर कृषि क्षेत्र ऐसा है जो कभी बाढ़ या कभी सूखे से प्रभावित होता है। इसके कारण भूमि का कटाव तेजी से होता है और भूमि की उर्वरा शक्ति भी पानी के साथ बह कर चली जाती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अनुमान के अनुसार इससे प्रति वर्ष 16.35 टन मिट्टी की हानि होती है।

गरीबी उन्मूलन के हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति का यह सबसे टिकाऊ और लाभदायक मार्ग है कि उन कारणों को दूर किया जाए जो व्यक्ति या समाज की सम्पन्नता के मार्ग में बाधक हैं। भूमि का हर स्तर पर सुधार ऐसा ही मार्ग है।

भूमि सुधार की समस्या से बिलकुल सीधा जुड़ा हुआ प्रश्न जल संसाधनों का प्रबंध है। भारत में पर्याप्त औसत वार्षिक वर्षा तथा लगभग 15 करोड़ 80 लाख हेक्टेयर मीटर के जल प्रवाह के कारण जल संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इसमें से कुल उपयोग होने वाला जल 11 करोड़ 40 लाख हेक्टेयर मीटर ही है जिसमें से साढ़े चार करोड़ हेक्टेयर मीटर भूमिगत जल के रूप में और शेष ऊपरी जल के रूप में उपलब्ध है। किन्तु भारत की भौगोलिक स्थिति और जल संसाधनों के पूर्ण उपयोग की विधियां और सिंचाई के साधन पूरे न होने के कारण इसमें से केवल एक सीमित भाग का ही उपयोग किया जा सकता है। यदि हम पूरे जल संसाधनों का उपयोग कर सकें तो भूमि सुधारों का एक बड़ा उद्देश्य पूरा करने की दिशा में हम तेज गति से चल सकेंगे और हमारा कृषि उत्पादन भी काफी बढ़ सकेगा।

किन्तु समस्या यह है कि जल प्रयोग की जो योजनाएं बनाई जाती हैं, उन से जल की लागत भी बढ़ती जाती है। सिंचाई की अनेक परियोजनाएं ऐसी हैं जो वर्षों से अधूरी पड़ी हैं। धन के अभाव में उनपर काम पूरा नहीं हो पाता जिससे एक ओर उनकी कुल लागत लगातार बढ़ती जाती है और दूसरी ओर किसानों को उनका लाभ नहीं मिल पाता। इस प्रकार उनमें पहले से लगा धन भी व्यर्थ चला जाता है। जल संसाधनों की प्रचुरता के बावजूद हम उनका अधिकतम उपयोग करने के स्थान पर उसे राजनीति और विवादों का विषय बना लेते हैं। जल एक नैसर्गिक उपहार है। भूमि सुधार की दिशा में हमारा सबसे बड़ा योगदान यही होगा कि विवादों में घसीटने के बजाए उसे हम राष्ट्रीय सम्पत्ति माने और जल संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग कर उनसे अधिकतम लाभ उठाएं।

ये कुछ ऐसे पहलू हैं, जिनका भूमि सुधार की परम्परागत धारणा से सीधा सम्बन्ध न होते हुए भी, जो उन लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं जिनके लिए भूमि सुधारों पर बल दिया जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है भूमि सुधार केवल भूमि का वितरण और उसका स्वामित्व ही नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी परियोजना है जिसमें भूमि की उपलब्धि, उसकी उर्वरकता और उत्पादकता में वृद्धि करना और [illegible] के द्वारा कृषि उत्पादन बढ़ा कर किसानों तथा आम जनता का हित साधना ही हमारा उद्देश्य है। इनमें से अगर किसी भी पक्ष की अवहेलना की गई अथवा उसके प्रति उदासीनता बरती गई तो कृषि सुधार अवश्य प्रभावित होंगे क्योंकि भूमि सुधार, व्यापक कृषि सुधार और ग्रामीण विकास का ही एक अनिवार्य पक्ष है।

फिर भी, जहां तक भूमि के वितरण और जोतों की पुनर्संरचना का प्रश्न है, दो पहलुओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता निरन्तर अनुभव की जाती रही है। इनमें से एक पहलू चकबन्दी से सम्बन्धित है और दूसरा सरकारी परती जमीन तथा भूदान में मिली भूमि से सम्बन्धित है। चकबन्दी के सम्बंध में छोटे किसानों के मन में यह आशंका अक्सर रहती है कि भूखण्डों के आदान प्रदान में उनके साथ अन्यायपूर्ण रवैया अपनाया जायेगा। एक

दूसरी धारणा यह है कि परिवार बढ़ने और बच्चों के वयस्क होते रहने से जोतों के विभाजन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है और पुरानी व्यवस्था से समस्या का हल नहीं होता। केवल कानून बना देने से इस समस्या का समाधान या इन धारणाओं का खण्डन नहीं किया जा सकता। इनका हल यही है कि किसानों में जागृति पैदा की जाए और उन्हें यह समझाने की कोशिश की जाए कि भूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटते रहने से कोई लाभ नहीं होगा। उनके लिए लाभकारी यह होगा कि भूमि को बांटने की अपेक्षा वे भूमि से प्राप्त आय का हिस्सा बांट लें। भूमि सुधार निर्धनता उन्मूलन की रणनीति का बुनियादी अंश है और भूमि का बहुत छोटे टुकड़ों में बंटवारा निर्धनता मिटाने में सहायक सिद्ध नहीं होगा।

दान में मिली भूमि

भूमि सुधारों के आवश्यक अंग के रूप में यह नीति निर्धारित की गई थी कि सरकार के पास जो फालतू बेकार जमीन पड़ी है, वह देहातों के गरीबों में बांट दी जाएगी, लेकिन नीति के इस पहलू पर दुर्भाग्य से समुचित ध्यान नहीं दिया जा सका। देश में करीब 32 करोड़ एकड़ ऐसी जमीन सरकार के पास है जिसका वितरण किया जा सकता है, किन्तु अब तक करीब एक करोड़ 28 लाख एकड़ भूमि का ही वितरण किया जा सका है। उससे भी दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि अधिकांश राज्यों में यह पाया गया है कि जिन लोगों को यह जमीन दी गई थी, उनके कब्जे में अब वह जमीन नहीं रही। वह या तो बेच दी गई अथवा बहुसंख्य मामलों में उनसे उसका कब्जा छीन लिया गया। अतः इस पर बल देने की आवश्यकता है कि सरकारी भूमि को, जो इस प्रकार के वितरण में मिली हो, खरीदना या बेचना अपराध माना जाए।

इसी प्रकार भूदान आन्दोलन के दौरान दान में दी गई भूमि का वितरण भी संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। भूदान आन्दोलन के दौरान कुल मिला कर करीब 46 लाख एकड़ भूमि दान में दी गई थी लेकिन उसमें से लगभग आधी जमीन का ही वितरण किया जा सका है। भूदान आन्दोलन सन् साठ के दशक में चला था और उस दौरान दी गई भूमि के दान को आज 25-30 वर्ष हो गए हैं। अब उसमें से अधिकांश भूखण्डों के दस्तावेज भी उपलब्ध नहीं हैं। इस बीच दान देने वालों के कई उत्तराधिकारियों ने दान दी गई जमीन पर वापस कब्जा ले लिया है अथवा उसके हस्तांतरण को अदालतों में चुनौती देकर विवादास्पद बना दिया है। फिर भी जो भूमि उपलब्ध है, उसे समाज के पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जातियों-जनजातियों में प्राथमिकता के आधार पर बांटा जाए। आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों ने इस दिशा में अच्छा काम किया है और अन्य प्रदेशों में भी अनुसरण किया जाना वांछित है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भूमि सुधार की दिशा में काफी काम किया भी गया है, यद्यपि अभी बहुत कुछ किया जाना भी बाकी है। इसका परिणाम हमारे खेतों-खलिहानों, भण्डारण गृहों और कृषि उत्पादन में दिखाई दे रहा है। आजादी के बाद करीब

हम पहले ही अपनी आज की आवश्यकता को पूरा करने के लिए भविष्य से उधार लेकर अपना पर्यावरण नष्ट करने में लगे हैं। आंकड़े इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि हमने नगरों, गांवों की सड़कों और उद्योगों के लिए वनों की कटाई की है।

दो दशकों तक हम अनाज के लिए विदेशों के आगे हाथ पसारते रहे थे। सन् साठ के दशक में हुई हरित क्रांति ने उस स्थिति को बदल दिया और हम अनाज के मामले में अभाव से आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होते गए। इन भूमि सुधारों का ही परिणाम था कि भारत ने 1987 में इस शताब्दी के सबसे बड़े दुर्भिक्ष का सामना साहस और आत्मविश्वास से किया। आज भी यद्यपि तात्कालिक रूप से हमें कभी-कभी किसी वस्तु का आयात करना पड़ जाता है, किन्तु कुल मिला कर हमारी खाद्यान्न तथा कृषि उत्पादन की स्थिति काफी संतोषजनक हो गई है। हरित क्रांति के तत्काल बाद, 1970-71 के दौरान हमारा कुल कृषि उत्पादन लगभग 2.62 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रहा था जबकि उस समय हमारा कुल खाद्यान्न उत्पादन केवल 8 करोड़ 50 लाख टन के लगभग ही था। आज भी यद्यपि उत्पादन वृद्धि की दर में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं आया है, किन्तु अनाज उत्पादन दुगुने से भी अधिक 18 करोड़ 50 लाख टन से भी ज्यादा हो गया है।

भूमि सुधारों की प्रक्रिया एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। हर वह विधि, जिससे भूमि की उत्पादकता या कृषि उत्पादन की वृद्धि में सहायता मिले, भूमि सुधार का ही भाग है। इसलिए इसे केवल भूमि वितरण, उसके दस्तावेजों की तैयारी और राजनीतिक स्तर तक सीमित न रखते हुए कृषि क्षेत्र के विकास की रणनीति के रूप में अपनाना होगा।

पिछले 28 वर्षों से पत्रकारिता में कार्यरत। आर्थिक मामलों, ऊर्जा व ग्रामीण समस्याओं तथा सम-सामयिक विषयों पर लेखन। दैनिक राजनीतिक गतिविधियों के समाचार संकलन और भारतीय संसद के समाचारों पर रिपोर्टिंग का अनुभव। नई दिल्ली के एक प्रमुख राष्ट्रीय दैनिक के विशेष संवाददाता।

सामाजिक परिवर्तन की कुंजी

सुभाष चन्द्र 'सत्य'

भूमि सुधार सामाजिक क्रांति का बहुत बड़ा साधन बन सकते हैं। यदि भूमि सुधारों को पूरी ईमानदारी से लागू किया जाता तो देश में समानता पर आधारित समाज की रचना का सपना काफी हद तक पूरा हो जाता। ये विचार व्यक्त करते हुए लेखक ने बताया है कि भूमि सुधार कानूनों में खामियों के अलावा राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव और नौकरशाही की उदासीनता के कारण भी इन कानूनों को लागू नहीं किया जा सका। लेखक ने इस बात पर संतोष व्यक्त किया है कि इन सुधारों के प्रति राष्ट्रीय प्रतिबद्धता आज भी बरकरार है। अब 81वें संविधान संशोधन द्वारा भूमि सुधारों को संविधान की नौवीं अनुसूची में शामिल कर देने से इन्हें अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इससे इन्हें लागू करने में निश्चित रूप से आसानी होगी।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात उद्योग तथा व्यापार के क्षेत्रों में यद्यपि उल्लेखनीय प्रगति हुई है किंतु हमारी अर्थव्यवस्था अब भी मूलतः कृषि प्रधान है। देश की दो तिहाई आबादी गांवों में रहती है जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कृषि से जुड़ी हुई है और अपनी आजीविका के लिए उसी पर निर्भर है। अतः कृषि और उससे सम्बद्ध अन्य पहलुओं की उपेक्षा करके भारत में विकास तथा परिवर्तन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। यही कारण है कि पिछले पांच दशकों में कृषि में काम आने वाले उपकरणों तथा बीज, उर्वरक, सिंचाई जैसे आदानों की व्यवस्था बेहतर बनाने के सफल प्रयास किए गए हैं। फलस्वरूप कृषि क्षेत्र काफी हद तक मजबूत हुआ है तथा बढ़ती हुई जनसंख्या के बावजूद अनाज तथा अन्य कृषि जिन्सों के मामले में हमारी स्थिति कमोबेश संतोषजनक हो गई है। अनाज के उत्पादन में तो भारत पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर हो गया है और गेहूं, चावल आदि का निर्यात भी किया जा रहा है। भारत का किसान आज गर्व के साथ कह सकता है कि देश के आर्थिक विकास में उसका भरपूर योगदान है।

परंतु कृषि विकास की इस रंगीन तस्वीर का एक बदरंग पहलू भी है, जो न केवल समूचे भारतीय समाज की न्यायप्रियता, समानता तथा ईमानदारी के लिए बल्कि हमारे संविधान की भावना के लिए भी बहुत बड़ी चुनौती है। यह है – खेतों में हल चलाने वाले काश्तकार को उसका हक तथा अपेक्षित प्रतिष्ठा न मिल पाना।

कृषि सुधारों का महत्व

संस्कृत, हिन्दी तथा कई अन्य भारतीय भाषाओं में भूपति (भूमि का स्वामी) शब्द राजा या शासक के पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह परंपरा इस तथ्य की परिचायक है कि भारतीय संदर्भ में सामाजिक प्रतिष्ठा में भूमि के स्वामित्व का कितना गहरा महत्व है। यों तो रहने तथा अन्य सुविधाओं के लिए भी भूमि की आवश्यकता होती है किंतु जमीन का मुख्य उपयोग उसके उत्पादक उद्देश्यों यानी कृषि, बागवानी, वन आदि के लिए किया जाता है। भूस्वामित्व की सामंती व्यवस्था तथा जातिगत आधार पर समाज के गठन के कारण कई सदियों तक कृषि भूमि सहित सब प्रकार की भूमि के स्वामित्व का ढांचा सामाजिक विषमताओं को पुष्ट करता आया है क्योंकि यह शोषण पर आधारित है। यह अपने आप में कम विचित्र बात नहीं है कि समाज के संपन्न तथा शासक वर्गों ने तो भूमि के स्वामित्व के महत्व को पहचानते हुए इस ढांचे में कोई भी दरार न आने देने के पुख्ता इंतजाम कर रखे थे परंतु वंचित और शासित वर्गों को कभी यह ख्याल नहीं आया कि इस ढांचे को बदला भी जा सकता है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान आर्थिक व सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह कृषि क्षेत्र के बारे में भी नई चेतना के अंकुर फूटने लगे थे और आधुनिक विचारधारा और चिंतन से प्रभावित वर्गों ने जमींदारी प्रथा तथा भूस्वामित्व की सामंती व्यवस्था को चुनौती देना प्रारंभ कर दिया था। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के उपन्यास व कहानियां ग्रामीण जीवन में अंकुरित हो रही इस नई चेतना की गवाह हैं।

संविधान लागू होने पर जमीदारों और किसानों के संबंधों को नया रूप देने तथा काश्तकारों का शोषण समाप्त करने की दिशा में प्रयासों के अंतर्गत भूमि सुधार लागू करने का निश्चय किया गया। हालांकि कृषि राज्यों का विषय है किंतु भूमि सुधारों के व्यापक और दूरगामी प्रभावों को देखते हुए इसे समवर्ती सूची में शामिल किया गया। सच तो यह है कि भूमि सुधार सामाजिक क्रांति लाने का बहुत बड़ा साधन बन सकते हैं। यदि भूमि सुधारों को ईमानदारी से लागू किया जाता तो समानता पर आधारित समाज की रचना का स्वप्न अपने आप पूरा हो जाता। सामाजिक परिवर्तन में भूमि सुधारों की बुनियादी भूमिका को पहचानते हुए ही निहित स्वार्थों और इन सुधारों से अपनी सत्ता खो सकने वाले तत्वों ने मिलकर इनके क्रियान्वयन में बाधाएं खड़ी कीं। यही कारण है कि समाजवादी सामाजिक व्यवस्था का लक्ष्य सामने रख कर चलने के बावजूद भूमि सुधारों की दिशा में बहुत कम काम हुआ है। समस्या की विशालता को देखते हुए यह उपलब्धि न के बराबर है। गांवों में गरीबी दूर करने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाकर खेतिहर मजदूरों तथा छोटे किसानों को अपनी आमदनी बढ़ाने के अवसर दिए जा रहे हैं परंतु भूमि के समान बटवारे का मामला बहुत दूर तक आगे नहीं बढ़ पाया है। आज भी 71 प्रतिशत भूमि पर केवल 23.8 प्रतिशत लोगों का कब्जा है। 1991 की जनगणना के मुताबिक देश में भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की संख्या 7 करोड़ थी और उसमें हर साल औसतन 20 लाख की वृद्धि का अनुमान लगाया गया जिसके अनुसार इस समय यह संख्या 8 करोड़ के लगभग है।

उद्देश्य और परिणाम

स्वाधीनता संग्राम में देश के किसान समुदाय ने राष्ट्रवादी तत्वों का भरपूर साथ दिया था इसलिए स्वतंत्र भारत के आर्थिक विकास में उन्हें बराबर का सहयोगी बनाने के लिए जमींदारी प्रथा को समाप्त करना आवश्यक समझा गया। कृषि क्योंकि राज्यों का विषय था अतः राज्यों से इस दिशा में कानून बनाने को कहा गया। इसके लिए निम्नलिखित उपाय सुझाए गए :

- बिचौलियों को समाप्त करना तथा बटाईदारों को सीधे सरकार के संपर्क में लाना।
- काश्तकारों और बटाईदारों को खेती की सुरक्षा की व्यवस्था करना जिससे भूमि वास्तविक खेती करने वालों की हो जाए।
- जोतों की अधिकतम सीमा लागू करके फालतू जमीन भूमिहीन खेतिहर मजदूरों तथा छोटे किसानों में बांटना।
- कृषि जोतों की चकबंदी।
- जमीन के रिकार्डों को पूरा करना तथा उनके समुचित रख-रखाव का प्रबंध करना।

कृषि विकास की इस रंगीन तस्वीर का एक बदरंग पहलू भी है, जो न केवल समूचे भारतीय समाज की न्यायप्रियता, सम्मानता तथा ईमानदारी के लिए बल्कि हमारे संविधान की भावना के लिए भी बहुत बड़ी चुनौती है। यह है – खेतों में हल चलाने वाले काश्तकार को उसका हक तथा अपेक्षित प्रतिष्ठा न मिल पाना।

ये सभी उपाय सैद्धांतिक रूप से बहुत अच्छे थे किंतु कुछ राज्यों ने तो भूमि सुधार कानून बनाए ही नहीं और कुछ अन्य राज्यों में कानून बनाये गए लेकिन उन्हें लागू करने में 4-5 साल लग गए। इस अवधि में जमींदारों ने अनेक उल्टे सीधे तरीके अपना कर अपनी जमीनों को बचाने के उपाय कर लिए जिससे भूमि सुधारों का उद्देश्य अधूरा रह गया। फिर भी आजादी के बाद के 10 सालों में बिचौलियों को समाप्त करने में काफी हद तक सफलता मिली और जमींदारी प्रथा की समाप्ति के फलस्वरूप लगभग दो करोड़ बटाईदारों को फायदा हुआ।

बटाईदारी सुधार कानून नगालैंड, मेघालय और मिजोराम को छोड़कर सभी राज्यों में बन गए हैं परंतु लगान तथा मुआवजे की दरों में अस्पष्टता व असमानता तथा कुछ अन्य कारणों से ये कानून सही ढंग से लागू नहीं हो पाए हैं। आज भी यह प्रक्रिया जारी है। पश्चिम बंगाल, कर्नाटक और केरल में काश्तकारी कानून लागू करने की दिशा में सराहनीय काम हुआ है। कर्नाटक में 11 लाख तथा केरल में 24 लाख काश्तकारों को स्वामित्व के अधिकार दिलाए गए। पश्चिम बंगाल में 14 लाख बटाईदारों को सुरक्षा प्रदान की गई।

जहां तक कृषि जोतों पर अधिकतर सीमा लागू करने तथा अतिरिक्त भूमि घोषित किए जाने का सवाल है, इस बारे में 1950 तथा 1960 के दशकों में पंचवर्षीय योजनाओं में निर्धारित नियमों के अनुसार कई राज्यों ने कानून बनाए परंतु बटाईदारी सुधार कानूनों की भांति इनमें भी पर्याप्त भिन्नता थी। इन कानूनों में अनेक खामियों के कारण इस दिशा में प्रगति बहुत धीमी रही। 1972 में भूमि सीमा नियमन के बारे में राष्ट्रीय दिशा-निर्देश तैयार किए गए। पूर्वोत्तर राज्यों को, जहां भूमि के सामूहिक स्वामित्व की परंपरा प्रचलित है, छोड़कर देश भर में इन नए दिशा-निर्देशों के अनुसार कानून बनाए गए। परंतु परिणाम की दृष्टि से ये कानून असफल रहे। नवम्बर 1994 तक देश में केवल 73.42 लाख

हेक्टयर भूमि अतिरिक्त घोषित की गई और उसमें से 64.82 लाख हेक्टेयर क्षेत्र कब्जे में लिया गया तथा 51.03 लाख हेक्टेयर भूमि 49.49 लाख लोगों में वितरित की गई।

जाहिर है कि भूमि सुधारों के सबसे महत्वपूर्ण पहलू यानी अतिरिक्त भूमि अधिग्रहीत करके भूमिहीन लोगों में वितरित करने का काम शोचनीय रूप से धीमा रहा है। इस विफलता के कारणों की जांच करने पर जो बाते सामने आईं, वे इस प्रकार हैं :

- पांच से अधिक सदस्यों वाले परिवारों द्वारा अधिकतम सीमा से दुगनी जमीन रखने का प्रावधान।
- परिवार के बालिग लड़कों के लिए अधिकतम सीमा का अलग से प्रावधान।
- संयुक्त परिवार के प्रत्येक बटाईदार को अधिकतम सीमा के मामले में अलग इकाई मानना।
- धार्मिक तथा धर्मार्थ संस्थाओं को सीमा से अधिक जमीन रखने की छूट।
- बेनामी तथा फर्जी हस्तांतरण।
- रियायतों का दुरुपयोग तथा जमीन का गलत वर्गीकरण।
- सार्वजनिक निवेश से नव-सिंचित भूमि को हदबंदी से मुक्त रखना।

क्रियान्वयन में बाधाएं

ऊपर बताई गई खामियों के अलावा और भी अनेक महत्वपूर्ण कारण हैं जिनके चलते सामाजिक क्रांति लाने में सहायक हो सकने वाले भूमि सुधारों को लागू नहीं किया जा सका।

सबसे पहले तो यह मान लेना उचित होगा कि भारतीय समाज में, भूमि सुधार जैसे उपायों को स्वीकार्य और व्यावहारिक बनाना कोई सहज-सरल काम नहीं है क्योंकि यहां पूरा सामाजिक ढांचा ही शोषण और जातियों व वर्गों के रूप में जड़ीभूत श्रम विभाजन पर आधारित है। उदाहरण के लिए भूमि का स्वामित्व अधिकांशतः ऊंची जातियों के हाथों में रहा है जबकि भूमिहीन खेतिहर लोगों में बहुसंख्या अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के लोगों की है। इस प्रकार भूमि का वितरण या स्वामित्व का हस्तांतरण केवल आर्थिक परिवर्तन ही नहीं, सामाजिक परिवर्तन का भी साधन है। तभी तो भूमि के वर्तमान स्वामी अनेक कानूनों के बावजूद सुधारों को विफल करने पर आमादा हैं और वे सत्ता के विभिन्न अंगों का सहयोग लेने में सफल रहे हैं। दूसरे शब्दों में सामाजिक मानसिकता इन सुधारों के पक्ष में नहीं रही है।

इसके अलावा कानूनों में छोड़ी गई खामियों का लाभ उठाकर जमींदारों ने सीमा से अधिक भूमि को अपने कब्जे में बनाए रखा। कानूनी खामियों को दूर करने के गंभीर प्रयास नहीं किए गए, जो इस बात का संकेत है कि भूमि सुधारों के लिए ऊपरी और दिखावटी प्रयत्न ही किए। उन्हें लागू करने के लिए आवश्यक राजनीतिक संकल्प की बेहद कमी रही। इन सुधारों की विफलता का एक अन्य प्रमुख कारण है नौकरशाही की उदासीनता और यथास्थिति का समर्थन। नौकरशाही की उत्साहहीनता के कारण जो हश्र पंचायती राज व्यवस्था का हुआ वही हालत भूमि सुधारों की हुई है। भूमिहीन लोग संख्या में अधिक होने पर भी निर्धन, साधनहीन, अशिक्षित और सामाजिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण अन्याय का प्रतिकार तथा अपने अधिकारों की रक्षा का साहस नहीं जुटा पाते। जमींदार लोग हर मामले को अदालत में घसीट ले जाते हैं और अदालती प्रक्रिया बरसों तक चलने तथा मुकदमों का खर्च उठा पाने में निर्धन काश्तकारों की अक्षमता के कारण जमीन पर मौजूदा मालिकों का हक बना रहता है। सरकारी

भूमि सुधारों को ईमानदारी से लागू किया जाता तो समानता पर आधारित समाज की रचना का स्वप्न अपने आप पूरा हो जाता।

दबाव तथा हस्तक्षेप से जो जमीन गरीबों में बांटी जाती है, उसका वास्तविक कब्जा नहीं दिया जाता। ऐसे अनेक मामले हुए हैं जिनमें लाभार्थियों को पट्टे तो जारी कर दिए परंतु पट्टों में जो जमीन दिखाई गई है वह वास्तव में नहीं दी गई। ऐसा भी देखा गया है कि भूमि के दिए जाने के बावजूद रिकार्डों में आवश्यक परिवर्तन नहीं किए जाते और कुछ समय बाद लाभार्थियों को बेदखल करके जमीन पर दुबारा कब्जा कर लिया जाता है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए रिकार्डों को पूरा करना तथा उनके समुचित रख-रखाव पर ध्यान देना आवश्यक है। रिकार्डों के पूरा न होने की आड़ में भूमि सुधारों के क्रियान्वयन में बाधाएं खड़ी की जाती हैं। प्रशासन तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का सहारा लेकर भी भूस्वामी अपना उल्लू सीधा करते हैं।

यह वास्तव में राष्ट्रीय लज्जा का विषय है कि देश में इतने कल्याणकारी कानूनों, सशक्त संस्थाओं तथा संवैधानिक एवं राजनीतिक प्रतिबद्धता के होते हुए भी सामाजिक ढांचे में आमूल परिवर्तन ला सकने वाले भूमि सुधार लगातार पिछड़ रहे हैं। समय-समय पर इन्हें लागू करने की मांग जोर पकड़ती है परंतु कुछ समय बाद वे फिर वही कछुआ चाल चलने लगते हैं।

नये प्रयास

इस सबके बावजूद यह संतोष का विषय है कि भूमि सुधारों के प्रति राष्ट्रीय प्रतिबद्धता विभिन्न स्तरों पर आज भी बरकरार है। संविधान में 73वां संशोधन करके पंचायती राज संस्थाओं को काफी अधिकार दे दिए गए हैं तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों व महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित कर दिए गए हैं। इन प्रावधानों से समाज के कमजोर वर्गों की सामाजिक स्थिति निश्चय ही बेहतर बनेगी और वे भूमि सुधारों को लागू करवाने में अधिक सक्रिय हो सकेंगे।

इससे पहले बीस-सूत्री कार्यक्रम में भी भूमि सुधारों पर बल दिया गया था और उसके अंतर्गत भूमिहीन व्यक्तियों को जमीन दी गई। संसद में पेश किए गए कृषि नीति प्रस्ताव में भी भूमि सुधारों को अधिक तत्परता से क्रियान्वित करने की बात शामिल है। आठवीं योजना में भूमि सुधारों पर फिर जोर देते हुए निम्नलिखित लक्ष्य स्पष्ट किए गए :

(क) समानता पर आधारित सामाजिक ढांचा विकसित करने के लिए कृषि संबंधों की पुनर्रचना,
(ख) भूमि संबंधों में शोषण को समाप्त करना,
(ग) 'भूमि उसी की जो उसे जोते' के नारे को चरितार्थ करना,
(घ) निर्धन ग्रामीण लोगों के भूमि आधार को व्यापक बनाकर उनका आर्थिक तथा सामाजिक स्तर ऊंचा करना,
(च) निर्धन ग्रामीणों के भूमि-आधारित विकास में और तेजी लाना तथा
(छ) स्थानीय निकायों में और अधिक समानता का संचार करना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में किए गए प्रयासों के अंतर्गत अतिरिक्त भूमि प्राप्त करने वाले लाभार्थियों को जमीन के विकास तथा कृषि कार्यों के लिए आवश्यक उपकरण जुटाने के वास्ते 2500 रुपये प्रति हेक्टेयर की सहायता दी जाती है। किंतु कई राज्य इसमें अपना हिस्सा नहीं देते, जिससे यह योजना पूरी तरह सफल नहीं हो पा रही है। 1992-93 में केन्द्रीय सहायता के रूप में राज्यों को 59.72 करोड़ रुपये दिए गए थे। यह योजना अब राज्यों को सौंप दी गई है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि मुकदमेबाजी के कारण भूमिहीनों को जमीन मिलने में बाधा आती है। अब केन्द्र सरकार ने राज्यों को कड़ी हिदायत दी है कि व इन मामलों की समीक्षा करके ऐसे उपाय करें कि मुकदमे जल्दी निपट जाएं। उन्हें संविधान की धारा 323-बी के अंतर्गत न्यायाधिकरण बनाकर अथवा उच्च न्यायालयों की विशेष खंड पीठें गठित करके विचाराधीन मुकदमों को शीघ्र निपटाने का निर्देश दिया गया है। अब 81वें संविधान संशोधन के द्वारा कृषि सुधारों को संविधान की नौवीं सूची में शामिल कर लिए जाने से इन कानूनों को अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस उपाय से भूमि सुधारों को लागू करने में निश्चय ही मदद मिलेगी।

अब 81वें संविधान संशोधन के द्वारा कृषि सुधारों को संविधान की नौवीं सूची में शामिल कर लिए जाने से इन कानूनों को अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस उपाय से भूमि सुधारों को लागू करने में निश्चय ही मदद मिलेगी।

सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि काश्तकारों को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक बनाया जाए। साक्षरता के प्रसार के साथ इस स्थिति में बदलाव आ रहा है। इस क्षेत्र में स्वयंसेवी संगठन तथा समाजसेवी नवयुवक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ये संगठन काश्तकारों को अच्छी भूमि के चयन और कागजी कार्रवाई में मार्गदर्शन दे सकते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण है भूमि सुधारों के पक्ष में सामाजिक मानसिकता तथा अनुकूल वातावरण तैयार करना। सामाजिक ढांचे में परिवर्तन लाने वाले इस तरह के क्रांतिकारी कदम सामाजिक स्वीकृति एवं समर्थन के बिना केवल कानूनी उपायों से उठाना अत्यंत कठिन है। इसके लिए सरकार, जन संचार माध्यम तथा स्वयंसेवी संगठन बहुत कुछ कर सकते हैं। भूमि सुधार भारत के ग्रामीण समाज में समानता तथा सामाजिक परिवर्तन की कुंजी हैं। अतः इन्हें सर्वोच्च प्राथमिकता देना न केवल सरकार का अपितु समूचे समाज का कर्तव्य है। भूमि सुधारों को सफल बनाए बिना समग्र आर्थिक प्रगति तथा राष्ट्रीय विकास में जन सामान्य की भागीदारी संभव ही नहीं है जो कि लोकतंत्र की बुनियादी आवश्यकता है।

पिछले 25 वर्षों से जन संचार माध्यमों से सम्बद्ध। पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों पर लेख, व्यंग्य लेख, कहानियां तथा कविताएं प्रकाशित। कहानी संग्रह 'पानी की लकीर' प्रकाशित तथा लघु उपन्यास 'उजाला होने दो' प्रकाशनाधीन। आजकल दूरदर्शन में समाचार संपादक।

पंचायती राज की सफलता की कुंजी : भूमि सुधार

डा० महीपाल

जब तक गांवों में आर्थिक समानता नहीं आ जाती तब तक सत्ता में सभी वर्गों की भागीदारी के प्रयास भी सफल नहीं होंगे। पंचायती राज पर 73वें संविधान संशोधन के संदर्भ में ये विचार प्रकट करते हुए लेखक ने कहा है कि पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में जहां काफी पहले से भूमि सुधार सफलतापूर्वक लागू किए गए हैं, नयी पंचायती राज प्रणाली को लागू करने में आसानी हो रही है। लेखक की मान्यता है कि भूमि सुधार और पंचायती राज एक दूसरे के पूरक हैं।

भूमि का ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है पर सच्चाई यह है कि इस पर कुछ थोड़े से लोगों का अधिकार है। ये मुट्ठी भर लोग संपूर्ण ग्रामीण जीवन को हर तरह से प्रभावित करते हैं। प्रश्न यह है कि जब ग्रामों में इस तरह की स्थिति है तो समाज के कमजोर वर्गों को, जिसमें अनुसूचित जाति, जनजाति व महिलाएं शामिल हैं, पंचायतों के विभिन्न स्तरों पर आरक्षण दे देने से क्या वे उचित व ठोस तरह से विकेन्द्रीकृत शासन व विकास प्रक्रिया में दखल कर पाएंगे? उन्हें आरक्षण देकर विशेष अवसर प्रदान करना भी एक महत्वपूर्ण कदम है। लेकिन क्या यह जरूरी नहीं कि राजनैतिक लोकतंत्र लाने से पहले आर्थिक लोकतंत्र लाया जाए? अगर पहले नहीं तो साथ-साथ ही लाया जाए ताकि जिस कमजोर वर्ग को लोकतंत्र के द्वारा हिस्सेदारी निभाने का अवसर मिले और वे आर्थिक रूप से मजबूत होकर इसे प्रभावी ढंग से निभा सके। वास्तव में उचित सहभागिता निचले स्तर पर तब तक नहीं आ पाएगी जब तक की गांवों में आर्थिक समानता नहीं आ जाती। सामाजिक विषमता तो जन्म पर निर्भर करती है, उसे दूर करना तो संभव नहीं लेकिन इस कमी को बहुत हद तक आर्थिक समानता से कम किया जा सकता है।

इस लेख में ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विषमता का ब्यौरा देने के बाद यह बताने का प्रयास किया गया है कि भूमि सुधार जहां लागू किये गये हैं वहां पंचायती राज भी सफलता से चला है तथा गरीबी का स्तर कम हुआ है।

आर्थिक विषमता

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के 43वें दौर (1978-88) के अनुसार कुल ग्रामीण जनता का एक तिहाई भाग गरीबी की रेख से नीचे जीवन बसर कर रहा था। भारतीय रिजर्व बैंक का ऋण व विनियोग सर्वेक्षण (1961, 1971 और 1981) प्रदर्शित करत

कृषि जनगणना (1985-86) के अनुसार सीमान्त किसान (जिनके पास भूमि एक हेक्टेयर से कम है) कुल किसानों का 58 प्रतिशत हैं और वे केवल कुल जोते जोने योग्य क्षेत्र का 13 प्रतिशत ही जोतते हैं। अनुसूचित जाति के किसान कुल किसानों के 12 प्रतिशत हैं। वे अधिकतर सीमान्त व उप सीमान्त किसान हैं तथा कुल जोती जाने योग्य भूमि के केवल 7.7 प्रतिशत पर खेती करते हैं।

है कि कमजोर वर्ग के 40 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों का कुल ग्रामीण संपत्ति के मात्र पांच प्रतिशत पर अधिकार है जबकि इसके विपरीत उच्च स्तर के पांच प्रतिशत परिवार कुल ग्रामीण संपत्ति के 46 प्रतिशत के स्वामी हैं।

सन् 1969 में बैंकों का राष्ट्रीयकरण अन्य कारणों के अलाव इसलिए भी किया गया था कि गरीबों को आसान किस्तों पर संस्थागत कर्ज दिया जा सके और उन्हें गरीबी को रेखा से ऊपर उठाया जा सके। लेकिन भारतीय रिजर्व बैंक के आंकड़े और ही कहानी बताते हैं।

संस्थागत व गैर संस्थागत वित्तीय स्रोतों का ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिशत हिस्सा

(रु० हजारों में)

क्रम सं.	परिवारों की परिसंपत्तियां	संस्थागत	गैर-संस्थागत
		(% नकद-उधार का हिस्सा)	
1.	1000 तक	23.3	76.78
2.	1000-5000	26.0	73.10
3.	5000-10,000	35.2	64.80
4.	10,000-20,000	36.5	63.50
5.	20,000-50,000	47.8	52.20
6.	50,000-1,00,000	53.3	46.00
7.	1,00,000-5,00,000	71.2	28.80
8.	5,00,000-व ऊपर	83.1	16.90

स्रोत : अखिल भारतीय ऋण व विनियोग सर्वेक्षण, 1981-82

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि वे परिवार जिनकी संपत्ति 1000 रुपये से कम है, अपनी कुल ऋण आवश्यकता का लगभग 23 प्रतिशत धन ही संस्थागत स्रोतों (बैंकों आदि) से प्राप्त कर सके हैं, बाकी 77 प्रतिशत गैर-संस्थागत स्रोतों से मिला है। दूसरे शब्दों में इसी श्रेणी के परिवारों ने अपनी ऋण आवश्यकता के तीन-चौथाई से अधिक पैसा महाजनों व सूदखोरों से आसमान छूती दरों पर ब्याज पर लिया है। दूसरी तरफ हम देखते हैं कि उन परिवारों ने, जिनकी संपत्ति पांच लाख व उससे अधिक है, अपनी कुल ऋण आवश्यकता का 83 प्रतिशत धन संस्थागत स्रोतों से प्राप्त किया व मात्र 17 प्रतिशत ही गैर संस्थागत स्रोतों से लिया। उपरोक्त से स्पष्ट है कि संस्थागत साधनों का भरपूर लाभ अधिक संपत्ति वालों ने उठाया है।

उपरोक्त के अलावा कृषि जनगणना (1985-86) के अनुसार सीमान्त किसानों की संख्या (जिनके पास भूमि एक हेक्टेयर से कम है) कुल किसानों का 58 प्रतिशत है और वे केवल कुल जोते जाने योग्य क्षेत्र का 13 प्रतिशत ही जोतते है। अनुसूचित जाति के किसान कुल किसानों के 12 प्रतिशत हैं। वे अधिकतर सीमान्त व उप सीमान्त किसान हैं तथा कुल जोती जाने योग्य भूमि के केवल 7.7 प्रतिशत पर खेती करते हैं।

भूमि सुधार व पंचायती राज : सफलता के कुछ उदाहरण

पंचायतें तभी सफल हो सकती हैं यदि इनके संचालन में समाज के सभी वर्गों की भागीदारी हो। अगर चुनाव होते भी रहें लेकिन हर बार भू-स्वामी पंचायतों के सदस्यों व अध्यक्षों के रूप में आते रहें तो सही विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाएगा। अतः जरूरी है कि भूमि व संपत्ति का भी विकेन्द्रीकरण हो। पश्चिम बंगाल इसका ज्वलंत उदाहरण है जहां पर पंचायती राज सफल रहा है। उसका मुख्य कारण यही है कि वहां पर सभी वर्गों की भागीदारी के उद्देश्य से भूमि सुधारों को लागू किया। उसी का परिणाम है कि 1988 के पंचायतों के चुनाव में 75 प्रतिशत सदस्य व अध्यक्ष सीमान्त व लघु किसान थे।

पश्चिम बंगाल के पंचायत निदेशालय के एक प्रकाशन के अनुसार यद्यपि राज्य का हिस्सा पूरे देश की कृषि भूमि का चार प्रतिशत से भी कम है, लेकिन भूमि सुधारों के अंतर्गत कुल आबंटित भूमि का लगभग 20 प्रतिशत भाग पश्चिम बंगाल में आबंटित किया गया है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के अनुसार पश्चिम बंगाल में कुल भूमि का 60 प्रतिशत भाग लघु व सीमान्त किसानों के पास है जबकि राष्ट्रीय स्तर पर इन वर्गों का हिस्सा केवल 28.8 प्रतिशत ही है। इसके अलावा अनुसूचित जाति के किसान कुल कृषि योग्य भूमि के 19 प्रतिशत भाग पर खेती करते है।

भूमि सुधार का ही यह मुख्य परिणाम है कि उस राज्य में 1977 से हर पांच वर्ष के बाद चुनाव हो रहे हैं। दूसरे शब्दों में चुनाव हर पांच वर्ष के बाद इसलिए हो रहे हैं क्योंकि जनता में

पंचायतों में अपनी हिस्सेदारी के लिए जागरूकता है। उनमें भूमि सुधारों के बाद कुछ दम आया है और विकेन्द्रीकृत शासन में अपनी हिस्सेदारी के प्रति वे जागरूक हो गए हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भूमि सुधार पंचायत व्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

इसके विपरीत कर्नाटक में अभी हाल में हुए चुनावों से पहले जिला परिषद के अध्यक्ष 33 प्रतिशत लिंगायत जाति के थे जिनके पास 20 एकड़ से 100 एकड़ तक जमीन थी तथा 22 प्रतिशत आकालिगास जाति के थे जिनके पास 20 एकड़ से 40 एकड़ जमीन थी। अनुसूचित जाति के लोगों के पास केवल कुल खेती योग्य भूमि का 7 प्रतिशत थी।

इसका अर्थ यह हुआ कि पंचायती राज व्यवस्था भूस्वामियों के हाथ में थी। इसी कारण यह सफल नहीं हो पाई। श्री रामकृष्ण हेगड़े की सरकार ने 1987-92 में जो पंचायती राज व्यवस्था का माडल दिया था वह सराहनीय था। वास्तव में उस माडल में पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्थाएं बनाया गया था। लेकिन उसमें सभी की भागीदारी का अभाव था इसलिए वह माडल असफल हो गया। सभी की भागीदारी इसलिए नहीं हो सकी क्योंकि सभी आर्थिक रूप से समर्थ नहीं थे।

हरियाणा में भी पंचायती राज के सफल न होने का कारण यही रहा। वहां भी वर्चस्व भूस्वामियों का था जो नहीं चाहते थे कि कमजोर वर्ग की भी इसमें भागीदारी हो। इसी कारण 1973 में जिला परिषद को ही खत्म कर दिया गया था। यदि कहीं पर अनुसूचित जाति का व्यक्ति सरपंच बन भी जाता था तो वास्तविक सत्ता भूस्वामी के हाथ में रहती थी क्योंकि अनुसूचित जाति के उस सरपंच के पास भूमि व संपत्ति नहीं होती थी।

अभी अगस्त 1995 में लेखक ने हरियाणा के महेन्द्रगढ़, रिवाड़ी तथा फरीदाबाद जिलों में पंचायत प्रशिक्षण शिविरों में स्रोतपात्र के रूप में भाग लिया। वहां पर उसे महिला पंचों, सरपंचों, पंचायत समिति व जिला परिषद के सदस्यों तथा अध्यक्षों से मिलने का मौका मिला। पता चला कि एक-दो महिलाओं को छोड़कर किसी भी महिला के नाम जमीन या अन्य कोई सपंत्ति नहीं है। इस कारण वे स्वावलंबी नहीं हैं। इसलिए वे अपनी भूमिका भी उतनी सफलता से नहीं निभा सकतीं जितनी उनमें क्षमता है। यहां पर एक और उदाहरण देना अनुचित नहीं होगा। जैसा कि विदित है पंचायतों के विभिन्न स्तरों पर एक तिहाई भागीदारी महिलाओं के लिए सुनिश्चित कर दी गई है। यही नहीं अनुसूचित जाति व

यदि कहीं पर अनुसूचित जाति का व्यक्ति सरपंच बन भी जाता था तो वास्तविक सत्ता भूस्वामी के हाथ में रहती थी। क्योंकि अनुसूचित जाति के उस सरपंच के पास भूमि व संपत्ति नहीं होती थी।

जनजाति की आरक्षित सीटों में भी एक तिहाई भागीदारी इन वर्गों की महिलाओं की है। आठवीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार 30 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों की मुखिया महिलाएं हैं जिन पर परिवार के भरण पोषण की जिम्मेदारी है पर उनके पास न तो भूमि है और न अन्य साधनों तक उनकी पहुंच है। कुछ राज्यों, जिलों ब्लाकों व गांवों में महिलाओं की स्थिति दयनीय है। इसलिए पंचायती राज व्यवस्था को सजग व सफल बनाने के लिए भूमि सुधार अपरिहार्य हैं।

अन्य उदाहरण

केरल व पश्चिम बंगाल जहां भूमि सुधार उचित प्रकार से लागू हुए वहां 1977-78 से 1987-88 के बीच गरीबी प्रतिशत में क्रमश 65.5 व 48.1 प्रतिशत की कमी हुई। इसी अवधि में कर्नाटक में गरीबी के प्रतिशत में लगभग 33 प्रतिशत की कमी हुई जो राष्ट्रीय स्तर पर हुई कमी से भी कम है। ग्रामीण श्रमिक इंक्वायरी (1977-78) के अनुसार प्रत्येक श्रमिक परिवार पर औसत ऋण केरल में 541 रुपये और पश्चिम बंगाल में 378 रुपये था। दूसरी तरफ हरियाणा में 1494 रुपये तथा कर्नाटक में 750 रुपये था। 73वें संविधान संशोधन के अनुसार भूमि सुधार विषय 11वीं अनुसूची के अनुसार पंचायतों को दिया गया है। लेकिन हरियाणा जैसे कुछ राज्यों में इस विषय को पंचायतों को नहीं दिया है। समाज का कमजोर तबका पंचायतों में भागीदार होने पर ही भूमि सुधार को लागू करने का प्रयास करेगा। दूसरे शब्दों में भूमि सुधार व पंचायती राज एक दूसरे के पूरक हैं।

भूमि सुधार को संविधान की नौवीं सूची में शामिल करने का विधेयक 26 अगस्त, 1995 को पारित कर दिया गया। यह स्वागत योग्य कदम है। लेकिन नौवीं सूची में रख देने मात्र से ही भूमि सुधार नहीं हो पाएगा। पश्चिम बंगाल में भूमि सुधार नौवीं सूची में रखने से नहीं हुआ बल्कि राज्य स्तर के नेताओं की राजनैतिक इच्छा शक्ति व प्रशासनिक सहयोग से हुआ। बाद में लोगों में सत्ता में सहभागिता के लिए इच्छा उमड़ पड़ी। अब तक का इस क्षे

का अनुभव बताता है कि भूमि सुधारों को लागू करने की नीति में खराबी नहीं थी बल्कि इनके प्रति व्यावहारिक रूप में लागू करने के लिए उदासीनता रही। यहां एक बात कहना उचित होगा कि अतिरिक्त भूमि का वितरण भूमिहीनों, सीमान्त व उप सीमान्त किसानों, में आबंटित करते समय जोत के आर्थिक पहलू पर भी ध्यान देना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में जोत का आकार आर्थिक यूनिट होना चाहिए ताकि वह परिवार के लिए पर्याप्त आय पैदा कर सके। इसके लिए अगर सहकारी पद्धति को अपनाया जाए तो अच्छा होगा।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि पश्चिम बंगाल व अन्य जगहों पर सफल विकेन्द्रीकरण भूमि सुधार लागू करने से ही हुआ है। गरीबी स्तर में अधिक गिरावट भी वहीं आई है जहां पर प्रभावी रूप से भूमि सुधार लागू किये गये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि भूमि सुधार व मजबूत पंचायती राज व्यवस्था में घनिष्ठ संबंध है। इसलिए वर्तमान भूमि स्वामित्व व संपत्ति की संरचना को गरीबों के हित में बदलना आवश्यक है इसके लिए केन्द्र व राज्य स्तर के नेताओं की वचनबद्धता आवश्यक है।

लेखक ने विकेन्द्रीकरण योजना व पंचायतीराज पर Post Doctoral Research की है। पंचायतों के विभिन्न पहलुओं पर उनके अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। अभी हाल में 'पंचायत राज अधिनियम : एक अलोचनात्मक व्याख्यान' पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। लेखक 'विकेन्द्रीकृत शासन व विकास' के गंभीर अध्येता हैं। आजकल वे ग्रामीण क्षेत्र व रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार में कार्यरत हैं।

भूमि भारत की अर्थव्यवस्था का आधार है। भूमि की व्यवस्था ऐसे की जानी चाहिए कि जो जमीन को जोतता है उसे अपनी मेहनत का फल मिले और जमीन समाज के लिए धन कमाने का साधन हो।

—जवाहरलाल नेहरू

बापू की जीवन-यात्रा : चित्रों में

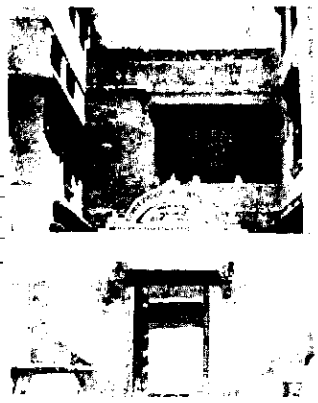

उस मकान का मुख्य द्वार जहां गांधी जी का जन्म हुआ था

वह कक्ष जहां गांधी जी का जन्म हुआ था। स्वास्तिक का चिह्न उस स्थान को इंगित करता है जहां जन्म हुआ था

सात वर्ष की उम्र में

राजकोट में प्राथमिक विद्यालय की कक्षा में पढ़ाई का दृश्य। इस विद्यालय में गांधी जी ने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की थी

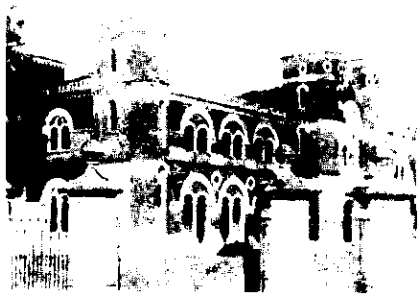

एल्फ्रेड हाई स्कूल, राजकोट जहां गांधी जी ने शिक्षा प्राप्त की

गांधी जी का कक्ष

अपने भाई लक्ष्मी दास के साथ (1886)

गांधी जी की बहन रलिया बहन

लंदन में कानून के विद्यार्थी के रूप में

जोहानसबर्ग में (1900)

गांधी जी और कस्तूरबा दक्षिण अफ्रीका में, पी. के. नायडू और उनके परिवार के साथ (1912)

सी. एफ. एंड्रयूज़ और डब्ल्यू. डब्ल्यू. पियर्सन के साथ

दक्षिण अफ्रीका में संघर्ष के आखिरी दौर में सत्याग्रहियों के साथ

गांधी जी और कस्तूरबा

गांधी जी और कस्तूरबा दक्षिण अफ्रीका में (1913)

महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में अपने कार्यालय में अपने सहयोगियों के साथ

1899 में बोयर युद्ध में इंडियन एम्बुलेंस कोर के साथ

स्ट्रेचर बीयरर कोर के ग्रुप लीडर की वर्दी में

श्री गोखले की दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के दौरान उनके सम्मान में किए गए अभिनन्दन समारोह में (1912)

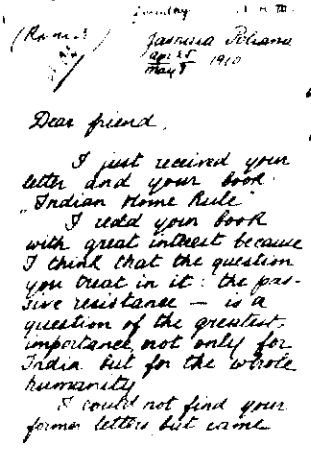

Yasnaya Polyana
May 7 1910

Dear friend,

I just received your letter and your book "Indian Home Rule".

I read your book with great interest because I think that the question you treat in it: the passive resistance — is a question of the greatest importance not only for India but for the whole humanity.

I could not find your former letters but came across your biography by J. Doke which so interested me deeply and gave me the possibility to know and understand you better.

I am at present not quite well and therefore abstain from writing to you all what I have to say about your book and all your work which I appreciate very much, but I will do it as soon as I will feel better.

Your friend and brother

लियो टालस्टाय का गांधी जी को पत्र (1910)

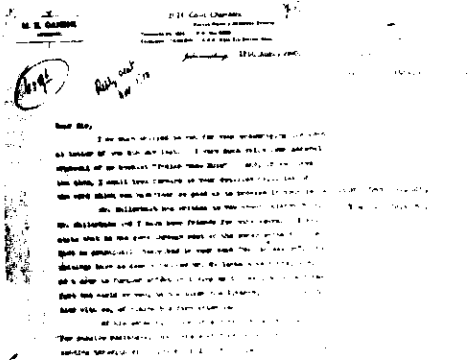

गांधी जी का लियो टालस्टाय को उत्तर (1910)

दक्षिण अफ्रीका में एक सत्याग्रही के रूप में

गांधी जी और कस्तूरबा मद्रास की अपनी पहली यात्रा के दौरान मुहम्मद याकूब हसन और जी. नटेसन के साथ (1915)

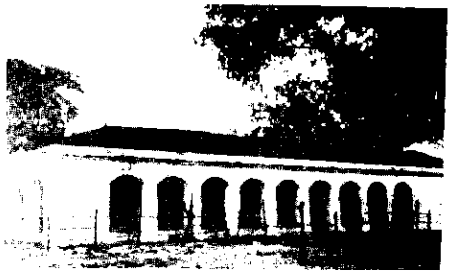

बिहार में चम्पारण में कचहरी जहां से महात्मा गांधी ने 1917 में नीलहे गोरों के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया था

कराची की अपनी पहली यात्रा के दौरान

खेड़ा सत्याग्रह के दिनों में (1918)

गांधी टोपी पहने हुए

एनी बसंट, श्रीनिवास शास्त्री और सत्यमूर्ति के साथ

देश भर में साम्प्रदायिक दंगों के प्रायश्चित के रूप में दिल्ली में 21 दिन का उपवास रखे हुए। साथ में इंदिरा गांधी जो उस समय छह वर्ष की थीं (1924)

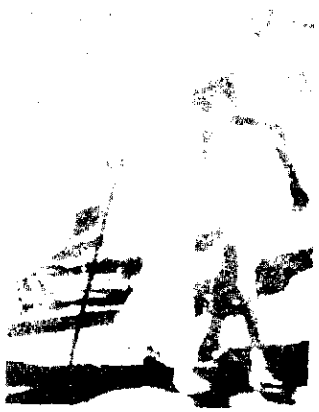

मद्रास समुद्र तट पर एक सभा को संबोधित करते हुए। श्री एस. श्रीनिवास अय्यंगार उनके साथ बैठे हैं (1925)

अब्बास तयाब जी के साथ

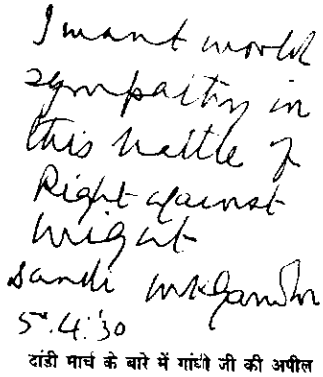

दांडी मार्च के बारे में गांधी जी की अपील

एक जन सभा में सरदार पटेल के साथ (1929)

दार्जिलिंग में; गांधी जी के पीछे सी. आर. दास

दांडी मार्च, 1930

सरोजिनी नायडू के साथ दांडी में

गांधी जी साइकिल पर

साबरमती में गहन चिंतन की मुद्रा में (1931)

कराची कांग्रेस में (1931)

इंग्लैंड रवाना होने से पहले शिमला में (अगस्त 1931)

मार्गरेट में अपने पुत्र देवदास और सी. एफ. एंड्रयूज के साथ फ्रांसीसी संवाददाताओं से बातचीत करते हुए

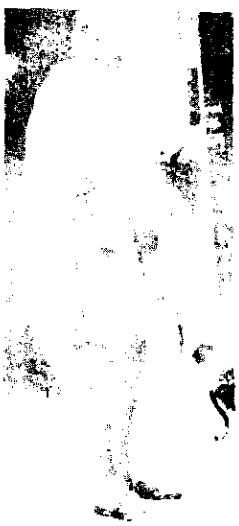

10, डाउनिंग स्ट्रीट में ब्रिटिश प्रधानमंत्री श्री रेमजे मेक्डोनल्ड के साथ एक बैठक के बाद।

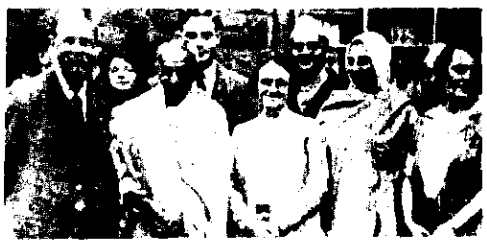

मार्गरेट में सी. एफ. एंड्रयूज, गांधी जी, कुमारी म्यूरियल लेस्टर, महादेव देसाई, मीरा बेन, प्यारे लाल और एक अंग्रेज मित्र

गांधी जी लंदन में फ्रेंड्स सोसाइटी की बैठक को सम्बोधित करते हुए।

1931 में लंदन में दूसरे गोल मेज़ सम्मेलन में

चार्ली चेपलिन से मिलने के लिए एक भारतीय मित्र के निवास पर पहुंचने पर लंदन के लोग गांधी जी को घेरे हुए।

चार्ली चेपलिन के साथ में (लंदन, 1931)

रोमां रोलां के साथ (विलनाएफ, स्विटज़रलैंड में)

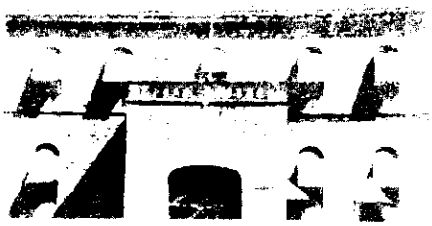

केन्द्रीय कारागार, यरवदा यहां गांधी जी को कई बार रखा गया

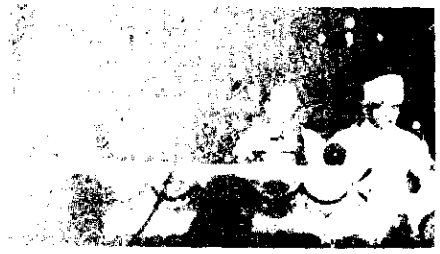

डा० राजेन्द्र प्रसाद और पंडित मदन मोहन मालवीय के साथ बम्बई कांग्रेस में (1934)

फैज़पुर कांग्रेस में (1936)

सेवाग्राम

कस्तूरबा, गांधी जी के पैर धोते हुए

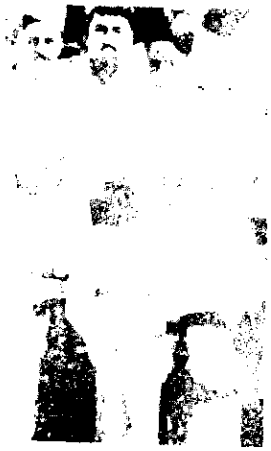

सी० राजगोपालाचारी के साथ मद्रास में

गांधी जी सुभाष चन्द्र बोस के साथ (हरीपुरा कांग्रेस, 1938)

तक्षिला में खान अब्दुल गफ्फार खां के साथ

कलकत्ता के पास डमडम जेल में, कुछ कैदियों के साथ जिन्हें गांधी जी मिलने गए थे (1939)

नई दिल्ली मे सत्यवती देवी और भूलाभाई देसाई के साथ

गांधी जी और मोहम्मद अली जिन्नाह वायसराय के साथ बातचीत के बाद (नवम्बर 1939)

गांधी जी, जवाहरलाल नेहरू, महादेव देसाई और डा० पट्टाभि सीतारामय्या के साथ कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में जाते हुए (वर्धा, 1940)

वायसराय से मिलने जाते हुए, (शिमला, सितम्बर 1940)

जमुनालाल बजाज के साथ हरिजनों के कल्याण के लिए चंदा इकट्ठा करते हुए (दिल्ली, 1940)

नंदलाल बोस के साथ (कला भवन, शांति निकेतन)

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ (शांति निकेतन, 1940)

जवाहरलाल नेहरू के साथ विचार विमर्श करते हुए

डा० राजेन्द्र प्रसाद के साथ

पंडित मदन मोहन मालवीय के साथ एक रिपोर्ट का अध्ययन करते हुए

आचार्य विनोबा भावे के साथ (सेवाग्राम, 1941)

सरदार पटेल के साथ प्रसन्न मुद्रा में

मार्शल चियांग काई शेक के साथ (कलकत्ता, फरवरी 1942)

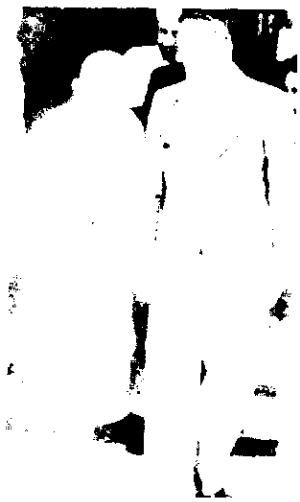

सर स्टेफर्ड क्रिप्स के साथ (मार्च 1942)

8 अगस्त 1942 को कांग्रेस अधिवेशन जहां 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया गया।

अपने एक घनिष्ट सहयोगी ठक्कर बापा के साथ (जुहू, 1944)

सूत कातते हुए (बंबई, 1945)

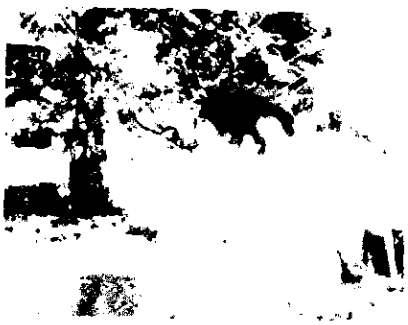

कस्तूरबा और महादेव देसाई की समाधियों के पास

बंबई में गांधी जिन्नाह वार्ता के दौरान (सितम्बर 1944)

प्रार्थना सभा में जाते हुए। साथ में खान अब्दुल गफ्फार खां, जवाहरलाल नेहरू और आचार्य कृपलानी (दिल्ली, 1945)

शरत चन्द्र बोस के साथ, नई दिल्ली में भंगी कालोनी में

शिमला सम्मेलन में भाग लेने के लिए शिमला पहुंचने पर

शिमला में सम्मेलन। गांधी जी वायसराय लार्ड वेवल के साथ बैठक के बाद संवाददाताओं के बीच

शिमला में वायसराय से बैठक के बाद वायसराय लाज से बाहर आते हुए (23 जून, 1945)

भंगी कालोनी में आजाद हिन्द फौज के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए (1945)

गांधी जी, सरदार पटेल और मणिबेन पटेल के साथ शिमला में

शिमला में प्रार्थना सभा में जाते हुए (जुलाई 1945)

गांधी जी राजकुमारी अमृत कौर के साथ शिमला में

खामोशी के लिए आग्रह करते हुए

सुभाष चन्द्र बोस के कक्ष में (1946)

मद्रास में अपने तीसरी श्रेणी के रेल डिब्बे से लोगों को संबोधित करते हुए (1946)

बंगाल में रेलवे स्टेशन पर दलितों के लिए चंदा इकट्ठा करते हुए (1946)

एक बच्चे के साथ खेलते हुए

जवाहरलाल नेहरू के साथ

आचार्य कृपलानी के साथ

पंडित मदन मोहन मालवीय के साथ। रुग्ण नेता के साथ गांधी जी की अंतिम भेंट (1946)

मौलाना अबुल कलाम आजाद के साथ

महात्मा गांधी का पार्थिव शरीर बिड़ला हाऊस नई दिल्ली में

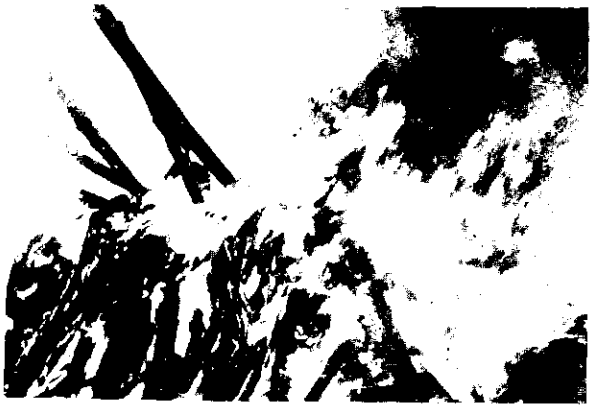

31 जनवरी 1948 को शाम को चार बजकर 55 मिनट पर चिता को अग्नि।

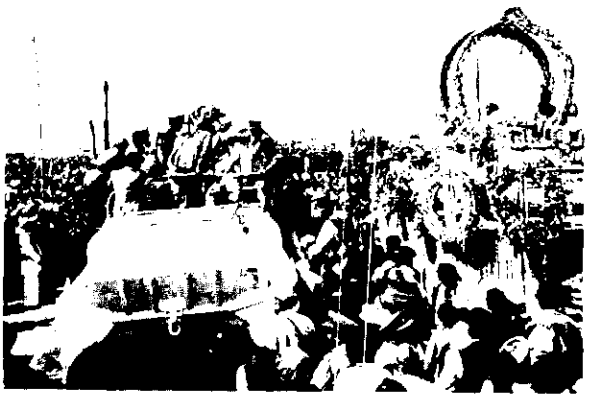

गांधी जी की अस्थियां इलाहाबाद में गंगा में विसर्जन के लिए ले जाते हुए

महात्मा गांधी के रोजमर्रा के इस्तेमाल की वस्तुएं

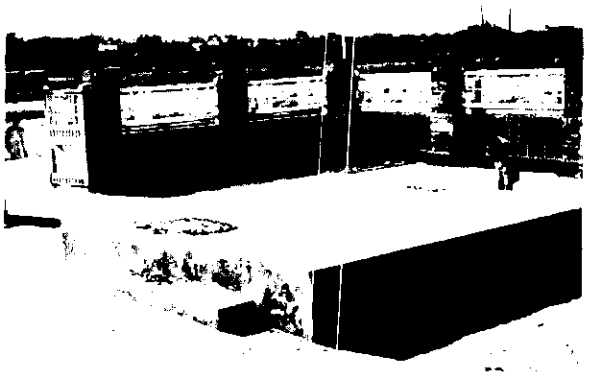

राजघाट

सेवाग्राम में बापू कुटीर

किसानों के आत्म-सम्मान के लिए भूमि सुधार जरूरी

रामजी प्रसाद सिंह

लेखक का मत है कि अब सरकार को भूमि सुधार कार्यक्रम में भूमि वितरण पर ज्यादा जोर देने के बजाय भूमि की उत्पादकता बढ़ाने पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। देश में दहलन और तिलहन की पैदावार बढ़ाने की आवश्यकता है। रेगिस्तानी क्षेत्रों और अन्य इलाकों में जहां सिंचाई की सुविधाएं नहीं हैं, शुष्क खेती के लिए किसानों को उपयुक्त प्रणाली अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। लेखक का यह भी सुझाव है कि किसानों को उन्नत बीजों, उर्वरकों और कीटनाशी दवाओं के नाम उनकी अपनी भाषा में ही बताए जाएं ताकि वे उन्हें आसानी से अपना सकें।

"कह गिरधर कविराय, सुनो, हे मन के साथी!
सब हथियार छाड़ि, हाथ में राखो लाठी।

शुरू में लगता था कि कवि गिरधर का नाम जोड़ कर किसी चरवाहे ने अपने मन का विचार व्यक्त किया है। किंतु जब यही अंश प्रामाणिक ग्रंथों में मिला तो हमें उसकी गहराई में जाना पड़ा। इसी बीच अंग्रेजी के कवि गोल्ड स्मिथ का एक उद्धरण सुना :

"Princes or lords may flourish or may fade;
But a bold peasantry one's country's pride
When once destroyed can never be supplied."

इसके बाद समझ में आया की कवि ने हाथ में लाठी रखने की सलाह किसे दी थी। उनका यह स्पष्ट अभिप्राय था कि किसानों को सदैव जागरूक रहना चाहिए। उनकी गफलत का दुष्परिणाम, सम्पूर्ण देश को भुगतान पड़ता है। हमें याद है जब देश में खाद्यान्न के अभाव का दौर था तो अमरीका ने गेहूं देने के लिए भारत को किस तरह झुकाने का प्रयास किया था। गत वर्ष भी गन्ने की फसल खराब होने पर भी विश्व के साहूकारों ने भारत को मनमाने दर पर चीनी बेची, जिसके कारण देश को अरबों रुपये का घाटा हुआ।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहां की दो तिहाई आबादी कृषि पर निर्भर हो और जहां का औद्योगिक विकास का आधार भी कृषि हो, वहां भूमि सुधार और कृषकों के विकास की आवश्यकता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। भूमि सुधार की योजनाओं को अमल में लाने से देश की आधी आबादी के जीवन-स्तर में सुधार हुआ है। गांवों में बदलाव आया है। बेरोजगारी घटी है।

जमीन पर किसानों को मालिकाना हक देने और जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से किसानों ने जी-जान लगाकर देश को खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बनाया। इसके कारण आर्थिक विकास की गति बढ़ी और गांवों में खुशहाली आयी। पहले किसानों की कमर में मारकीन के गमछे के सिवा और कुछ नहीं मिलता था। किंतु, आज उनके बदन पर पूरा कपड़ा, सिर पर छत और पेट भरने के लिए, मोटा अनाज ही सही, जरूर मिल रहा है, यद्यपि भूमि-सुधार की योजनाएं भली प्रकार लागू नहीं हो सकीं।

कृषक आन्दोलन

ग्रामीण क्षेत्रों में खुशहाली और कृषकों की मुक्ति का श्रेय उन असंख्य गुमनाम कृषक नेताओं को जाता है जिन्होंने गुजरात, बिहार, संयुक्त-प्रांत, जम्मू-कश्मीर, मद्रास और बंगाल में कृषकों को संगठित कर उन्हें जमीन का स्वामित्व समर्पित किए जाने का

आंदोलन स्वतंत्रता आंदोलन आरंभ होने से पहले शुरू कर दिया था। इन्हीं आंदोलनों ने कालक्रम में गुजरात में लौह-पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल को पैदा किया। पहले वे बारदोलेई के संत कहलाते थे। गांधीजी भी राष्ट्रीय नेता के रूप में तभी उभरे जब वे चम्पारण (बिहार) में नील की खेती करने वाले अंग्रेज जमींदारों के विरुद्ध जारी आंदोलन में शामिल हुए। पंडित जवाहरलाल नेहरू को भी जन-नेता के रूप में मान्यता तभी मिली जब वे मध्य और पूर्वी उत्तर-प्रदेश में बाबा राघव दास के नेतृत्व में जारी किसान आंदोलन में सक्रिय हुए। किसान आंदोलन के नेता स्वामी सहजानंद सरस्वती और राहुल सांस्कृत्यायन जैसे मनीषियों ने

पहले किसानों की कमर में मारकीन के गमछे के सिवा और कुछ नहीं मिलता था। किन्तु आज उनके बदन पर पूरा कपड़ा, सिर पर छत और पेट भरने के लिए, मोटा अनाज ही सही, जरूर मिल रहा है।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस और कई अन्य राष्ट्रीय नेताओं को किसान आंदोलन की ओर खींचा। सच है कि देश में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का आन्दोलन किसान आन्दोलन की कोख से पैदा हुआ। इसी आंदोलन ने देश में असंख्य वामपंथी दलों और गुटों को पैदा किया। इनके नेताओं में आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, श्रीपाद अमृत डांगे के नाम बड़े आदर के साथ लिए जाते हैं। आचार्य विनोबा भावे भी किसान मुक्ति आंदोलन (भूदान यज्ञ) में शामिल होकर परमपावन संत और भारत-रत्न बने।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने किसान-सभाओं के कार्यक्रमों को अपना लिया और 1937 में आठ राज्यों में सत्तारूढ़ होने के बाद जागीरदारी और जमींदारी प्रथा को समाप्त कर किसानों को अपनी जमीन का मालिक बनाने के लिए कानूनी कार्रवाई शुरू कर दी। किंतु अंग्रेजी शासकों द्वारा रोड़ा अटकाये जाने के कारण 1939 में उन्हें इस्तीफा देना पड़ा। सन् 1946 में पुनः शासनारूढ़ होने के बाद उन सरकारों ने जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के कार्यक्रम को प्राथमिकता दी क्योंकि इस प्रथा के तहत किसानों को अपनी उपज का 45 प्रतिशत भाग जमींदार को देना पड़ता था। साथ ही तरह-तरह का बेगार करना होता था। जमींदार न तो बीज देता था, न खाद और न ही सिंचाई का खर्च देता था। नदी, नाले और तालाबों पर भी जमींदार का कब्जा होता था। सार्वजनिक जमीन पर उगे पेड़ों पर भी उसी का अधिकार था। इस क्रूर व्यवस्था को हटाने के लिए कांग्रेस की राज्य सरकारों ने 15 अगस्त 1947 (स्वतंत्रता दिवस) की भी प्रतीक्षा नहीं की थी। उससे पहले जमींदारी प्रथा की समाप्ति की घोषणा कर दी। सबसे अग्रगामी कदम था, बिहार की डाक्टर श्रीकृष्ण सिंह की सरकार का। किंतु पटना उच्च न्यायालय ने बिहार जमींदारी अधिग्रहण अधिनियम को भारत अधिनियम, 1935 के विरुद्ध करार दिया, क्योंकि उसमें जमींदारों समेत सभी नागरिकों को सम्पत्ति और रोजगार का अधिकार सुलभ था। बिहार सरकार ने एक नया कानून बनाया, परंतु वह भी संविधान के विरुद्ध करार दिया गया। इसके कारण सारे देश में न्यायालयों के विरुद्ध रोष फैल गया। यह धारणा बन गयी कि न्यायालयों का यह रुख बरकरार रहा तो 26 जनवरी 1950 को भारत का नया संविधान लागू होने के बाद भी न तो जमींदारी/जागीरदारी खत्म की जा सकेगी, न ही पूंजीपतियों की संपत्ति जनहित में ली जा सकेगी। स्वभावतः कल्याणकारी राज एक स्वप्न रह जायेगा।

इसलिए प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संविधान के लागू होने से पहले यह घोषणा कर दी कि राज्यों में जमींदारी/जागीरदारी प्रथा के उन्मूलन के जितने भी कानून बनाये गये हैं, उन्हें न्यायालयों के विचार-क्षेत्र से परे रखने के लिए संविधान में संशोधन किया जाएगा। नतीजा 1950 में ही, संविधान में प्रथम संशोधन किया गया तथा बिहार, बंबई, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और हैदराबाद के भूमि-सुधार संबंधी तेरह अधिनियमों को न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र से परे रख दिया गया। इसके लिए संविधान की नवम अनुसूची बनायी गई, जिसमें दर्ज किये गये कानूनों की संवैधानिकता पर न्यायालय विचार नहीं कर सकता।

प्रथम संविधान-संशोधन अधिनियम में संसद को नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर समुचित अंकुश लगाने का भी अधिकार दिया गया था, जिसे उच्चतम न्यायालय ने संविधान-सम्मत करार दिया। फलतः किसानों की मुक्ति की शांतिपूर्ण क्रांति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

पंडित नेहरू के ही कार्यकाल में भूमि-सुधार कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से अन्य राज्यों द्वारा बनाये गये 51 अन्य कानूनों को न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र से परे रखने के लिए संविधान में तीन बार संशोधन किया गया।

इसके बाद संपूर्ण देश में किसानों को जमीन पर मालिकाना हक देने वाले कानूनों पर अमल शुरू हो गया। इसी सिलसिले में अनेक राज्यों ने अधिकतम जोत की सीमा तय की और सीमा से अधिक जमीन रखने वाले बड़े किसानों की जमीन छीन कर, भूमिहीन खेत-मजदूरों को आबंटित की गयी। साथ ही ठेके पर जमीन लेकर जोतने वाले खेत मजदूरों और बटाईदारों को बेदखली से बचाने के लिए कानून बनाए गए। छोटे-छोटे भूखंडों की चकबंदी के लिए भी कानून बनाए गए तथा उन्हें संविधान का संरक्षण दिया गया।

फिर भी इन कानूनों से अपेक्षित लाभ नहीं हुआ क्योंकि जोत की सीमा लगाने वाले कानूनों के लागू होने से पहले बड़े किसानों ने निर्धारित सीमा से अधिक जमीनें बेच दीं या दूसरे के नाम फर्जी

प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संविधान के लागू होने के पहले यह घोषणा कर दी कि राज्यों में जमींदारी/जागीरदारी प्रथा के उन्मूलन के जितने भी कानून बनाये गये हैं, उन्हें न्यायालयों के विचार-क्षेत्र से परे रखने के लिए संविधान में संशोधन किया जाएगा।

कर दीं। बटाईदारों को भी बेदखल कर दिया। राज्यों द्वारा चकबंदी का काम भी सुचारु ढंग से नहीं किया गया। नतीजा गांवों में भूमि-सुधार के लक्ष्य पूरे नहीं हो सके। महाराष्ट्र में 66 प्रतिशत बटाईदार बेदखल हो गये। आंध्र प्रदेश में भी बटाईदारों की संख्या 60 प्रतिशत से घटकर चालीस प्रतिशत हो गयी।

81वां संविधान संशोधन विधेयक

संसद के विगत अधिवेशन में नरसिम्हा राव सरकार ने भी भूमि सुधार संबंधी विभिन्न राज्यों के 27 अन्य कानूनों को भी संविधान का संरक्षण दिलाने के लिए 81वां संविधान संशोधन विधेयक पारित कराया।

विधेयक पेश करते हुए ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्री डाक्टर जगन्नाथ मिश्र ने कहा कि केन्द्र सरकार राज्यों को भूमि सुधार संबंधी कानूनों पर अमल करने में हर संभव सहायता देगी।

भूमि-सीमा कानून के अमल पर विशेष जोर देते हुए डा० मिश्र ने कहा कि भारत सरकार यह नहीं चाहती कि भूमि-सीमा कानून के साथ बार-बार छेड़छाड़ की जाए। राज्यों को न तो जोत की सीमा घटानी चाहिए, न ही किसी बहाने बढ़ानी चाहिए। ऐसा करने से अनिश्चितता की स्थिति बनी रहेगी।

डा० मिश्र ने कहा कि राज्यों से प्राप्त सूचना के अनुसार भूमि सीमा कानून के तहत 65,41,665 एकड़ जमीन अधिशेष घोषित की गयी थी, जिनमें 10,64,000 एकड़ जमीन पर विवाद हो गया है, इसलिए बांटी नहीं जा सकी है।

उन्होंने कहा कि राज्य सरकारों को सलाह दी गयी है कि संविधान की धारा 323बी के तहत विशेष न्यायाधिकरण बनाकर उन विवादों को निपटाया जाए ताकि अधिशेष घोषित जमीनें भूमिहीनों के बीच शीघ्र बांटी जा सकें।

ग्रामीण विकास एवं रोजगार मंत्री द्वारा पेश उक्त विधेयक में बिहार के नौ, पश्चिम बंगाल के सात, तमिलनाडु के चार, राजस्थान के तीन, केरल के दो और कर्नाटक तथा उड़ीसा के एक-एक कानूनों को नौंवी अनुसूची में शामिल करने का प्रावधान था। फलतः इस विधेयक को संसद के सभी दलों का समर्थन प्राप्त हुआ।

आशा की जानी चाहिए कि इस विधेयक के अधिनियमित होने के बाद उपर्युक्त राज्यों में भूमि सुधार के मार्ग में आने वाली बाधायें कुछ हद तक दूर होंगी। किंतु भूमिहीनों में वितरण के लिए अब अधिक भूमि प्राप्त होने की आशा नहीं की जानी चाहिए क्योंकि बड़े-बड़े भूस्वामियों को सीमा से अधिक जमीन इधर-उधर करने के लिए काफी समय मिल चुका है। संभव है गांवों में 73वें संविधान संशोधन विधेयक के तहत ग्राम-पंचायतों के पुनर्संगठन से कुछ जमीन प्राप्त होगी, किंतु भूमिहीन परिवारों की संख्या के अनुपात में जमीन सुलभ नहीं हो पायेगी। यदि थोड़ी बहुत जमीन उन्हें मिली भी तो वे उसमें ज्यादा रुचि नहीं लेंगे, क्योंकि खेत मजदूरों को शहरों में काम करने से अधिक लाभ मिलने लगे हैं। इसीलिए गांवों से पलायन करने वालों की संख्या बढ़ रही है। थोड़ी सी जमीन को वे अपने पांवों की बेड़ी समझते हैं।

गांवों में पट्टे या बटाई पर जमीन जोतने वालों को भी अब पर्याप्त जमीन नहीं मिलती, क्योंकि किसानों को अपनी जमीन से बेदखल होने का भय हो गया है।

अतः सरकार को अपनी भूमि-सुधार नीति को उत्पादन मूलक बनाना चाहिए। अब भूमि-वितरण की बात पर जोर देना पानी

पीटने के बराबर होगा। जरूरत इस बात की है कि भूमि की उत्पादकता बढ़ाने पर बल दिया जाए। साथ ही किसानों और खेत-मजदूरों की दक्षता बढ़ाई जाए। इसके बिना देश की खाद्य समस्या का स्थायी समाधान संभव नहीं है। खासकर तब, जबकि देश की आबादी बढ़ रही है और खेती की जमीन घट रही है। भवन, सड़क, उद्योग और व्यापार के लिए जमीन की खपत बढ़ गयी है। शहरों का भी विस्तार हो रहा है।

खेती में पूंजी निवेश की दर में कमी को दूर करने के लिए जरूरी है कि कृषि-वस्तुओं के उत्पादन का स्तर ऊंचा किया जाए ताकि देश की आवश्यकता पूरी हो, साथ-ही-साथ निर्यात के लिए भी पर्याप्त भंडार उपलब्ध रहे। सिंचाई और बिजली के क्षेत्र में निजीकरण के प्रयोग से कृषि क्षेत्र में निवेश बढ़ाया जा सकता है।

देश में हरित-क्रांति निश्चित रूप से सफल हुई है तथापि पूर्वांचल के अधिकांश राज्यों तक उसका प्रसार नहीं हुआ। इसी प्रकार गेहूं के उत्पादन की तुलना में चावल, दलहन या तिलहन के उत्पादन की दर में कोई खास वृद्धि नहीं हुई। इस तथ्य को आठवीं योजना के दस्तावेज में स्वीकार किया गया किंतु हाल के वर्षों में पूर्वांचल की उपलब्धियों के बारे में कोई उल्लेखनीय सूचना नहीं मिली। पर्वतीय राज्यों में न वर्षा की कमी है, न ही जमीन की उर्वरा-शक्ति की। ऐसी अवस्था में वहां धान की उपज बढ़ाने का प्रयास सफल होगा।

वनस्पति और खाद्य तेलों के मूल्य में लगातार वृद्धि से प्रतीत होता है कि तिलहन का उत्पादन और बढ़ाने की जरूरत है। सन् 1980 में घोषित एकीकृत तिलहन नीति के अमल में लाने से देश के विभिन्न भागों में अलसी, सोयाबीन, सूरजमुखी और नारियल की खेती का विस्तार हुआ है। जरूरत इस बात की है कि छोटे किसानों को धान और गेहूं से अधिक तिलहन उपजाने की प्रेरणा दी जाए, क्योंकि इसकी खेती में सिंचाई पर खर्च कम होता है, आमदनी ज्यादा होती है। सीमांत किसानों को फल और सब्जी उगाने से लाभ अधिक होगा, इसका प्रचार होना चाहिए। साथ ही फल-फूल और सब्जियों के व्यापार से बिचौलियों को हटाना चाहिए।

आकाशवाणी और दूरदर्शन के माध्यम से कृषि की नई तकनीक, उन्नत बीज, उपयुक्त उर्वरक, बेहतर जल-प्रबंध और कीटनाशक औषधियों के उपयोग के बारे में किसानों को शिक्षा दी जाती है। परंतु छोटे किसानों तक उसकी पहुंच सीमित है, क्योंकि सार्वजनिक दूरदर्शन केन्द्रों में रख-रखाव का प्रबंध ठीक नहीं है अथवा प्रसारण के समय किसान पशुओं की सेवा में लगे रहते हैं। इसलिए प्रखंड विकास कार्यालयों के आसपास अथवा उच्च विद्यालयों/महाविद्यालयों के परिसर में कृषि और बागवानी की स्थायी प्रदर्शनी बनायी जानी चाहिए।

भूमि सीमा कानून के अमल पर विशेष जोर देते हुए डा० जगन्नाथ मिश्र ने कहा कि भारत सरकार यह नहीं चाहती कि भूमि सीमा कानून के साथ बार-बार छेड़छाड़ की जाय। राज्यों को न तो जोत की सीमा घटानी चाहिए, न ही किसी बहाने बढ़ानी चाहिए। ऐसा करने से अनिश्चितता की स्थिति बनी रहेगी।

कृषि उत्पादन में लगातार वृद्धि से यह सिद्ध हो गया है कि देश में अधिकांश कृषक-मजदूर निरक्षर भले ही हों, किंतु अपने व्यवसाय में निपुण हैं। उन्हें थोड़े सहारे और मार्गदर्शन की जरूरत है।

बिहार के एक सर्वाधिक पिछड़े जिला सीवान के गोरयाकोठी गांव के एक अवकाश प्राप्त अभियंता श्री विश्वनाथ सिंह ने 25 बीघे के एक भूखंड में, जिससे कोई फसल नहीं होती थी, कई तालाब खुदवा दिए और उनके चारों ओर आम, लीची, कसैली, नारियल, केला आदि फलों के सैकड़ों वृक्षों के अलावा सैकड़ों कोठी बांस लगवा दिया है। वे तालाबों में मछली-पालन कर रहे हैं। इस कारण वह बंजर जमीन जिसमें कास-कुश के सिवाय कुछ नहीं होता था, अब वह कम से कम दो लाख रुपये की सालाना आय का जरिया हो गया है। वे उसे अपने जीवन की अद्‌भुत उपलब्धि मानते हैं। उसमें दिन-रात लगे रहते हैं, जबकि उन्हें मालूम है कि उनके बच्चे इसके सुख के भागीदार नहीं होंगे, क्योंकि सभी के सभी विदेशों में जा बसे हैं। फिर भी, देश के जिस कोने में इस तरह की खेती हो रही हो अथवा ऐसे कर्मठ कृषि-प्रेमी कार्यशील हों, उन्हें अपने फार्म में आसपास के किसानों को प्रशिक्षण देने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

यह दुर्भाग्य की बात है कि प्रत्येक गांव में पदस्थापित ग्राम-सेवकों से अपेक्षित लाभ नहीं मिल रहा है, क्योंकि वे सरकार के अंग हो गए हैं। जन-सेवक के रूप में उनकी भूमिका नगण्य

हो गयी। इस खाई को पाटने के लिए स्वयंसेवी संगठनों और खेतों में स्वयं काम करने वाले कर्मठ किसानों को, गांवों में उन्नत खेती का प्रचार करने की जिम्मेदारी लेनी चाहिए।

प्रथम और दूसरी पंचवर्षीय योजना काल में, जितने प्रखंड कार्यालय स्थापित किये गये थे, उसके पास उन्नत कृषि का एक फार्म लगाया था, किंतु राज्य सरकारों की उपेक्षा के कारण अधिकांश फार्म परती हो गये हैं। ट्रेक्टर नीलाम हो चुके हैं। छप्पर उड़ गये हैं। वीज-उत्पादन का काम बंद है। बिहार में लालू यादव सरकार ने उन फार्मों में चरवाहा विद्यालय स्थापित कर दिये हैं। उनका नाम आकर्षक भले न हो, परंतु यह योजना अच्छी है। उसे प्राथमिक कृषि विद्यालय या बापू का बुनियादी स्कूल कहा जाता है। किंतु उस पर अमल किस प्रकार होता है – यह भविष्य बतायेगा।

फिलहाल गांवों में 30 करोड़ 48 लाख हेक्टेयर जमीन है। इनमें 6 करोड़ 71 लाख हेक्टेयर में जंगल है। इन्हें सुरक्षित रखना चाहिए। किंतु साढ़े चार करोड़ हेक्टेयर परती या बंजर भूमि का फल-फूल, लकड़ी, जलावन, खाद, जड़ी-बूटी, तिलहन और मसालों की खेती के लिए उपयोग किया जाना चाहिए। इस दिशा में केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित वंजर भूमि बोर्ड उपयोगी काम कर रहा है। स्वयंसेवी संगठनों और व्यक्तियों को वंजर जमीन में खेती या वन लगाने के लिए आर्थिक सहायता दी जा रही है।

ताजी सूचना के अनुसार देश में 1417 लाख हेक्टेयर जमीन में खेती होती है, इनमें आधी जमीन की चकवंदी नहीं हुई है। राजस्थान में 1965 से चकबंदी स्थगित है। असम और पश्चिम वंगाल में काम भी शुरू नहीं हुआ है। जम्मू-कश्मीर और आंध्र में भी काम स्थगित है। अरुणाचल प्रदेश, गोवा, केरल, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नगालैंड, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा और कई केन्द्रशासित प्रदेशों में चकबंदी शुरू होने का कोई संकेत नहीं है। अतएव, केन्द्र सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए। इस वर्ष केन्द्र ने चकबंदी के लिए राज्यों को पर्याप्त अनुदान देने का निश्चय किया है।

वटाईदारी कानून के तहत नवम्बर 1994 तक 1,12,13,000 वटाईदारों को 18 राज्यों में, उनके द्वारा जोती जाने वाली जमीनों का हिस्सेदार करार दिया है – यह एक अच्छी उपलब्धि है।

इसी प्रकार आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, त्रिपुरा और राजस्थान में अपनी जमीन से बेदखल करीब दो लाख आदिवासियों को उनकी जमीन वापस दिलायी गयी है। केंद्र सरकार ने भूखंडों का रिकार्ड तैयार कराने के लिए कम्प्यूटर का सहारा लेने का निश्चय किया था। इसके लिए गत वर्ष सवा 24 करोड़ रुपये राज्य सरकारों को आवंटित किये गये हैं। गरीब किसानों के लिए यह रिकार्ड वरदान साबित होगा। आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात और गोवा को छोड़कर सभी राज्यों के एक-एक जिले में इस पर काम शुरू हो गया है।

फिर भी देश में आबादी की वृद्धि के अनुरूप कृषि-उत्पादन की दर बढ़ाने के लिए जरूरी यह है कि भारत सरकार की आर्थिक उदारीकरण की नीति का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों और किसानों को भी उपलब्ध किया जाए। ऐसा न हो कि पूंजीपतियों को विस्तार की आजादी हो और किसानों के अपने भूखंडों के विस्तार पर अंकुश लग जाए।

ग्रामोद्योग और खाद्य प्रसंस्करण उद्योग पर विदेशी पूंजीपतियों या देश के एकाधिकारी घरानों का वर्चस्व न हो इस बात पर भी ध्यान देने की जरूरत है। इन उद्योगों पर किसानों की सहकारी

बटाईदारी कानून के तहत नवम्बर 1994 तक 1,12,13,000 हजार बटाईदारों को 18 राज्यों में उनके द्वारा जोती जाने वाली जमीनों का हिस्सेदार करार दिया गया है–यह एक अच्छी उपलब्धि है।

समितियों को अधिकार देना चाहिए तथा उनके संचालन में पर्याप्त सरकारी सहायता सुलभ की जानी चाहिए।

रेगिस्तानी क्षेत्रों और अधिक वर्षा वाले इलाकों के किसानों को नयी और उपयुक्त प्रौद्योगिकी अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। छोटे किसानों और खेत-मजदूरों को पशुपालन, भेड़ और कुक्कुट पालन तथा दूध देने वाले पशुओं के पालन के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। साथ ही, उन्हें गैर-कृषि व्यवसाय सीखने का मौका देना चाहिए।

अभी हमारे तीन चौथाई क्षेत्रों में सिंचाई का जल उपलब्ध नहीं है। निकट भविष्य में होने की संभावना भी क्षीण है। अतएव,

शुष्क खेती की प्रणाली का व्यापक प्रचार किए जाने के अलावा कम से कम जल का उपयोग कर उत्तम खेती करने की कला का प्रचार होना चाहिए। पेड़-पौधे लगाकर आय बढ़ाने के अलावा भू-क्षरण रोकने के उपाय अधिक से अधिक किसानों को बताये जाना जरूरी है। इससे बाढ़ पर भी नियंत्रण हो सकता है। गांवों में उन्नत बीज, उर्वरक, कीटनाशक औषधियों, उन्नत कृषि उपकरणों के अलावा डीजल और बिजली की सप्लाई बनाए रखने के लिए प्रशासनिक व्यवस्था को और कुशल बनाने की जरूरत है।

इसी तरह कृषि वस्तुओं का विदेशों में निर्यात बढ़ाने के लिए कपास, पटसन, गन्ना, फल, फूल, सब्जी उपजाने वाले किसानों, मांस, मछली और कीट पालन करने वालों को प्रोत्साहन देने के लिए स्वयंसेवी संगठनों की सहायता लेनी चाहिए। साथ ही, सरकारी अनुदान का दुरुपयोग करने वाले संगठनों के विरुद्ध सख्त कार्रवाई की जानी चाहिए।

गौर करने की एक और बात है - वह है किसानों तक पहुंचने की। क्या बात है कि पत्थर की प्रतिमाओं द्वारा दूध पीने की सूचना घंटे भर में गांव-गांव तक पहुंच गयी किंतु किसान मजदूरों को तेरह जन्म का कोढ़ मिटाने योग्य सूचनायें भी वर्षों तक पहुंच नहीं पाती। किसान मजदूरों से पूछता हूं तो वे उन्नत बीजों, कीटनाशक औषधियों और पोषक पदार्थों के नाम बताने/गिनाने में गड़बड़ा जाते हैं। क्या इसलिए नहीं कि उनके नाम अंग्रेजी में प्रचारित किये जाते हैं? क्या किसान-मजदूरों तक अंग्रेजी के माध्यम से पचास वर्षों में भी पहुंचना संभव है? कदापि नहीं। किसानों तक अपना संदेश पहुंचाने के लिए हमें उनसे उनकी भाषा में बात करनी पड़ेगी। उनकी भाषा में साहित्य भेजना पड़ेगा। ग्रामवासियों और सरकार के बीच भाषा की इस दीवार को शीघ्र तोड़ने का प्रयास नहीं किया गया तो देश के नव-निर्माण का सपना साकार नहीं होगा। शहर और गांव दो राष्ट्र के रूप अलग-अलग बने रहेंगे।

लेखक 'हिन्दुस्थान समाचार' के भूतपूर्व महाप्रबन्धक और सम्पादक हैं। दो वर्षों तक भारतीय जन संचार संस्थान में हिन्दी पत्रकारिता के अध्यापक रहने के अलावा वे राष्ट्रीय स्तर की अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक और सहकारी संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। पत्रकारिता, कानून, राजनीति और विकास सम्बन्धी उनके सैकड़ों लेख राष्ट्रीय पत्रों में प्रकाशित हुए हैं और आकाशवाणी और दूरदर्शन पर भी सैकड़ों वार्ताएं प्रसारित हो चुकी हैं।

जमीन का वितरण तो पहला कदम है। छोटा किसान उसे कैसे इस्तेमाल में लाता है, यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है। अगर जमीन को इस्तेमाल में लाने में उसकी मदद नहीं की जाएगी तो वह उसे छोड़ने की सोचेगा क्योंकि उसके पास उसे रखने की क्षमता नहीं है।

—इंदिरा गांधी

भारत में भूमि सुधार : एक समाजशास्त्रीय विवेचन*

प्रो० एस० एल० शर्मा

भूमि सुधार ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक शर्त है, यह मत व्यक्त करते हुए लेखकों ने बताया है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, काश्तकारी सुधार कानूनों और भूमि सीमाबंदी कानून के जरिए भूमि सुधारों को लागू करने का प्रयास किया गया। अनेक अड़चनों के बावजूद कहीं किसान आंदोलनों, कहीं दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति, तो कहीं प्रशासनिक अधिकारियों की प्रतिबद्धता से इस दिशा में सफलता मिली। भूदान आंदोलन का भी इसमें योगदान रहा है। अंत में लेखकों ने इस बात पर हर्ष व्यक्त किया है कि आर्थिक उदारीकरण के दौर में निजी कंपनियों के दबाव के बावजूद संसद के मानसून अधिवेशन में 81वें संविधान संशोधन द्वारा भूमि सुधारों को संविधान की नौंवी अनुसूची में शामिल करके सरकार ने इन्हें प्रभावी ढंग से लागू करने की अपनी वचनबद्धता का प्रमाण दिया है।

भारत एक ग्राम-प्रधान देश है। आज भी यहां 70 प्रतिशत लोग अपनी जीविका के लिए खेती पर निर्भर हैं। यही वजह है कि भारत की विकास योजनाओं में ग्रामीण विकास पर विशेष बल दिया गया है। ग्रामीण विकास की योजनाओं में भूमि सुधार का आधारभूत महत्व है। सच्चाई तो यह है कि भूमि सुधार के बिना ग्रामोत्थान का लक्ष्य प्राप्त किया ही नहीं जा सकता। अतः ग्रामीण विकास के लिए भूमि सुधार आवश्यक शर्त है।

भारत में भूमि सुधार की आवश्यकता क्यों पड़ी? इस सवाल का जवाब खोजने के लिए हमें थोड़ा सा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखना होगा। अंग्रेजों के शासनकाल में कुछ ऐसी गलत नीतियां बनीं जिनकी वजह से भूमि के असमान वितरण को बढ़ावा मिला। इन नीतियों में जमींदारी तथा रैयतवारी प्रथा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके परिणामस्वरूप अनेक सामाजिक-आर्थिक विकृतियां पैदा हुईं जिनमें जमींदारों द्वारा छोटे किसानों, काश्तकारों और खेतिहर मजदूरों का शोषण सबसे बड़ी समस्या बन गई। यह शोषण इस हद तक बढ़ा कि इसने किसान आंदोलनों (Peasant Movement) को जन्म दिया। स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं ने इन आंदोलनकर्ताओं का सहयोग प्राप्त करने के लिए इन्हें स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद भूमि सुधार लागू करने के आश्वासन दिये। इन आश्वासनों को पूर्ण करने के लिए और ग्रामीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने भूमि सुधार कानून बनाकर इस दिशा में अपने कदम बढ़ाए।

आरम्भ से ही भूमि सुधार के तीन प्रमुख उद्देश्य रहे हैं : शोषण का उन्मूलन और सामाजिक न्याय, उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि और सामाजिक परिवर्तन व ग्रामीण विकास। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कुछ भूमि सुधार कानून बने जिनमें निम्नलिखित तीन विचारणीय हैं : जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, काश्तकारी सुधार कानून एवं भूमि सीमाबंदी कानून।

इस लेख में हम भारत में भूमि सुधार के इन प्रयासों का एक समाजशास्त्रीय मूल्यांकन प्रस्तुत करेंगे। मूलतः तीन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयत्न करेंगे। प्रथम, इनमें से कौन से प्रयास भारत के किन-किन राज्यों में सफल हुए हैं और कहां-कहां असफल हुए हैं? द्वितीय, जहां-जहां सफल हुए हैं वहां इनकी सफलता का राज क्या है और जहां असफल हुए हैं वहां इनकी असफलता के कारण क्या हैं? तृतीय, क्या लोकतांत्रिक व्यवस्था में भूमि सुधार सफल हो सकते हैं और यदि हो सकते हैं तो उसके लिए पूर्व शर्तें क्या हैं? उपलब्ध शोध आंकड़ों के आधार पर इन प्रश्नों पर विचार करना ही इस लेख का मुख्य लक्षण है।

*इस लेख के लेखक प्रो० एस० एल० शर्मा एवं डा० के० गोपाल अय्यर हैं।

सर्वप्रथम जमींदारी उन्मूलन को देखते हैं। जमींदारी उन्मूलन विभिन्न राज्यों में 1948 से 1956 के दौरान लागू किया गया। जहां आंध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में इसे बड़ी सफलता मिली, वहीं बिहार जैसे राज्यों में इसे अपेक्षाकृत बहुत कम सफलता मिली। आंध्र प्रदेश में इसकी सफलता के पीछे तेलंगाना आंदोलन की भूमिका का विशेष महत्व है। निज़ाम की सामंत व्यवस्था के विरुद्ध 1946-50 के बीच चले तेलंगाना आंदोलन के प्रभाव की

आरंभ से ही भूमि सुधार के तीन प्रमुख उद्देश्य रहे हैं : शोषण का उन्मूलन और सामाजिक न्याय, उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि और सामाजिक परिवर्तन व ग्रामीण विकास।

वजह से आंध्र प्रदेश में सामंत प्रथा के खिलाफ क्रांतिकारी कानून बने जिन्होंने सामंतवाद की नींव हिला दी। इसके विपरीत बिहार में भू-स्वामियों का पलड़ा भारी पड़ा जिसकी वजह से जमींदारी उन्मूलन कानून बनने के बावजूद भी जमीन के कुछ हाथों में केन्द्रीयकरण पर ज्यादा असर नहीं पड़ा। भारत के विभिन्न राज्यों में जमींदारी उन्मूलन पर हुए अध्ययन दिखाते हैं कि अधिकतर राज्यों में इसे वांछनीय सफलता नहीं मिली। दूसरी ओर जब हम इसे समस्त भारत के संदर्भ में देखते हैं तो मालूम पड़ता है कि करीब 40 प्रतिशत खेती योग्य जमीन जो पहले जमींदारों के कब्जे में थी, वह इस कानून से प्रभावित हुई। यह कोई छोटी-मोटी उपलब्धि नहीं है। इसके महत्व का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि इसकी वजह से असंख्य काश्तकार जो पहले जमींदारों के शोषण से पीड़ित थे उनके शोषण से मुक्त हुए; वे काश्तकारों से भूस्वामी बने।

जमींदारी उन्मूलन कानून का विशेष लाभ वंशानुगत काश्तकारों (occupancy tenants) को प्राप्त हुआ। लेकिन गैर वंशानुगत काश्तकारों (Tenants at will) की समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। अनेक मामलों में उन पर इसका बुरा असर भी पड़ा। बहुत से जमींदारों ने इस प्रकार के काश्तकारों को खेती से बेदखल कर दिया जिससे ये लोग खेतिहर मजदूरों की श्रेणी में आ गए। ऐसे काश्तकार किसान आंदोलनों में बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। फलस्वरूप उनकी समस्याओं के निराकरण के लिए प्रथम व द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में राज्यों को आवश्यक कानून बनाने के निर्देश दिए गए। कुछ राज्यों ने इस दिशा में आवश्यक कदम उठाए। इनमें जम्मू एवं कश्मीर, महाराष्ट्र, गुजरात एवं राजस्थान के नाम उल्लेखनीय हैं। इन राज्यों में काश्तकारों को पहले बेदखली से सुरक्षा प्रदान की गई, फिर उचित लगान के प्रावधान बनाये गए तथा अंततः उन्हें वंशानुगत काश्तकारों (occupancy tenants) का दर्जा प्रदान किया गया। यही तीन उनकी प्रमुख समस्याएं थीं।

दूसरी ओर कुछ राज्यों में काश्तकारी सुधार कानून की दिशा में अपेक्षित प्रतिबद्धता का अभाव रहा। फलस्वरूप वहां किसान आंदोलनों ने जोर पकड़ा। इनमें बिहार, पश्चिम बंगाल, केरल तथा तमिलनाडु मुख्य हैं। ये किसान आंदोलन 1955 से 1970 तक अनवरत चलते रहे। इनके फलस्वरूप तमिलनाडु में काश्तकारों को उचित लगान तथा वंशानुगत काश्तकारी का अधिकार मिला, पश्चिम बंगाल में 14 लाख काश्तकारों को वंशानुगत काश्तकारी का अधिकार मिला तथा केरल में काश्तकारों को भू-स्वामित्व का अधिकार प्राप्त हुआ।

तीसरी ओर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, पंजाब तथा हरियाणा जैसे राज्य हैं जहां काश्तकारी सुधार संबंधी कानून लगभग निष्प्रभावी रहे हैं। उत्तर प्रदेश में न तो सरकार की ओर से कोई ठोस प्रयास हुए और न ही किसान आंदोलनों ने काश्तकारों

जब हम इसे (जमींदारी उन्मूलन कानून को) समस्त भारत के संदर्भ में देखते हैं तो मालूम पड़ता है कि करीब 40 प्रतिशत खेती योग्य जमीन जो पहले जमींदारों के कब्जे में थी, वह इस कानून से प्रभावित हुई। यह कोई छोटी-मोटी उपलब्धि नहीं है। इसके महत्व का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि इसकी वजह से असंख्य काश्तकार जो पहले जमींदारों के शोषण से पीड़ित थे उनके शोषण से मुक्त हुए; वे काश्तकारों से भूस्वामी बने।

के प्रश्न को लेकर कोई भूमिका अदा की। बिहार में जोरदार किसान आंदोलनों व क्रांतिकारी नक्सलवादी आंदोलन के बावजूद भी बटाईदारों (Share Croppers) की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। इसके कारणों में प्रमुख हैं-- जमींदारी कानूनों का ठोस रूप में लागू न होना, सामंतवादी व्यवस्था की मजबूत जकड़ तथा राजनैतिक इच्छाशक्ति का अभाव। पंजाब और हरियाणा में हाल के दशकों में काश्तकारों की समस्याओं को लेकर न तो कोई प्रबल किसान आंदोलन हुए और न ही राजनैतिक इच्छाशक्ति देखने को मिली, जिसकी वजह से गैरवंशानुगत काश्तकारों की दशा यथावत बनी हुई है।

सम्पूर्ण भारतवर्ष को लेकर देखने से पता चलता है कि काश्तकारी सुधार कानूनों के परिणामस्वरूप लगभग 77.21 लाख काश्तकारों को 138 लाख एकड़ भूमि पर भूस्वामित्व का अधिकार मिला है जो पूर्ण भारत की खेती योग्य भूमि का चार प्रतिशत है।

पश्चिम बंगाल में जो 14 लाख काश्तकारों को वंशानुगत काश्तकारी का अधिकार मिला है वह इसके अतिरिक्त है। जहां ये आंकड़े काश्तकारी सुधार कानून की सफलता के प्रमाण हैं वहीं ऐसे आंकड़ों की भी कमी नहीं जो दिखाते हैं कि आज भी काश्तकारी सुधार कानूनों को मजबूती से लागू करने की आवश्यकता कितनी अधिक है। इसका अंदाज़ निम्न सारणी से लगाया जा सकता है जो विभिन्न राज्यों में काश्तकारों द्वारा जोती-बोई जमीन का रकबा प्रस्तुत करती है।

में (पश्चिम बंगाल तथा तमिलनाडु को छोड़कर) मौखिक काश्तकारों (concealed or oral tenants) की संख्या भी बहुत अधिक है। इन राज्यों में काश्तकारी सुधार के मुख्य प्रश्न जैसे उचित लगान, बेदखली से सुरक्षा, वंशानुगत अधिकार तथा भूस्वामित्व के अधिकार अब भी महत्वपूर्ण हैं। इस समस्या का निदान दृढ़ राजनैतिक इच्छाशक्ति तथा किसान आंदोलनों के द्वारा ही संभव है।

सारणी संख्या-1

काश्तकारों द्वारा खेती की जाने वाली जमीन का रकबा (आंकड़े प्रतिशत में)

राज्य	काश्तकारों द्वारा खेती की जाने वाली जमीन का रकबा*		
	1971-72	1981-82	1988-91
आंध्र प्रदेश	9.01	6.23	6.00
असम	19.69	6.35	8.00
बिहार	14.50	10.27	11.20
गुजरात	3.91	1.91	2.20
हरियाणा	23.26	18.22	10.30
हिमाचल प्रदेश	10.20	3.20	1.50
जम्मू और कश्मीर	3.06	2.37	1.50
कर्नाटक	15.89	6.04	5.00
केरल	8.59	2.05	0.50
मध्य प्रदेश	7.46	3.56	8.00
महाराष्ट्र	6.15	5.20	3.00
उड़ीसा	13.46	9.92	5.00
पंजाब	28.01	16.07	5.00
राजस्थान	5.26	4.37	7.00
तमिलनाडु	13.07	10.92	9.00
त्रिपुरा	—	—	3.00
उत्तर प्रदेश	13.01	10.34	11.00
पश्चिम बंगाल	18.76	12.34	11.00
भारत	10.57	7.58	4.00

*स्रोत : राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे : 26 (1971-72) और 37 (1981-82)।

लाल बहादुर शास्त्री अकादमी, मंसूरी द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार।

सारणी संख्या-1 दर्शाती है कि 1988-91 के दरम्यान काश्तकारों की बहुलता बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, हरियाणा, तमिलनाडु, असम तथा मध्य प्रदेश में है। इन राज्यों

अब देखते हैं भूमि सीमाबंदी कानूनों को। ये कानून दो अवस्थाओं में बने हैं। पहले 1950 तथा 1960 के दशक में और दूसरे 1970 के दशक में। प्रथम चरण में विभिन्न राज्यों ने जो

भूमि सीमाबंदी कानून बनाए उनमें कई मुख्य कमजोरियां थीं। उदाहरण के लिए भूमि की सीमा बहुत अधिक रखी गई; परिवार की परिभाषा इतनी लचीली रखी गई कि प्रत्येक परिवार अधिक से अधिक मात्रा में जमीन रख सके; अनेक प्रकार की जमीनों को छूट (exemptions) दी गई जैसे धार्मिक स्थल, शैक्षणिक संस्थान, बाग-बागान (orchards and plantations), गन्ने के फार्म, गौशाला, पब्लिक ट्रस्ट आदि। इन विकृतियों को लेकर 1960 के दशक में प्रबल किसान आंदोलन हुए जिसमें जमीन हथियाओ आंदोलन (Land grab movements) तथा नक्सलपंथी आंदोलन उल्लेखनीय हैं। इनके परिणामस्वरूप 1972 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में भूमि सीमाबंदी कानूनों की कमियों को दूर कर उन्हें ठोस धरातल पर संशोधित करने का निर्णय लिया गया। अनेक राज्यों ने तद्नुसार संशोधन किये जिसकी वजह से ये कानून जरा सख्ती से लागू हो सके। यह इस बात से स्पष्ट है कि जहां 1950 से लेकर 1970 तक केवल 11 प्रतिशत भूस्वामियों ने प्रतिवेदन दिए वहीं 1971-80 के बीच 70 प्रतिशत तथा 1981-90 के बीच 19 प्रतिशत ने प्रतिवेदन दिये। इस प्रकार जनवरी 1992 तक कुल 15.81 लाख भूस्वामियों ने प्रतिवेदन दिये।

1992 तक पूरे भारतवर्ष में 72.56 लाख एकड़ जमीन अतिरिक्त घोषित की गई और इसमें से 48.45 लाख एकड़ जमीन वितरित की गई व शेष जमीन कानूनी दांवपेंच, खेती अयोग्य भूमि वगैरह के तहत फंसी हुई है। इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि कुल घोषित अतिरिक्त जमीन में पश्चिम बंगाल में 92.63 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गई है। इसके बाद क्रमशः आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, असम तथा राजस्थान का नम्बर आता है जहां 6 लाख से 7 लाख एकड़ जमीन अतिरिक्त घोषित की गई है। अन्य राज्यों की उपलब्धि और भी कम है। इस कानून की असफलता सबसे अधिक पंजाब, हरियाणा, बिहार, मध्य प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, उड़ीसा, तमिलनाडु आदि में देखने को मिलती है।

अनेक राज्यों में अदालती न्याय में विलम्ब की वजह से कुल 72.56 लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि में से 11.60 लाख एकड़ अभी भी फंसी हुई है। इस संबंध में यह भी बताना आवश्यक है कि कई राज्यों में धार्मिक स्थानों वाली जमीन अभी भी इस कानून के अधीन नहीं आ सकी है। इनमें आंध्र प्रदेश व तमिलनाडु का नाम सबसे ऊपर है। आंध्र प्रदेश में करीब 3.50 लाख एकड़ भूमि और तमिलनाडु में 6 लाख एकड़ से भी अधिक जमीन अभी भी धार्मिक संस्थाओं के अधिकार में है। असम सरकार ने इस दिशा में सबसे अधिक सराहनीय काम किया है जो अन्य राज्यों के लिए अच्छी मिसाल है।

भूमि सीमाबंदी कानून की असफलता के कुछ अन्य पहलू भी विचारणीय हैं। पहले तो यह सर्वविदित है कि सारी अतिरिक्त भूमि भूस्वामियों ने घोषित ही नहीं की है। दूसरे कुल अतिरिक्त घोषित भूमि का 29 प्रतिशत अब भी राज्य सरकारों के अधिकार में नहीं आ पाया है। तीसरे, कुल प्राप्त अतिरिक्त भूमि का 19 प्रतिशत अभी भी भूमिहीनों में वितरित नहीं हुआ है। चौथे, कुल अतिरिक्त घोषित भूमि का केवल 14 प्रतिशत सिंचित है जबकि 83 प्रतिशत असिंचित है और 3 प्रतिशत ऐसा है जो खेती योग्य ही नहीं है। औसतन प्रति व्यक्ति 1.46 एकड़ भूमि अब तक वितरित की गई है। उत्पादन व उत्पादकता की दृष्टि से यह औसत बहुत संतोषजनक नहीं है। फिर भी कुछ न होने से इतना होना अच्छा है।

1972 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में भूमि सीमाबंदी कानूनों की कमियों को दूर कर उन्हें ठोस धरातल पर संशोधित करने का निर्णय लिया गया। अनेक राज्यों ने तदनुसार संशोधन किये जिसकी वजह से ये कानून जरा सख्ती से लागू हो सके।

भूमि सीमाबंदी कानून की सफलता के पहलू भी कम महत्वपूर्ण नहीं। अतिरिक्त घोषित जमीन भारत की कुल खेती योग्य भूमि का चार प्रतिशत है जो भूमि सीमाबंदी कानून की सफलता का एक अच्छा मापदंड है। कुछ राज्यों जैसे पश्चिम बंगाल, असम, जम्मू एवं कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश में तो यह 7 से 9 प्रतिशत है। इसी प्रकार अखिल भारतीय स्तर पर कुल अतिरिक्त घोषित जमीन का 87.25 प्रतिशत सरकार के अधिकार में आ गया है और सरकार के अधिकार में आई जमीन का 78.3 प्रतिशत गरीब खेतिहर मजदूरों में वितरित हो गया है। एक अन्य सराहनीय तथ्य यह है कि जिन लोगों को अतिरिक्त जमीन मिली है उनमें अखिल भारतीय स्तर पर 50 प्रतिशत से अधिक अनुसूचित जाति तथा जनजाति के हैं।

भूमि सीमाबंदी के अतिरिक्त दो और प्रयास भूमि वितरण के संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। ये हैं : सरकारी भूमि का वितरण एवं भूदान आंदोलन। पहली जनवरी 1992 तक अखिल भारतीय स्तर पर 128.61 लाख एकड़ सरकारी जमीन वितरित की गई जबकि भूमि सीमाबंदी कानून के अन्तर्गत इस अवधि में कुल 48.45 लाख एकड़ जमीन वितरित की गई। इससे स्पष्ट है कि वितरित सरकारी

भूमि अतिरिक्त वितरित भूमि से ढाई गुना अधिक है। कुछ राज्यों में इस कार्यक्रम की सफलता बेजोड़ है जो निम्नलिखित आंकड़ों से स्पष्ट है :–

राज्य	वितरित सरकारी जमीन रकबा (एकड़ लाख में) (जनवरी 1992 तक)
1. आंध्र प्रदेश	30.40
2. उत्तर प्रदेश	22.28
3. गुजरात	13.73
4. कर्नाटक	13.22
5. महाराष्ट्र	10.23
6. बिहार	9.75
7. उड़ीसा	6.64

अन्य राज्यों में वितरित की गई जमीन 8 लाख एकड़ से कम है। इस संबंध में प्रमुख बात यह है कि लाभान्वित लोगों में 83 प्रतिशत लोग जमीन का उपभोग कर रहे हैं। लेकिन 17 प्रतिशत लोग जमीन का अधिकार प्राप्त नहीं कर पाये हैं क्योंकि गांव के प्रभुत्व सम्पन्न लोग उन्हें जमीन का अधिकार लेने में बाधा डालते हैं। इनमें बिहार, असम, हरियाणा, राजस्थान तथा तमिलनाडु के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

जहां एक ओर सरकारी जमीन का वितरण हुआ है वहीं एक निराशाजनक बात यह भी है कि शामलात जमीन (Common Property Resources) का प्रभुत्व सम्पन्न लोगों द्वारा अतिक्रमण (encroachment) भी हुआ है। उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि अखिल भारतीय स्तर पर 3 प्रतिशत जमीन पर प्रभुत्व सम्पन्न लोगों द्वारा अनाधिकार आधिपत्य जमाया गया है। असम में सरकारी जमीन का 13 प्रतिशत, जम्मू एवं कश्मीर में 10.56 प्रतिशत, मध्य प्रदेश व तमिलनाडु में 5-5 प्रतिशत अतिक्रमण की लपेट में आया है।

एक और महत्वपूर्ण बात यह भी है कि जहां 1951 से 1971 तक खेतिहर मजदूरों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ी है वहीं 1981 से 1991 के बीच खेतिहर मजदूरों की संख्या में गिरावट आई है। यह इस बात का द्योतक है कि भूमि सीमाबंदी कानून तथा सरकारी जमीन के वितरण की योजना से भूमिहीन मजदूरों को जमीन मिली है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भूमि सुधार के प्रयास कुछ राज्यों में अधिक सफल हुए हैं और कुछ में कम। आम तौर पर भूमि सुधार की सफलता के पीछे चार कारकों का विशेष योगदान रहा है। ये हैं– किसान आंदोलनों की भूमिका, दृढ़ राजनैतिक इच्छाशक्ति, प्रशासन की भूमि सुधार संबंधी प्रतिबद्धता एवं भूदान आंदोलन का जोर। कहीं ये सभी कारक एक साथ क्रियाशील रहे हैं तो कहीं इनमें से कोई एक या दो मिलकर सक्रिय रहे हैं। उदाहरण के लिए केरल व पश्चिम बंगाल में भूमि सुधार की सफलता का श्रेय किसान आंदोलनों की भूमिका और दृढ़ राजनैतिक इच्छा शक्ति के युग्म को जाता है। जम्मू एवं कश्मीर और कर्नाटक में दृढ़ राजनैतिक इच्छा शक्ति का प्रमुख योगदान रहा है। आंध्र प्रदेश के नेल्लोर जिले में एवं बिहार के पश्चिम चंपारन जिले में राजनैतिक इच्छा शक्ति के अभाव के बावजूद भी कुछ प्रशासकों की भूमि सुधार संबंधी प्रतिबद्धता की वजह से भूमि सीमाबंदी कानून सफल रहे हैं। इसी प्रकार बिहार के धनबाद,

आमतौर पर भूमि सुधार की सफलता के पीछे चार कारकों का विशेष योगदान रहा है। ये हैं – किसान आंदोलनों की भूमिका, दृढ़ राजनैतिक इच्छाशक्ति, प्रशासन की भूमि सुधार संबंधी प्रतिबद्धता एवं भूदान आंदोलन का जोर। कहीं ये सभी कारक एक साथ क्रियाशील रहे हैं तो कहीं इनमें से कोई एक या दो मिलकर सक्रिय रहे हैं।

संथाल परगना, रांची, सिंहभूम आदि जिलों में कुछ प्रशासकों ने जनजातियों को जमीन तथा जंगल संबंधी अधिकार दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भूदान आंदोलन की भूमिका का प्रभाव विशेष रूप से बिहार में देखने को मिलता है।

भूमि सुधारों को रोकने में कुछ निहित स्वार्थों वाले वर्गों की बड़ी भूमिका रही है। इनमें से चार प्रमुख हैं : अमीर भूस्वामी, सांसद एवं विधायक, प्रशासनिक अधिकारी और न्यायधीश। भूस्वामियों की लाबी ने संसद व राज्य विधान सभाओं में भूमि सुधार की नीतियों को अपने हित में प्रभावित करने में काफी सफलता हासिल की। इसी प्रकार सांसदों व विधायकों ने, जिनमें से अनेक स्वयं ही बड़े-बड़े भूस्वामी थे, भूमि सुधार संबंधी ऐसे कानून बनाए जिससे उनके स्वार्थों पर आंच न आ पाये। यही वजह है कि उन्होंने सारे कानूनों में बहुत सारे ऐसे दांवपेंच पहले ही समाहित कर दिये जिनका सहारा लेकर वे अपनी जमीनों को बचा सकें। उधर प्रशासनिक अधिकारियों ने भी, जिनमें से बहुत सारे स्वयं ही बड़ी बड़ी जमीनों के मालिक थे, इन कानूनों के लागू करने में ढील बरती। कुछ ऐसी ही भूमिका न्यायाधीशों की भी रही क्योंकि उनमें भी बहुत ऐसे थे जो स्वयं बड़े भूस्वामी थे। स्वाभाविक ही था कि उन्होंने ऐसे फैसले सुनाए जो भूस्वामियों के हित में गए। इन चारों वर्गों के गठजोड़ ने भूमि सुधार के प्रयासों को विफल करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यही वजह है कि अनेक राज्यों में भूमि सुधार कानून कम ही सफल हो पाये।

भूमि सुधार की सफलता के विषय में एक आम धारणा यह रही है कि वे अधिकतर साम्यवादी राष्ट्रों में ही सफल हुए हैं। यह बात काफी हद तक सही है। पर साथ ही इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि कुछ गैर साम्यवादी राष्ट्रों में भी भूमि सुधार कामयाब हुए। पर गैर साम्यवादी राष्ट्रों में भूमि सुधार वहीं सफल हुए हैं जहां दृढ़ राजनैतिक इच्छा शक्ति का प्रमाण मिला। ऐसे राष्ट्रों में जापान व उत्तरी कोरिया विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

भारत एक गैर साम्यवादी राष्ट्र है। यहां प्रजातन्त्र का अपना अलग स्वरूप पनपा है। इसका खास लक्षण है इसका लचीलापन। जब जब यहां की प्रजातंत्र प्रणाली अपने सामान्य रूप में कारगर नहीं हो पायी तब तब इसमें विभिन्न प्रकार के जन आंदोलन उठ खड़े हुए। ऐसे आंदोलनों ने यहां की प्रजातंत्र प्रणाली को मजबूत, सार्थक और उत्तरदायी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस संदर्भ में भूमि सुधार के लिए किसान आंदोलनों की भूमिका सराहनीय रही है। यही वजह है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी भारत के उन राज्यों में जहां किसान आंदोलन प्रबल रहे वहां भूमि सुधार सफल रहे हैं। इसलिए ऐसा मानने का कोई कारण नहीं कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में भूमि सुधार सफल नहीं हो सकते। आवश्यकता है दृढ़ राजनैतिक इच्छाशक्ति की जो जन आंदोलनों से ही सम्भव है।

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि भारत में भूमि सुधार कानून अपने मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने में आंशिक रूप से सफल रहे हैं। शोषण के उन्मूलन व सामाजिक-आर्थिक न्याय के अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में वे एक हद तक सफल रहे हैं। साथ ही यह भी सही है कि इसके बावजूद भी सामाजिक-आर्थिक विषमता की समस्या चिंताजनक बनी हुई है। यह इस बात से जाहिर है कि आज भी देश में 71 प्रतिशत भूमि पर 23.8 प्रतिशत लोगों का स्वामित्व है। खेतिहर मजदूरों की संख्या, जो 1991 में सात करोड़ थी, औसतन 20 लाख प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है। जहां इसमें अन्य कारकों का भी हाथ है वहीं यह इस बात का भी द्योतक है कि भूमि सुधार कानून सामाजिक न्याय प्राप्त करने के अपने लक्ष्य में काफी कुछ असफल रहे हैं।

इसी प्रकार यदि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि के लक्ष्य को लें तो एक ओर इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि जमींदारी उन्मूलन और काश्तकारी सुधार कानूनों से उत्पादन में वृद्धि हुई है। भारत जहां पहले खाद्यान्न के लिए दूसरे देशों से आयात पर निर्भर रहता था अब वह न केवल आत्मनिर्भर हो गया है बल्कि उसके पास पर्याप्त अतिरिक्त भंडार भी बन गया है। इसी प्रकार सन् 1960 के बाद प्रति एकड़ उत्पादकता में भी वृद्धि हुई है। दूसरी ओर यह भी सही है कि भूमिहीनों में अतिरिक्त भूमि एवं सरकारी भूमि के वितरण के बावजूद भी आज देश के 807 करोड़ छोटे और सीमांत किसानों के पास दो-दो हेक्टेयर से भी कम भूमि है। इससे उत्पादन और उत्पादकता दोनों पर बुरा असर पड़ रहा है। इसी आधार पर आज आर्थिक उदारवादी नीतियों के समर्थकों द्वारा भूमि सीमाबंदी कानून की वांछनीयता को चुनौती दी जा रही है।

सामाजिक न्याय बनाम आर्थिक उत्पादकता का प्रश्न कोई नया नहीं है। यह समय-समय पर उठता रहा है। इसका समाधान एक की दूसरे पर प्राथमिकता नहीं है। आवश्यकता है दोनों में संतुलन बिठाने की। यह हर्ष का विषय है कि आर्थिक उदारवादी नीति के तहत निजी कंपनियों के दबाव के बावजूद भी भारतीय सरकार भूमि सुधार कानूनों को प्रभावी बनाने के लिये प्रयत्नशील है। संसद के मानसून सत्र में 81वें संविधान संशोधन के माध्यम से भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नौवीं सूची के अन्तर्गत लाने का भारतीय सरकार का प्रयास इस बात का सराहनीय प्रमाण है। आशा की जा सकती है कि इससे भूमि सुधार कानूनों को लागू करने की दिशा में तेजी आएगी।

प्रो० एस० एल० शर्मा पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं और वहीं एकेडेमिक स्टाफ कालेज के निदेशक भी हैं। सन् 1984-87 तक वे कामनवैल्थ की ओर से जमैका सरकार के समाजशास्त्र के सलाहकार रहे हैं। आजकल वे भारतीय समाजशास्त्रीय परिषद के सचिव भी हैं। अन्य विषयों के अलावा सामाजिक-आर्थिक विकास के शोध में उनकी विशेष रुचि है।

डा० के० गोपाल अय्यर पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में समाजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष हैं। इससे पहले वे दो वर्ष तक लालबहादुर शास्त्री एकेडेमी आफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी में रहे जहां उन्होंने भूमि सुधार योजनाओं पर विशेष शोध कराया। किसान आंदोलन व खेतिहर मजदूरों के अध्ययन में उनकी खास दिलचस्पी है।

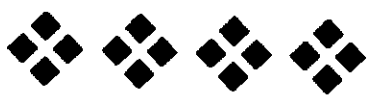

भारत में भूमि सुधार : कितना सार्थक, कितना विकासोन्मुख

कमला प्रसाद

भारत में भूमि सुधार का लक्ष्य कृषि में तकनीकी कुशलता लाना मात्र ही नहीं था अपितु सामाजिक न्याय लाना भी था। लेखक ने यह मत प्रकट करते हुए कहा है कि हालांकि केन्द्र सरकार ने भूमि सुधारों को संविधान के दायरे में लाकर इनके प्रति अपनी वचनबद्धता दोहराई है पर आर्थिक उदारीकरण के दौर में इन सुधारों के प्रति शिथिलता आने लगी है। इससे यह पूरा कार्यक्रम खटाई में भी पड़ सकता है। लेखक ने चेतावनी दी है कि इससे ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक और सामाजिक जीवन पर घातक प्रभाव पड़ सकता है।

देश में भूमि सुधारों की प्रक्रिया स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ प्रारम्भ हुई। इसके लिए पृष्ठभूमि स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान ही बन चुकी थी। 1929 में जवाहरलाल नेहरू ने पूर्ण स्वराज्य की घोषणा के साथ यह भी स्पष्ट किया था कि यह देश किसानों का देश है, उनकी स्थिति दयनीय है और इस स्थिति में वांछित सुधार भूमि कानूनों और तत्कालीन काश्तकारी प्रणाली में वृहत परिवर्तन से ही संभव है। यह प्रतिबद्धता समय के साथ सशक्त होती गई। अक्तूबर 1940 के एक भाषण में उन्होंने सबको काम देने का वचन देते हुए कहा कि जिसे जमीन नहीं मिल पाएगी, वे फैक्टरियों में काम पाएंगे। फरवरी 1948 में उन्होंने संविधान सभा में बताया कि भूमि सुधार एवं भूमिधर किसान नींव की एक ऐसी ईंट हैं जिसके आधार पर अन्य सभी निर्माण संभव हैं। इस काम के लिए कांग्रेस पार्टी ने समझौते की नीति को उत्कृष्ट समझा यद्यपि उनके समाजवादी सहयोगी तो 'जोतने वाले को जमीन' के सिद्धान्त के पक्षधर थे। सभी वर्गों के प्रति न्याय और शोषक एवं शोषित ग्रामीण वर्गों को साथ लेकर चलने की मनोवृत्ति ने अन्ततोगत्वा सुधार की प्रक्रिया धीमी कर दी। इस कारण मूल नीति के कार्यान्वयन में गतिरोध आते रहे और अभी तक यह काम अधूरा है।

परिवर्तन के दिशा निर्देश

देश के सामने हमेशा से दो समानान्तर लक्ष्य रहे। सुदूरवर्ती लक्ष्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जमीन का स्वामित्व उन्हें देना रहा है जो स्वयं जमीन जोतते हैं या जमीन पर काम करते हैं। इसके लिए जिस इच्छा शक्ति की जरूरत थी, वह शासन अब तक जुटा नहीं पाया है। अतएव, तात्कालिक लक्ष्य सर्वोपरि हो गए। ये लक्ष्य कई चरणों में उभरते रहे। प्रथम चरण में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से देश के करीब 40 प्रतिशत भाग में भूमिधर किसानी की वही प्रथा लागू हो गई, जो देश के शेष भाग में थी। जमीन पर बिचौलियों को हटाने की प्रक्रिया में, जमीन जोतने वाले किसानों की बेदखली की समस्या खड़ी हो गई। इसका संतोषपूर्ण समाधान कभी नहीं निकल पाया। एक दूसरी समस्या भी आई। जमींदारों के पास काफी मात्रा में फालतू जमीन थी। यह जमीन सरकार के अधिकार क्षेत्र की थी। इनकी बन्दोबस्ती गैरकानूनी तरीकों से कर दी गई और भूमिहीनों के बदले अन्य लोगों के हाथ में चली गई। इन कमियों के बावजूद करीब दो करोड़ किसान अपनी जोत की जमीन का स्वामित्व पाने में सफल रहे।

इस कार्यक्रम के कार्यान्वयन से दो प्रकार के प्रश्न उभरकर सामने आए। पहला प्रश्न था खेती के लायक परती जमीन का

भूमिहीन परिवारों के बीच वितरण। सरकार में अंतर्निहित होने के बाद, वितरण का काम कार्यपालिका के आदेश द्वारा संभव था और किया गया। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के परिवारों को वितरण व्यवस्था में प्राथमिकता मिली। यह संविधान सम्मत प्राथमिकता के अनुरूप भी था। दूसरा प्रश्न था, ग्रामीण खेतिहर

1929 में जवाहरलाल नेहरू ने पूर्ण स्वराज्य की घोषणा के साथ यह भी स्पष्ट किया था कि यह देश किसानों का देश है, उनकी स्थिति दयनीय है और इस स्थिति में वांछित सुधार भूमि कानूनों और तत्कालीन काश्तकारी प्रणाली में वृहत परिवर्तन से ही संभव है।

परिवारों की संख्या को ध्यान में रखते हुए, यथासंभव अतिरिक्त भूमि वितरण के लिए उपलब्ध कराने का। यह तभी संभव था जब उत्पादन एवं उत्पादकता को ध्यान में रखकर, प्रति परिवार खेती की भूमि की सीमा निर्धारित की जाए और अधिशेष जमीन भूमिहीन परिवारों के बीच वितरित की जाए। द्वितीय चरण में, पचास के दशक में ही, इस विषय में आवश्यक कानून—लैंड सिलिंग एक्ट—पारित हुए। पर सीमा एवं अन्य विषयों पर राज्यों के बीच काफी भिन्नता थी। अतएव, द्वितीय चरण के सुधारों के कार्यान्वयन का काम भी धीमी गति के कारण अवरुद्ध होता रहा। अन्ततोगत्वा, 1972 में, एक राष्ट्रीय मार्गदर्शन को अन्तिम रूप दिया जा सका। इस विलम्ब का परिणाम यह हुआ कि जितनी अधिशेष जमीन मिलने का अनुमान था, उससे काफी कम जमीन उपलब्ध हुई। नियमों में कमी एवं छूट ने अभी तक काफी ऐसी भूमि को अदालती कार्रवाई के द्वारा अनिर्णय की स्थिति में रखा है। पुराने भूस्वामी ऐसी जमीनों पर कब्जा बनाए हुए हैं।

तृतीय चरण के रूप में काश्तकारी कानूनों में सुधार कर वास्तविक रैयत को स्थायी अधिकार दिया जा सकता है। प्रारम्भ से ही यह सरकारी कार्यक्रम का अंग था। कुछ कमियां कानून की थीं पर अधिक कमी कानून के प्रभावशाली कार्यान्वयन की थी। कानून में बटाईदारी जमीन की पैदावार का कितना हिस्सा भूस्वामी को मिलेगा यह तय था, पर बेदखली के भय से बटाईदार भूस्वामी को अधिक भाग देने को मजबूर थे। बेदखली, विशेष परिस्थितियों को छोड़कर नहीं की जा सकती थी, पर प्रशासनिक तंत्र इसे रोकने में अशक्त रहा है। सरकारी अभिलेखों में बटाईदार का नाम दर्ज करना अनिवार्य है, पर येन-केन-प्रकारेण अभिलेख इस विषय पर अधूरे रहे और आज तक अद्यतन नहीं हो पाए हैं। समय के साथ कानून के प्रावधान बटाईदार के हित में होते गए, पर सरजमीन पर स्थिति यथावत रही। यहां तक की उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में जहां 'सालाना पड़ताल' की प्रणाली प्रभावी है, नियमों का कार्यान्वयन नहीं हो रहा है। पिछले पन्द्रह साल में पश्चिम बंगाल ने सघन रूप से उस विषय में कार्रवाई की है। सरकारी कर्मचारियों पर स्थानीय गैर-सरकारी संगठनों के दबाव से अभिलेखों में सुधार और जोत में स्थायित्व की दिशा में आशातीत सफलता मिली है। फिर भी प्रक्रिया अभी अधूरी है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि कानूनी दायित्व का निर्वाह कितना कठिन है। आखिर ऐसा क्यों है? भूमि सम्बन्धी सभी कानूनों के कार्यान्वयन में यह प्रश्न अहम क्यों बना रहा?

अंग्रेजी शासन काल में भूमि एवं जल प्रबन्धन का पुनर्गठन किया गया। पर, उसका लक्ष्य राजस्व उगाही ज्यादा और कृषि विकास कम था। साथ ही साथ, विदेशी शासक ऐसे सामाजिक वर्ग को प्रश्रय देने को वचनबद्ध थे जो शासन को स्थानीय शोषण और तनाव से अलग रखे। इस प्रकार, बड़े भूस्वामी, सरकारी संरक्षण में, ग्रामीण शक्ति संरचना पर नियन्त्रण रखने में सफल रहे। समय के साथ, इन भूस्वामियों ने स्वतन्त्रता संग्राम के साथ भी, प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से, अपने को जोड़ लिया। स्वतन्त्र भारत में सरकार— विधायिका, न्यायपालिका एवं प्रशासन—में भी ग्रामीण भू-स्वामियों से जुड़े लोगों की बहुतायत थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हम उस पुरानी परम्परा से अपने को स्वतन्त्र नहीं कर पाए जिसने ग्रामीण परावलम्बन की मानसिकता को जन्म दिया था। स्वतन्त्रता आन्दोलन में दिए गए आश्वासनों के बावजूद एक प्रकार के पैतृकवाद को प्रश्रय दिया गया। इसके माध्यम से जमीन पर प्राप्ति के अधिकारों ने गौण स्वरूप ले लिया। भूदान आन्दोलन ने भी इस प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया। परिणामस्वरूप, सरकारी तंत्र भू-अधिकार सम्बन्धी संघर्षों का विरोधी हो गया। जो प्रक्रिया पश्चिम बंगाल में अस्सी के दशक में अपनाई गई, वह यदि स्वतन्त्रता के बाद से पूरे देश में अपनाई गई होती, तो स्थिति कुछ और होती। इसी संदर्भ में राजनैतिक इच्छाशक्ति और प्रतिबद्धता पर तीर सन्धान होता रहा है।

देश में सिद्धान्त रूप में अच्छे कानून बनाये गए। मूल भूमि सुधार कानून अच्छे रहे हैं। सरकारी घोषणाएं और ज्यादा प्रगतिशील रही हैं। अतएव सभी अधिनियमों को साधारण जनता का समर्थन मिलता रहा है। फिर कठिनाई कहां आई? औपचारिक

रूप में कानूनों में छूट की परम्परा, कार्यान्वयन में विवेकाधिकार का प्रावधान और कभी-कभी लचर वाक्य विनिमय औपबन्धित लाभ के विपरीत प्रमाणित हुए हैं। अनौपचारिक रूप में, अधिनियम लागू होने के बावजूद नियमों के बनने में अनावश्यक विलम्ब, कार्यपालिका आदेशों/मार्गदर्शन के माध्यम से अनेकानेक प्रतिबन्ध, शक्तिशाली परिवारों के राजनैतिक सम्बन्ध और उसके कारण कानूनी कार्रवाई एवं शक्ति प्रयोग में हस्तक्षेप, कुछ ऐसे कारण हैं, जिससे सहज कार्यान्वयन एवं कानूनी प्रावधानों का सशक्त उपयोग खतरे से भरा पूरा रहा है। अन्त में जो कुछ संभव था वह राजस्व अदालत एवं न्यायालयों के एकतरफा हस्तक्षेप एवं अनावश्यक विलम्ब से बाधित हो गए। इक्के-दुक्के सराहनीय काम हुए हैं पर जिन पदाधिकारियों ने उपलब्धि दिलाई, व्यक्तिगत रूप से स्वीकार किया गया कि कानूनी हस्तक्षेप से बचाव की रणनीति बनाने के बाद ही वे ऐसा कर पाए। ऐसी स्थिति का सामना राजनैतिक इच्छाशक्ति, जनशक्ति के सहयोग और प्रभावी उत्तरदायित्व से ही संभव था। प्रजातांत्रिक प्रणाली के उपायों को वास्तव में उपयोग में न लाकर, सारा दोष प्रणाली पर ही थोप दिया गया। परिणामस्वरूप काम अधूरा रह गया।

सहायक कार्यक्रम

जमीन सम्बन्धी अधिकारों की मान्यता कुछ अन्य कानूनों और कार्यक्रमों में दी गई। जनजातीय समुदाय के लिए अतिरिक्त सुरक्षा की व्यवस्था की गई है। इनमें भूमि परकीकरण (एलिएनेशन) एवं ऋण मोचन प्रमुख हैं। होमस्टीउ टिनेन्सी एक्ट के माध्यम से खेतिहर मजदूरों को भूस्वामी की जमीन पर बने उनके घर से विस्थापित होने से बचाने और उस जमीन पर स्थायी स्वामित्व देने का प्रावधान है। साथ ही साथ न्यूनतम मजदूरी कानून के द्वारा ऐसी व्यवस्था है कि महंगाई एवं काम की शर्तों को ध्यान में रखकर कृषि मजदूरों को मजदूरी मिले। भूअर्जन अधिनियम में संशोधन कर ऐसी व्यवस्था की गई है कि प्रक्रिया के लम्बे अरसे तक लम्बित रहने के कारण भूधारियों को हानि से बचाया जा सके। विरासत के कानूनों के कारण, पुश्त-दर-पुश्त जमीन खण्ड बढ़ते जा रहे हैं और बंटवारे की परम्परा इस प्रकार की है कि एक किसान की जमीन अनेक छोटे-छोटे खण्डों में अलग-अलग स्थानों पर रहती है। यह अच्छी खेती के लिए हानिकारक है। अतएव, भूमि चकबन्दी कानूनों द्वारा प्रत्येक किसान की जमीन को यथासंभव एकीकृत करने के कार्यक्रम चल रहे हैं। मूल कानूनों के साथ, इन सहयोगी कानूनों पर कार्रवाई के द्वारा खेती में लगे सभी हितों के संरक्षण की व्यवस्था संभव है।

इस प्रकार भूमि सुधार का दायरा विस्तृत रहा है। भूमि सम्बन्धी प्रायः सभी मसलों पर इनका प्रभाव पड़ता है। किसानों का भूमि पर अधिकार और उसके कार्यान्वयन स्वरूप उपलब्ध भूमि पर उनका प्रभावी नियन्त्रण कृषि विकास की पहली सीढ़ी है। कृषि मजदूर की कृषि विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या के दो तिहाई से अधिक परिवार रहते हैं और फिर भी खेती के कुछ अवसरों यथा बुआई, कटाई के समय मजदूरों की कमी हो जाती है। खेती जितनी ही उन्नत हो, मजदूरी की आवश्यकता बढ़ जाती है। इस देश में छोटे भूखण्ड अधिक संख्या में हैं। इसलिए मशीनीकरण इसका विकल्प नहीं है। अतएव, खेतिहर मजदूरों की सुदृढ़ स्थिति पर ही खेती की पैदावार नए-नए तकनीकों के उपयोग से बढ़ाई जा सकती है। यही कारण है कि खेतिहर मजदूरों को सुधार की प्रक्रिया का अंग रखा गया है और

भूमि सुधार का दायरा विस्तृत रहा है। भूमि संबंधी प्रायः सभी मसलों पर इनका प्रभाव पड़ता है। किसानों का भूमि पर अधिकार और उसके कार्यान्वयन स्वरूप उपलब्ध भूमि पर उनका प्रभावी नियंत्रण कृषि विकास की पहली सीढ़ी है।

उनकी स्थिति में भी सुधार हुआ है। भूअर्जन के द्वारा काफी जमीन किसानों के हाथ से निकलती जा रही है। बड़ी-बड़ी सिंचाई, बिजली, खनिज, उद्योग एवं शहरीकरण की परियोजनाओं ने विस्थापित परिवारों के समक्ष कठिन समस्याएं खड़ी कर दी हैं। जमीन का उचित दाम समय पर मिले, यह इसका पूर्ण निराकरण नहीं है। अब पर्यावरण संरक्षण हितों ने इस विषय के सभी पहलुओं को सामने लाना प्रारम्भ किया है और सुधार की प्रक्रिया में तेजी की संभावना बढ़ गई है। अन्त में यह उल्लेख भी आवश्यक है कि भूमि सुधारों ने पानी के अधिकार से अपने को अलग रखा है। देश में 52 प्रतिशत सिंचाई व्यक्तिगत स्रोतों से होती है और छोटे एवं सीमान्त किसान पूर्णरूप से लाभान्वित नहीं होते हैं। फिर जमींदारी क्षेत्रों में सामुदायिक सिंचाई परिसम्पति यथा तालाब, अहर, विवाद के विषय बने हुए है। अतएव, उपयुक्त समय आ गया है जब पानी स्रोतों के नियमन को संयुक्त रूप से भूमि एवं जल प्रबंधन कानून के अन्तर्गत लाया जाए। वृक्षारोपण एवं सामुदायिक जमीन पर वृक्षों के संरक्षण, स्वामित्व एवं उपयोग के विषय में भी कानूनी स्थिति में सुधार से वृक्ष-आच्छादन में विशेष वृद्धि एवं भूमि संरक्षण में सुधार की बड़ी संभावना है। अतएव,

जहां एक तरफ पुराने कानूनों के कार्यान्वयन अधूरे हैं, वहीं विकास की संभावनाओं को ध्यान में रखकर नई दिशाओं की खोज एवं नए कानूनों की आवश्यकता है। ऐसा होने से ही, भूमि सुधार के पूर्ण लाभ एवं समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, देश के सर्वांगीण विकास में अपना योगदान दे सकेंगे।

उपलब्धियों का लेखा जोखा

फिर भी, अभी तक की उपलब्धियों को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। क्षेत्रीय विषमता के चलते ऐसी धारणा बन गई है कि भूमि सुधार कृषि उत्पादकता बढ़ाने एवं ग्रामीण जीवन को संवारने में अच्छा योगदान नहीं दे पाए हैं। यह धारणा भी उजागर होती रही है कि भूमि सुधार कानूनों के कार्यान्वयन से जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हो गए हैं जिसका उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इनका कोई ठोस आधार नहीं लगता है।

जमींदारी उन्मूलन ने मात्र स्वामित्व का हस्तान्तरण किया। करीब दो करोड़ नए काश्तकार सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर पाए। उनकी जोत में कोई अन्तर नहीं आया। भूमि वितरण कार्यक्रम—सरकारी परती, भूदान एवं हदबंदी अधिशेष जमीन—से करीब एक करोड़ बीस लाख नई जोत बन गई। पर जोत की जो सीमा उभर कर सामने आई, वह साधारणतः राज्यों के औसत जोत के समकक्ष ही है। गुजरात में चार से पांच एकड़ तक औसत प्रति परिवार था तो, बिहार और पश्चिम बंगाल में एक एकड़ से कम या उसके आसपास। इनमें कुछ लाभान्वित सीमान्त वर्ग के थे और इस वितरण व्यवस्था से उनकी जोत आर्थिक दृष्टि से ज्यादा लाभदायक हो गई। काश्तकारी कानूनों के अन्तर्गत बटाईदार का नाम जहां भी राजस्व अभिलेखों में दर्ज हो गया, वे टिनेन्ट ऋण एवं अन्य सरकारी प्रेरणा नीति में भागीदार बन गए। अपनी सम्पत्ति का अहसास होने से वास्तव में इस कार्यक्रम ने उन्नत खेती की नींव का काम किया।

देश को दुनिया में सम्मान दिलाने वाली पहली उपलब्धि हरित क्रांति थी। इस क्रांति का शुभारम्भ ऐसे राज्यों से हुआ, जहां भूमि सम्बन्धों के तीन स्तर की कार्रवाई पूरी हो गई थी। ये थे : (1) जमीन के स्वामित्व का जायज हाथों में स्थानांतरण और किसानों का स्वयं खेती में हाथ बटाना; (2) जमीन हदबन्दी (कनसेलीडेशन) और तदनुसार उन्नत सिंचाई का प्रबन्ध; और (3) व्यावसायिक कृषि की सुविधाओं एवं प्रोत्साहन का उपलब्ध होना। पंजाब, हरियाणा और पश्चिम उत्तर प्रदेश इसी आधार पर खाद्यान्न अधिशेष क्षेत्र बन पाए। उन्नत भूमि व्यवस्था, उन्नत खेती की आधारशिला सिद्ध हुई। काश्तकारी कानूनों के प्रभावशाली कार्यान्वयन से अब पश्चिम बंगाल भी अति छोटी जोतों के

भूस्वामित्व की उत्कृष्ट, स्पष्ट एवं समतामूलक व्यवस्था उन्नत राज्यों की उन्नत कृषि एवं ग्रामीण सम्पन्नता का आधार है। मध्य प्रदेश, बिहार और उत्तर प्रदेश जब तक इस तथ्य को नहीं स्वीकारते, वे विकास की मुख्य धारा से अलग रहेंगे। यह स्मरण कराना जरूरी है कि कृषि आधारित राज्य पंजाब की प्रति व्यक्ति आय औद्योगिक राज्य महाराष्ट्र से अधिक है।

बावजूद, निरन्तर अधिक उत्पादकता की ओर बढ़ रहा है। कृषि के विविधीकरण में कर्नाटक, महाराष्ट्र एवं गुजरात अन्य राज्यों से आगे हैं। सहकारी गन्ना विकास एवं चीनी उत्पादन, फल एवं सब्जी उत्पादन एवं निर्यात; खाद्य तिलहन का उत्पादन एवं दुग्ध उत्पादन में छोटी जोत के किसानों ने सक्रिय भूमिका निभाई है। सीमित सिंचाई की सुविधाओं के बावजूद उत्पादक सहकारी संगठन व्यवस्था इस उपलब्धि का आधार रहा है। देश में छोटी जोतों के बाहुल्य को देखते हुए, सहकारी खेती को भूमि सुधार का सहयोगी कार्यक्रम मानकर, इस दिशा में कार्रवाई प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में हुई थी। गुजरात में करीब पचास प्रतिशत सिलिंग सरप्लस भूमि लाभार्थियों की सहकारी समितियों के पास है। ये सभी उदाहरण इस तथ्य को उजागर करते हैं कि भूस्वामित्व की उत्कृष्ट, स्पष्ट एवं समतामूलक व्यवस्था उन्नत राज्यों की उन्नत कृषि एवं ग्रामीण सम्पन्नता का आधार है। मध्य प्रदेश, बिहार और उत्तर प्रदेश जब तक इस तथ्य को नहीं स्वीकारते, वे विकास की मुख्य धारा से अलग रहेंगे। यह स्मरण कराना जरूरी है कि कृषि आधारित राज्य पंजाब की प्रति व्यक्ति आय औद्योगिक राज्य महाराष्ट्र से अधिक है।

वैसे तो नई तकनीकी ने कृषि विकास में जोत क्षेत्र को कुछ हद तक गौण बना दिया है। पहले भी पचास के दशक में जापान के छोटी जोत और धान लगाने की प्रणाली को आदर्श मानकर किसानों के बीच इसे प्रचारित/प्रसारित करने का प्रयत्न हुआ। जनसंख्या-बहुल राष्ट्रों में पीजेन्ट प्रोप्राइटर प्रणाली का आधार ही यही था। खेती व्यक्तिगत न कि सामूहिक या सरकारी संगठन आधारित है। अनुभव के आधार पर भी, इस देश में छोटी-छोटी जोत काफी उन्नतशील एवं उत्पादकता में अग्रणी हैं। छोटी एवं

सीमान्त जोत क्षेत्रों में बड़ी जोत क्षेत्रों की तुलना में, सिंचाई सुविधा की व्यवस्था अधिक है। यह तथ्य भी सामने आए हैं कि एक हेक्टेयर से कम के काश्त की खेती में दस हेक्टेयर या उससे अधिक की जोत क्षेत्र से अधिक गहन खेती होती है। फिर, यदि तुलनात्मक दृष्टि से खर्च समान हो तो जैसे-जैसे जोत परिमाण बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे प्रति हेक्टेयर उत्पादकता कम होती जाती है। इसका स्पष्ट प्रमाण पश्चिम बंगाल से मिलता है जहां एक हेक्टेयर से कम के काश्त में चार हेक्टेयर या उससे अधिक की जोत से उत्पादकता अधिक पाई गई है। सत्तर के दशक में ऊर्जा संकट से यह तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आया कि खेती में अत्यधिक ऊर्जा के उपयोग से सब्सिडी के आधार पर ही मूल्यों को नियंत्रित रखना संभव होता। यह भी एक कारण था कि पश्चिमी देशों में कृषि पर सब्सिडी दुनिया में सबसे ज्यादा रही है। आज "सस्टेनेबल डेवलपमेंट" की ओर रुझान का एक कारण यह भी है। एशिया के अन्य देशों यथा बंगलादेश एवं इन्डोनेशिया का अनुभव रहा है कि छोटी जोतों में, बड़ी जोतों की तुलना में, उत्पादकता 15 से 20 प्रतिशत अधिक रहती है। इन सभी तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि कुछ हद तक भूमि सुधार कानूनों ने छोटी जोतों की संख्या बढ़ाई है, तो उससे कृषि विकास की गति में तेजी ही आई है।

सामाजिक क्रांति की भूमिका

लेकिन भूमि सुधार का लक्ष्य कृषि में तकनीकी कुशलता मात्र नहीं था। सदियों से अछूते ग्रामीण परिवेश में नई तकनीकी एवं नए संगठन सामाजिक परिवर्तन के लिए भी जरूरी थे। देश की योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में विकास का उतना ही महत्व रहा है, जितना सामाजिक न्याय का। भूमि सुधारों ने भी कृषि क्रांति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पर क्या सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तन पर इनका प्रभाव पड़ा है?

जमींदारी के उन्मूलन से ग्रामीण परिवेश में बहुत बड़ा अन्तर आया। कल के गुलाम, आज मालिक बन गए। उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ी। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होने लगी और वे ग्रामीण राजनैतिक शक्ति की भागीदारी के प्रबल दावेदार हो गए। देश के एक बड़े भाग में वे अब राजनैतिक शक्ति के केन्द्र बिन्दु हो गए हैं और भूमि सुधारों के वृहत्तर लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हैं। भूमि के वितरण से लाभान्वित परिवार उतने भाग्यशाली नहीं थे। वास्तव में, भूमि सुधार प्रक्रिया में समाज के कमजोर वर्गों की पहचान हुई। पर, इस बीच पुराने और नए भूधारियों ने कमजोर वर्गों को सत्ता में हिस्सा देने में कोई रुचि नहीं दिखाई। अतएव भू-परिसम्पत्तियों ने प्रथम चरण में तकनीकी कुशलता पर ही ध्यान लगाया। यह स्थिति स्थायी नहीं हो सकती थी। अतएव, सामाजिक संरचना एवं राजनैतिक शक्ति संचालन में समानता के संघर्ष ने जन्म लिया। कमजोर वर्ग के लोग अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और कृषि मजदूर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गए और राजनैतिक सत्ता में उनके अधिकारों को मानने की प्रक्रियां प्रारम्भ हुई। नई पंचायती राज व्यवस्था ने अब पुरानी असमानता को कम करने की दिशा में कार्रवाई प्रारम्भ की है। जमीन में हिस्सा, कृषि उत्पादन में योगदान और कुछ अंश तक विकास के लाभ ने उनके अधिकारों को मुखर किया है।

जमींदारी के उन्मूलन से ग्रामीण परिवेश में बहुत बड़ा अन्तर आया। कल के गुलाम, आज मालिक बन गए। उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ी। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होने लगी और वे ग्रामीण राजनैतिक शक्ति की भागीदारी के प्रबल दावेदार हो गए।

समाज में नए वर्गीय समीकरण से विकास की प्रक्रिया में तेजी आना अवश्यम्भावी है। अस्सी के दशक में विकास के नए कीर्तिमान आए पर वे मात्र तकनीकी कुशलता पर आधारित थे। अतएव, देश को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा है। अभी भी नीति में समतामूलक परिवर्तन नहीं हो रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र में उप-काश्तकार तथा कृषि मजदूर का सम्बन्ध भूस्वामी की दबंग शक्ति का शिकार है। सरकारी तंत्र तो साधारणतः शक्ति केन्द्र के साथ ही रहता है। भूसम्बन्धों में अवरोधों को दूर कर, सुधार लाने में कठिनाई इसी कारण आई है। अभी जो वर्ग भूमि पर ज्यादा हावी है और अपनी शक्ति बढ़ाने में लगा है, वह भी लगता है भूसम्बन्धी सुधारों में रुचि छोड़ रहा है। यह सर्वांगीण ग्रामीण विकास के लिए बड़ा खतरा है। हमारे अर्थशास्त्री इस बात से संतुष्ट हो सकते हैं कि सकल घरेलू आय में कृषि का योगदान कम होता जा रहा है, पर कृषि प्रधान देश के लिए क्या यह उचित है? प्रथम तो, जब कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र का विकास धीमी गति से हो तो इस क्षेत्र का योगदान कम होगा ही। दूसरी तरफ, नई नीतियों में एक अरसे से, रोजगार सृजन का गुरुत्तर दायित्व ग्रामीण क्षेत्र पर ही रखा जा रहा है। यह तो ग्रामीण विकास की गति एवं भूमि सम्बन्धी सुधारों से ही संभव है। फिर ग्रामीण क्षेत्रों में घटता

पूंजी-संकलन एवं पूंजीनिवेश, जो अन्तोतगत्वा उत्पादन एवं पारिवारिक क्रय-शक्ति को बढ़ाता है, अभी दुःखद स्थिति में है। अतएव भूमि सुधारों और भूमि सम्बन्धों में सुधारों को प्राथमिकता न देना घातक सिद्ध हो सकता है।

भूमि सुधार की प्राथमिकता

सन् 1991 से प्रारम्भ नई आर्थिक नीति ने ऐसी मानसिकता को जन्म दिया है, मानो अब तक के सभी सुधार आर्थिक प्रगति में बाधक रहे हों। यह तथ्यों से परे है। फिर, भूमि सम्बन्धी नीति इस तथ्य पर आधारित होनी चाहिए कि उपलब्ध भूमि का दायरा सीमित है, अन्य साधनों का उपयोग भी इसमें वृद्धि नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में इसे विडम्बना नहीं तो और क्या कहा जा सकता है कि खेती लायक उर्वर भूमि उद्योग लगाने और शहर बढ़ाने के उपयोग में लाई जा रही है और भूमिहीनों के बीच वितरित जमीन का काफी हिस्सा बंजर या फिर निम्न कोटि का है। वास्तव में तकनीकी कुशलता में वृद्धि के साथ सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों का सामंजस्य नहीं हो पा रहा है। यही कारण है कि मजबूरी की स्थिति को छोड़कर दूसरी पंचवर्षीय योजना से लेकर आज तक औद्योगीकरण को अधिक प्राथमिकता दी गई हालांकि परिणाम आशानुकूल नहीं रहे।

नई उदारीकरण नीति भी अभी तक मात्र सतह को ही कुरेदने में सफल रही है। वह भी इस परिस्थिति में संभव हो पाया है कि लगता है जैसे तीस एवं चालीस के दशक के मौसम की पुनरावृत्ति स्वरूप कृषि क्षेत्र में स्थायीत्व है। मूलरूप से शहरी एवं ग्रामीण भूमि स्वामित्व पर सीमा को समाप्त करने के लिए दबाव बढ़ता जा रहा है— शहरी क्षेत्र में आवास निर्माण परियोजनाओं के लिए और ग्रामीण क्षेत्र में खाद्य आधारित उद्योग के सिलसिले में सघन खेती के लिए क्या निजी क्षेत्र के द्वारा विकास में उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण निहित है? क्या सहकारिता क्षेत्र के खाद्य आश्रित उद्योगों की तरह सभी भूधारियों के सहयोग से कम्पनी बनाकर 'लोकप्रिय पूंजीवाद' की ओर कदम उठाया जा सकता है? मात्र पूंजीपतियों के हाथ इस प्रकार के सीमित साधन के केन्द्रीकरण पर विचार ही क्यों होता है? यह तथ्य भी विचारणीय है कि प्रतिवर्ष खेती योग्य भूमि अन्य प्रयोजनों में जा रही है और बंजर भूमि जैसे की तैसे पड़ी है। भूमि के उपयोग की ऐसी नीति क्यों नहीं अपनाई जाती जिससे खेती में अनुपयुक्त भूमि ही अन्य कामों में लाई जाए? उद्योगपतियों और उनके सहायक अर्थशास्त्रियों/राजनीतिज्ञों का ध्यान इस ओर जाना चाहिए।

इस देश में सबसे बड़ा दायित्व रोजगार सृजन का होना चाहिए। आवश्यकता से अधिक जनसंख्या कृषि पर आश्रित है। कृषि विकास, खाद्यान्न उत्पादन के साथ उनकी सुख-सुविधाओं में बढ़ोत्तरी होती है। गैर कृषि क्षेत्र के लिए किसानों के छोटे-छोटे भूखण्डों को अर्जित करने पर भूधारी विस्थापित और बेरोजगार हो जाते हैं। उनका दायित्व उद्योग या अन्य क्षेत्र लेने को तैयार नहीं होते। भूमिहरण निर्धनता का पर्याय बन जाता है। स्वतन्त्र

प्रति वर्ष खेती योग्य भूमि अन्य प्रयोजनों में जा रही है और बंजर भूमि जैसे की तैसे पड़ी है। भूमि के उपयोग की ऐसी नीति क्यों नहीं अपनायी जाती जिससे खेती में अनुपयुक्त भूमि ही अन्य कामों में लाई जाए?

भारत में ऐसे विकास से आर्थिक और सामाजिक विषमता बढ़ी है। अतएव भूमि सुधार और भूमि सम्बन्धों से जुड़े प्रश्नों पर विचार करते समय इस पृष्ठभूमि को नजरअन्दाज करना अनुचित होगा। भूमि सुधार की सार्थकता का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि इसके माध्यम से कृषि उत्पादकता में वृद्धि हो रही है।

अतएव पुराने कार्यक्रमों को दृढ़ता से लागू करते हुए, ग्राम विकास को ऐसे नए रास्तों की ओर चलाना आवश्यक है, जिससे सर्वांगीण ग्रामीण विकास, भूमि परिसम्पत्ति में समतामूलक अधिकार और ग्रामीण शक्ति संचालन में सामाजिक न्याय को प्रश्रय मिले। इस दृष्टिकोण से, पांच ऐसे कारण उभरते हैं जो सुधारों की प्राथमिकता में किसी प्रकार के समझौते के विरुद्ध जाते हैं। प्रथमतः औद्योगीकरण आवश्यक है पर अब तक उसके द्वारा कृषि से अलग रोजगार के साधन उत्पन्न नहीं हुए हैं जो कृषि लायक भूमि पर औद्योगिक एकाधिपत्य का आधार बनें। पंडित नेहरू ने उद्योगों के माध्यम से कृषि के अतिरेक लोगों को रोजगार दिलाने का जो सपना देश को दिया था, उसका मूर्तरूप होना और ज्यादा दूर होता जा रहा है। द्वितीय, कृषि एवं खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर उन राज्यों में सराहनीय रही है जहां भूमि सुधार कार्यक्रमों को गम्भीरता से लागू किया गया। अतएव, उन्नत कृषि और अधिक विकास दर के लिए सुधारों के कार्यक्रम का कड़ाई से पालन किया जाना आवश्यक है। तीसरा, स्वयं भारत सरकार ग्रामीण रोजगार के अवसर गांवों में कृषि एवं गैर-कृषि क्षेत्र में बढ़ाने के लिए प्रयासरत है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कृषि योग्य उपलब्ध भूमि को अक्षुण्ण रखना एवं ऐसे परिवारों को भूमि पर अधिकार दिलाना

आवश्यक है, जो खेती में लगे हैं और आसपास के क्षेत्र में रहते हैं। चौथा, पूंजी संचयन एवं पूंजी निवेश निजी क्षेत्र में बड़े किसान ही कर सकते हैं, पर नहीं कर रहे हैं। उनकी पूंजी शायद गैर कृषि क्षेत्र में जा रही है। अतएव, पूर्ण रूप से खेती पर आधारित परिवारों के बीच भूमि स्वामित्व से ही स्थिति में सुधार संभव है। पांचवां, भूमि आधारित सामाजिक सम्मान एवं राजनैतिक शक्ति अभी भी ग्रामीण परिवेश में पूर्ण रूप से हावी है। इस कारण भूमि की समस्या सामाजिक शोषण एवं राजनैतिक तनाव का आधार बनी हुई है। विकास के हित में इस स्थिति में परिवर्तन भूमि सुधारों से ही संभव है।

दुविधापूर्ण भविष्य

भारत सरकार ने अब तक स्पष्ट रूप से भूमि सुधारों में ढील की नीति की घोषणा नहीं की है। वास्तव में सभी भूमि सुधार कानूनों को संवैधानिक संरक्षण देकर, सरकार ने अपनी प्रतिबद्धता

भूमि आधारित सामाजिक सम्मान एवं राजनैतिक शक्ति अभी भी ग्रामीण परिवेश में पूर्ण रूप से हावी है। इस कारण भूमि की समस्या सामाजिक शोषण एवं राजनैतिक तनाव का आधार बनी हुई है। विकास के हित में इस स्थिति में परिवर्तन भूमि सुधारों से ही संभव है।

की पुनरावृत्ति की है। पर नये औद्योगिक लक्ष्य एवं निजी तथा विदेशी पूंजीनिवेश के लालच में राज्यों में इस विषय में शिथिलता आई है। पश्चिम बंगाल भी अपने कड़े कानूनों में परिवर्तन की ओर अग्रसर है। अतएव, पूरा कार्यक्रम निराशा की स्थिति में गुजर रहा है। इसका कुप्रभाव ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति पर पड़ सकता है।

स्वतंत्रता के साथ देश की जनता के सामने एक सपना रखा गया था। वह था वृहत औद्योगीकरण का— विदेशों से सहयोग प्राप्त कर, उनके समकक्ष आने का। देश का औद्योगीकरण हुआ, पर उससे सामाजिक लाभ बहुसंख्यक लोगों को नहीं प्राप्त हुआ। फिर वही सपना नए रूप में उभर कर सामने है। एक बार फिर अगर स्वप्न भंग हो गया तो तब तक सुधार में विलम्ब हो चुका होगा। औद्योगीकरण को प्राथमिकता का पर्याय कृषि क्षेत्र की प्राथमिकता एवं कृषि आधारित परिवारों की प्राथमिकता कम करना नहीं होना चाहिए। भूमि सुधार ही वह कसौटी है जिसके आधार पर साधारण किसान एवं कृषि मजदूर इस विषय पर अपनी मानसिकता बनाएगा। वर्तमान में स्थिति दुविधा की है, यह विकास के हित में नहीं है।

कृषि और उद्योग क्षेत्र में अब तक घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं बन पाए हैं। अतएव, वे एक दूसरे के दृष्टिकोण का सम्यक मूल्यांकन नहीं कर पा रहे हैं। भूमि सुधार कानूनों में परिवर्तन को लेकर ग्रामीण क्षेत्र में शंका एवं संशय की स्थिति है। ग्रामीण क्षेत्र अपने को तुलनात्मक दृष्टि से कमजोर समझते हैं। इस कारण, स्थान-स्थान पर बहुउद्देशीय कम्पनियों, बड़ी सिंचाई एवं विद्युत परियोजनाओं और कृषि प्रधान पुरानी नीतियों में परिवर्तन के विरोध में आंदोलन की स्थिति उभर रही है। इन संकेतों से शिक्षा लेना आवश्यक है। भूमि सुधार में कमजोर एवं शक्तिशाली ग्रामीण वर्ग-संघर्ष निहित है। अतएव, इस विषय में अनिश्चितता ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए अच्छी नहीं होगी।

देश ने एक अरसे से समता एवं समृद्धि-मूलक समाज निर्माण की नीति अपनाई है। असफलताओं के बावजूद, यह नीति जनमानस में बस गई है। इस मूल नीति में परिवर्तन का संकेतमात्र अकथनीय परिणाम का जनक हो सकता है। भूमिनीति एक ऐसा ही मुद्दा है और इसमें सुधार की प्रतिबद्धता कार्यान्वयन में भी परिलक्षित होनी आवश्यक है।

लेखक बिहार सरकार के भूतपूर्व मुख्य सचिव हैं। केन्द्र सरकार में कृषि मंत्रालय में निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग) और संयुक्त सचिव (खाद्य विभाग) रहे हैं। खाद्य एवं कृषि संगठन में भारत के स्थायी प्रतिनिधि तथा प्रोग्राम कमेटी के सदस्य रहने के अलावा लेखक इटली में भारतीय दूतावास में कौन्सलर भी रहे हैं।

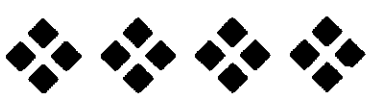

भूमि सुधार कानूनों के क्रियान्वयन में विषमताएं

देवेन्द्र उपाध्याय

भूमि सुधारों की कार्यान्वयन नीति के तहत 22 राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों में 74 लाख एकड़ से ज्यादा भूमि फाजिल घोषित की गई जिसमें से 51 लाख एकड़ भूमि का वितरण भूमिहीन गरीब परिवारों में किया जा चुका है। लेखक के अनुसार हदबंदी से फालतू भूमि के वितरण की गति बहुत धीमी है। यदि शीघ्र ही इसे वितरित नहीं किया गया तो फिर आने वाले कई वर्षों में इसका वितरण संभव नहीं होगा। लेखक ने सुझाव दिया है कि ग्राम पंचायतों को भूमि सुधार के विभिन्न कार्यक्रमों को लागू करने के व्यापक अधिकार दिये जाने चाहिए। लेखक का यह भी कहना है कि 4.57 लाख एकड़ भूमि जो लोक प्रयोजनों के नाम पर पड़ी है, उसे भी गरीबों में बांट दिया जाना चाहिए।

स्वतंत्रता से पूर्व हमारे देश में जमीन कुछ लोगों के हाथों में सिमटी हुई थी। बड़े-बड़े जमींदार मौजूद थे, सामंत थे, राजे-रजवाड़े थे। गांवों में सामंती व्यवस्था चलती थी। जमीन पर जोतने वाले का हक नहीं था। जोतने वाला कमाकर सारा अनाज जमींदारों को सौंपने के लिए विवश था। महाजन-सूदखोरों के चंगुल में फंसकर वह अपनी ही जमीन पर मजदूरी करने के लिए मजबूर था।

स्वतंत्रता से पूर्व यह एक वास्तविकता थी कि काश्तकार जिन्दगी भर कर्ज के बोझ से दबा रहता था। कर्ज में ही उसका बेटा पैदा होता था और आने वाली पीढ़ी के लिए कर्ज छोड़कर मर जाता था। उसे जमींदारों को लगान देना पड़ता था। यह लगान मनमाने ढंग से वसूला जाता था। गांवों में तब महाजन, भूमिहीन काश्तकार, उप-काश्तकार, बटाईदार और खेत मजदूर का ढांचा था। जमीन जोतने वाले के पास साधन नहीं थे, सामर्थ्य नहीं थी। यह ढांचा स्वतंत्रता के बाद देश को विरासत में मिला।

स्वतंत्रता के बाद जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के प्रयास शुरू हुए। जमींदारों ने अपनी सुविधा के अनुसार हजारों-लाखों एकड़ बेनामी जमीन पर कब्जा बनाए रखा। भूमि हदबंदी कानून लागू करने की दिशा में कदम उठाए गए लेकिन बड़े-बड़े भूस्वामियों ने इससे बचने के तरीके भी खोज निकाले। सन् 1961 में जमींदारी उन्मूलन कानून के साथ भूमि हदबंदी कानून लागू हुआ। सभी राज्यों ने इसे अलग-अलग तरीके से लागू किया। इसमें तरह-तरह की मनमानियां सामने आईं। सन् 1972 में भूमि हदबंदी कानून के साथ जोत के आकार को सीमित करने का प्रावधान किया गया।

प्रभावी लोगों ने भूमि हदबंदी कानून से बचाव के तरीके खोज निकाले और अपनी हजारों-लाखों एकड़ जमीन में से अधिकांश पर बेनामी तरीके से कब्जा बनाए रखा। उसका लाभ लगातार उठाया जाता रहा और आज भी उठाया जा रहा है। सत्ता से जुड़े हुए लोग और सत्ता के दलाल आज भी हजारों एकड़ जमीन के स्वामी बने बैठे हैं। किसानों के हितों के लिए जो भी कदम उठाए जाते हैं उनका फायदा इन्हीं बड़े भू-स्वामियों को होता है। छोटे और सीमांत किसानों को उतना लाभ नहीं मिल पाता है।

एक अनुमान के अनुसार स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधार के लिए जो कदम उठाए गए उनसे स्वतंत्रता के पहले दस वर्ष में बिचौलिये खत्म हो गए। जमींदारी उन्मूलन से करीब दो करोड़ किसान लाभान्वित हुए। बड़ी जोतों में इससे कमी तो अवश्य हुई लेकिन आज भी कृषि जोत के वितरण का कार्य विषम बना हुआ है। अधिकांश राज्यों में जोतों की चकबंदी के लिए काम हुआ पर पूर्वोत्तर राज्यों में ऐसा नहीं हो पाया।

भूमि सुधार कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए सरकार द्वारा अपनाई गयी नीति में मुख्य रूप से हदबंदी कानूनों को कारगर

तरीके से लागू करने, हदबंदी से फाजिल जमीन का वितरण करने और भूमि अभिलेखों को अद्यतन बनाकर उनको कम्प्यूटर प्रणाली से जोड़ने पर बल दिया गया है। भूमि के मालिकाना हक में जो विषमताएं हैं उन्हें भूमि हदबंदी कानून के प्रभावी कार्यान्वयन से ही दूर किया जा सकता है। इस नीति का पालन करते हुए 22 राज्यों और संघ शासित प्रदेशों ने हदबंदी कानून लागू करने के लिए कानून बनाए हैं। जिनके कारण अब 74.10 लाख एकड़ जमीन को हदबंदी से फाजिल घोषित किया गया है। इसमें से 51.46 लाख एकड़ जमीन का वितरण 49.94 लाख परिवारों में

प्रभावी लोगों ने भूमि हदबंदी कानून से बचाव के तरीके खोज निकाले और अपनी हजारों-लाखों एकड़ जमीन में से अधिकांश पर बेनामी तरीके से कब्जा बनाये रखा। उसका लाभ लगातार उठाया जाता रहा और आज भी उठाया जा रहा है।

किया जा चुका है। लेकिन इसे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता है। हदबंदी से फाजिल जमीन को बांटने की गति बहुत धीमी है। अभी भी 10.65 लाख एकड़ जमीन विभिन्न स्तरों पर मुकदमों में उलझी हुई है। इस भूमि को विचाराधीन मुकदमों का शीघ्र निपटारा करके अगर वितरित न किया गया तो आने वाले कई वर्षों तक इसका वितरण हो पाना संभव नहीं हो पाएगा।

इस समय करीब 4.41 लाख एकड़ जमीन अनुपयोगी है। इसे ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत हरित भूमि में बदला जा सकता है। लोक उपयोग के नाम पर देश में 4.57 लाख एकड़ जमीन का वितरण नहीं किया गया है। जबकि इसे गांव के गरीब भूमिहीनों को बांटा जाना चाहिए। इसका एक कारण यह भी है कि राज्य सरकारें विभिन्न दबावों के कारण भूमि हदबंदी कानून का प्रभावी कार्यान्वयन नहीं कर रही हैं।

अगर राज्य सरकारें वास्तव में भूमि हदबंदी कानून लागू करना चाहती हैं, तो उसे कड़ाई बरतनी होगी। संविधान के अनुच्छेद 323-बी के अंतर्गत न्यायाधिकरणों की स्थापना करने की व्यवस्था है जिससे हदबंदी कानून से सम्बन्धित विचाराधीन मुकदमों का जल्दी से जल्दी निपटारा हो सके और सभी काश्तकारों और बटाईदारों को मालिकाना अधिकार दिए जा सकें।

भूमि हदबंदी कानून के अंतर्गत फाजिल जमीन को बांटने के काम में तेजी लाने के लिए अक्तूबर 1991 से मार्च 1994 तक विशेष अभियान चलाया गया। इस दौरान करीब 3.14 लाख एकड़ जमीन का वितरण किया गया।

भूमि सुधार कानून को संविधान की नवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। भूमि संबंधी 222 कानून अभी तक नवीं अनुसूची में शामिल किए जा चुके हैं। संसद ने 27 अन्य भूमि सुधार कानूनों को इसके अंतर्गत लाने के लिए विधेयक पारित किया है। सबसे बड़ी समस्या भूमि अभिलेखों को अद्यतन बनाने की है। हालांकि केन्द्र सरकार ने इसके लिए सन् 1981 से योजना शुरू की है और राज्यों को जून 1995 तक केन्द्रीय अंशदान के रूप में 104.72 करोड़ रुपये दिये भी जा चुके हैं। इसके बावजूद राज्य सरकारों की कार्यान्वयन गति बहुत ही धीमी है। 73वें संविधान संशोधन विधेयक से देश में पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत बनाने का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इससे पूर्व अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग पंचायती राज प्रणाली थी लेकिन अब पूरे देश में, कुछ अधिसूचित क्षेत्रों को छोड़कर, समान पंचायती राज व्यवस्था लागू हो गई है। पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत ग्राम पंचायतों को भूमि सुधार संबंधी उपायों को लागू करने के लिए व्यापक अधिकार दिए जाने चाहिए।

भूमि राजस्व प्रशासन को मजबूत बनाने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार ने बिहार के पूर्व मुख्य सचिव श्री पी० एस० अप्पू की अध्यक्षता में भू-राजस्व प्रशासन पुनर्जीवन समिति का अगस्त 1993 में गठन किया था। समिति ने मार्च 1995 में अपनी रिपोर्ट दे दी है। इसकी सिफारिशें अभी तक केन्द्र सरकार के विचाराधीन हैं।

आठवीं योजना में भूमि सुधार के सफल क्रियान्वयन की आवश्यकता पर बल दिया गया है जिसमें मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :

1. समानता पर आधारित सामाजिक ढांचे की प्राप्ति के लिए कृषि संबंधों की पुनर्संरचना।
2. भू-संबंधों में शोषण की समाप्ति।
3. 'जोतने वाले को जमीन' के लक्ष्य को व्यावहारिक रूप देना।
4. ग्रामीण निर्धनों के भूमि-आधार को विस्तृत कर उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार।
5. कृषि उत्पादकता और उत्पादन में वृद्धि।

6. ग्रामीण निर्धनों के लिए भूमि-आधारित विकास को प्रोत्साहन।

7. स्थानीय संस्थाओं में अधिक समानता।

एक अनुमान के अनुसार देश की कुल कृषि भूमि के 71 प्रतिशत भाग पर 23.8 प्रतिशत लोगों का कब्जा है। जबकि 8.7 करोड़ छोटे और सीमांत किसानों के पास दो-दो हेक्टेयर से भी कम जमीन है। सन् 1991 की जनगणना में देश में 7 करोड़ भूमिहीन खेत मजदूर थे जिनकी तादाद 20 लाख वार्षिक की दर से बढ़ रही है। इस असमानता को दूर करना आज की सबसे बड़ी जरूरत है। यह तभी सम्भव है जबकि राज्य सरकारें पूरी ईमानदारी से भूमि सुधार कानून लागू करें।

केन्द्र सरकार ने भूमि अभिलेखों को तैयार करने, उनका समुचित रखरखाव करने तथा उन्हें अद्यतन बनाने के लिए राज्य तथा संघ सरकारों को 6118 लाख रुपये आबंटित किए हैं। देश के 21 राज्यों में से हर एक में एक-एक जिले को पाइलट-प्रोजेक्ट के रूप में लेकर यह कार्य शुरू किया गया है। 1995-96 में भूमि सुधार संबंधी विभिन्न मदों हेतु 39.49 करोड़ रुपये के परिव्यय का प्रावधान किया गया है।

भूमि सुधार उपायों के सही क्रियान्वयन से ही गांवों के गरीबों की जीवन दशा बदल सकती है और तभी ग्रामीण जीवन में गुणात्मक परिवर्तन भी संभव है। ऐसा नहीं है कि सरकार ने इस दिशा में कुछ नहीं किया बल्कि सरकार ने भूमि सुधार के मामले में अनेक कदम उठाये है। जैसा कि पूर्व में भी कहा जा चुका है इसके लिए न केवल आबंटन किया गया है बल्कि उसे प्राथमिकता सूची में भी रखा गया है।

लक्षित समूहों तक पहुंचने के लिए काफी कुछ किया जाना है। यह सब तभी संभव हो सकता है जब भूमि का जिन भूमिहीनों को कब्जा दिया गया है उन्हें उस भूमि के मालिकाना अधिकार भी दिए जाएं। अनेक राज्यों में मालिकाना अधिकार (भूमि के पट्टे) दिए जाने के बावजूद प्रभावी लोग उनको बेदखल कर देते हैं और वे न केवल जमीन का कब्जा छोड़ने के लिए विवश होते हैं बल्कि उनकी सुरक्षा के लिए भी खतरा पैदा हो जाता है।

भूमिहीनों को दी जाने वाली जमीन पर उनका कब्जा और पट्टा बरकरार है या नहीं इसकी राजस्व विभाग द्वारा समीक्षा की जानी जरूरी है। विभिन्न राज्यों में गरीबों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लोगों की जमीन को हथियाने की अनेक घटनाएं हो चुकी हैं।

जमीन पर पीढ़ियों से काबिज असंख्य आदिवासी आज भी अपनी ही जमीन से बेदखल होकर मारे-मारे फिर रहे हैं। उत्तर प्रदेश की तराई में थारू तथा बोक्सा जनजाति के सैकड़ों परिवार अपनी ही जमीन पर मजदूरी करने के लिए मजबूर हैं। उन्हें आज तक न तो उनकी जमीन वापस मिली है और न किसी तरह की सुरक्षा।

जमीन पर पीढ़ियों से काबिज असंख्य आदिवासी आज अपनी ही जमीन से बेदखल होकर मारे-मारे फिर रहे हैं। उत्तर प्रदेश की तराई में थारू एवं बोक्सा जनजाति के सैकड़ों परिवार अपनी ही जमीन पर मजदूरी करने के लिए मजबूर हैं। उन्हें आज तक न तो उनकी जमीन वापस मिली है और न किसी तरह की सुरक्षा।

बिहार में भी भू-स्वामियों द्वारा गरीब हरिजनों को भूमि के लिए प्रताड़ित किए जाने की घटनाएं नई नहीं हैं। यह सब इसलिए होता है क्योंकि राज्य सरकारें फालतू भूमि बांटने के लक्ष्य को पूरा करने में सावधानियां नहीं बरतती। इससे फालतू भूमि लक्षित लाभार्थियों को कागजों में तो बंट जाती है पर सही मायनों में उन लोगों को नहीं मिलती उल्टे उनकी जान के लिए जोखिम बन जाता है।

इन तमाम विसंगतियों को देखते हुए केन्द्र सरकार ने राज्यों को विभिन्न कार्य बिन्दुओं के अनुसार भूमि सुधार उपायों को कार्यान्वित करने की सलाह दी है। राज्य सरकारों से कहा गया है कि सभी प्रकार के अवभार से मुक्त सारी जमीन इस वर्ष के अंत तक बांट दी जाए। जो जमीन मुकदमेबाजी में फंसी हुई है उसे मुक्त कराया जाए, विशेष रूप से राजस्व न्यायालयों और उच्चतम न्यायालयों में विचाराधीन मुकदमों को भी शीघ्रता से निपटाने के लिए आवश्यक कार्रवाई की जाए ताकि वितरण के लिए अतिरिक्त भूमि उपलब्ध हो सके। मुकदमेबाजी के अंतर्गत 10 लाख 65 हजार एकड़ जमीन कम नहीं होती। इससे कम से कम इतने ही गरीब भूमिहीनों को जमीन उपलब्ध कराई जा सकती है।

ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय ने अनुपयोगी भूमि को

उपयोगी बनाने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाये हैं। देश में करीब 4 लाख 41 हजार एकड़ अनुपयोगी भूमि है उसे सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम, मरुभूमि विकास कार्यक्रम और जल संभरण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत उपयोगी बनाया जा सकता है। यह जरूरी नहीं है कि वह जमीन खेती के लिए ही उपयोगी हो बल्कि उसे विभिन्न प्रकार के वृक्षों के रोपण के योग्य बनाया जा सकता है। इससे गरीबों को आमदनी के नये साधन तो मिलेंगे ही, अनुपयोगी जमीन भी उपयोगी बन जाएगी।

वर्तमान कानून में मौजूद खामियों को दूर करने के लिए हालांकि समय-समय पर अनेक कदम उठाए गए हैं लेकिन कई खामियां आज भी मौजूद हैं।

दलितों, आदिवासियों तथा अन्य ग्रामीण गरीबों को आबंटित जमीन कई राज्यों में दूसरे लोगों को हस्तांतरित कर दी जाती है। जबकि ऐसा न होने देने के लिए कड़े कानून बनाए जाने चाहिए और जिस जमीन पर जबरन कब्जा किया जा चुका है उसे मुक्त कराकर कब्जा वापस दिलाया जाए।

केन्द्र सरकार ने इस बात को गंभीरता से लिया है कि हदबंदी से फाजिल जमीन को लोक-प्रयोजनों के नाम पर आरक्षित रखा गया है। ऐसी 4.57 लाख एकड़ जमीन आरक्षित की गयी है जबकि उसे गांव के गरीबों में बांट दिया जाना चाहिए। भूमि वितरण के कार्यक्रम का लाभार्थियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता है। इसके मूल्यांकन से स्पष्ट होता है कि जिन परिवारों को हदबंदी से फाजिल जमीन मिली है उनकी सामाजिक तथा वित्तीय स्थिति में सुधार हुआ है। वैसे बहुत कुछ जमीन की उर्वरा शक्ति और सिंचाई के साधनों ने भी इस स्थिति को और बेहतर बनाने में मदद की है।

भूमि हदबंदी के बारे में मार्च 1995 तक उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि जमीन संबंधी 15.99 लाख एकड़ जमीन की विवरणी दाखिल की गई और 15.82 लाख एकड़ जमीन संबंधी विवरणी का निपटान किया गया। हदबंदी से फाजिल 74.10 लाख एकड़ जमीन में से 65.42 लाख एकड़ दखल में ली गयी तथा 51.46 लाख एकड़ जमीन ऐसी है जिसका वितरण नहीं किया जा सका है। जाहिर है कि इस जमीन को भी बांटा जा सकता है, पर यह तभी संभव है जब राज्य सरकारें ईमानदारी से इस दिशा में कार्य करें।

सितंबर 95 में हुए आर्थिक संपादकों के सम्मेलन में ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्री डा० जगन्नाथ मिश्र ने भूमि सुधार के बारे में उठाये गये कदमों और उनके कार्यान्वयन की सफलताओं और खामियों का भी उल्लेख किया। उन्होंने इस संबंध में पंचायती राज संस्थाओं की भूमि सुधार संबंधी उपायों को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि ग्राम पंचायतों को ये अधिकार मिलने चाहिए कि वे क्षेत्रीय स्तर पर राजस्व-प्रशासन तंत्र से भूमि सुधार कार्यों के कार्यान्वयन संबंधी सभी सूचनाओं की मांग कर सकें और प्रशासन तंत्र के लिए मांगी गई सूचना पंचायतों को उपलब्ध कराना अनिवार्य किया जाए। ग्राम पंचायतों को इस काम में भी लगाया जाए कि वह हदबंदी से फाजिल भूमि, जिसमें छिपाकर रखी गयी या बेनामी जमीन भी शामिल है, उसका पता लगाएं, काश्तकारों-बटाईदारों के नाम दर्ज करें तथा काश्तकारों को कानूनी हक दें।

डा० मिश्र ने ग्राम पंचायत को भू-राजस्व तथा जल कर की वसूली की भी जिम्मेदारी देने पर बल दिया। उन्होंने कहा कि जिन क्षेत्रों में नया बंदोबस्त कार्यक्रम नहीं चलाया गया है उनमें ग्राम

प्रखंड एवं जिला स्तर की पंचायती राज संस्थाओं को राजस्व-प्रशासन के पर्यवेक्षण की शक्तियां और भू-अभिलेखों को देखने का अधिकार भी मिले। पंचायती राज संस्थाओं को भूमि सुधार संबंधी कार्यक्रमों, चकबंदी, भूमि विकास, भू-संरक्षण और संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में विहित किये गये अन्य भूमि संबंधी कार्यक्रमों से जोड़ा जाना चाहिए।

पंचायतें यह पता लगाने में मदद कर सकती हैं कि हदबंदी से फाजिल जमीन किस-किस भू-स्वामी के कब्जे में है।

प्रखंड तथा जिला स्तर की पंचायती राज संस्थाओं को राजस्व-प्रशासन के पर्यवेक्षण की शक्तियां और भू-अभिलेखों को देखने का अधिकार भी मिले। पंचायती राज संस्थाओं को भूमि सुधार संबंधी कार्यक्रमों, चकबंदी, भूमि विकास, भू-संरक्षण और संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में विहित किये गये अन्य भूमि संबंधी कार्यक्रमों से जोड़ा जाना चाहिए।

नवम्बर 1994 तक देश में लगभग 1528.76 लाख एकड़ भूमि की चकबंदी की गयी है। इसी अवधि के दौरान अधिकतम सीमा से फालतू 51.03 एकड़ भूमि का वितरण किया गया। महाराष्ट्र उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा राज्यों में भूमि जोतों के चकबंद

कार्यक्रम को अच्छी सफलता मिली है। लेकिन केन्द्र सरकार इस बात से चिन्तित है कि काश्तकारों को मालिकाना अधिकार देने या उन्हें और बटाईदारों को स्वेच्छा से बेदखली से संरक्षण प्रदान करने तथा उन्हें उत्पाद का कानूनी हिस्सा तथा काश्तकारों हेतु अन्य सुधार कार्य सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकारें पर्याप्त मदद नहीं कर रही हैं। विभिन्न मामलों में राज्य सरकारें अपेक्षित जानकारी भी समय पर नहीं देती हैं। 30 नवंबर 1994 की स्थिति के अनुसार 13 राज्यों में इस मामले में 153.32 लाख एकड़ जमीन अतंर्ग्रस्त थी जिससे जुड़े काश्तकार परिवारों की तादाद 112.13 लाख थी।

भूमि सुधार उपायों को लागू करने में राज्यों में जो विषमताएं हैं, उन्हें दूर करना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है तभी सामाजिक न्याय और सामाजिक समता की जन-आकांक्षाओं को पूरा किया जा सकता है।

संक्षिप्त परिचय : खुमाड़ सल्ट (अल्मोड़ा) में जन्म। सन् 1965 से नियमित लेखन। दो कविता संग्रह, तीन कहानी संग्रह, तीन उपन्यास और दो यात्रा-संस्मरण प्रकाशित। संपादन : जवाहर लाल नेहरू : बहु आयामी व्यक्तित्व, पंचायती राज व्यवस्था, उत्तरायणी (उत्तराखंड के कथाकारों की कहानियां), महात्मा गांधी की कुमाऊं यात्रा, नव साक्षरों और बच्चों के लिए अनेक पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति : म. प्र. के समाचारपत्र समूह 'देशबंधु' के दिल्ली ब्यूरो में कार्यरत।

(पृष्ट 48 का शेष)

भूमि सुधार : ग्रामीण विकास एवं....

वहां छोटे सीमान्त किसान अपनी भूमि को पट्टे पर देकर गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार प्राप्त कर अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

कृषि क्षेत्र में परंपरागत कृषि कार्यों को सम्पन्न करने एवं मौसमी मांग के कारण महिलाओं की सहभागिता बढ़ी है लेकिन यह पुरुषों की अपेक्षा कम ही है। महिला अपनी आय का बड़ा भाग अपने परिवार की बेहतरी पर खर्च करके अपने परिवार की उन्नति कर सकती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि सम्पत्ति अधिकारों को महिलाओं के पक्ष में परिवर्तित किया जाये, महिला कृषकों को शिक्षित व प्रशिक्षित किया जाये तथा तकनीकी का रूपान्तरण महिलाओं के अनुरूप किया जाये।

भूमि सुधारों का प्रश्न आर्थिक है तथा राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित है। जब तक भूमि सुधार कार्यक्रम ग्रामीण जीवन की तह तक नहीं पहुंचेंगे, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का आधार एवं सुपर स्ट्रक्चर दोनों ही कमजोर रहेंगे तथा भारत 30 करोड़ अर्धभूखे ग्रामीण बेरोजगारों, 900 रुपये वार्षिक प्रतिव्यक्ति आय, 1.5 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति भू-जोत, 55 प्रतिशत साक्षरता तथा ग्रामीण सामाजिक अधःसंरचना विहीन 21वीं शताब्दी में प्रविष्ट होने वाला दीन राष्ट्र होगा।

सम्प्रति दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट के अर्थशास्त्र विभाग में अध्यक्ष के पद पर कार्यरत। पच्चीस वर्षों का अध्यापन अनुभव। विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओं में अनेक लेख प्रकाशित। प्रकाशित पुस्तक : 'भारत में उदारवादी सम्प्रदाय'। विभिन्न आर्थिक व सामाजिक समस्याओं पर लेखन में रुचि।

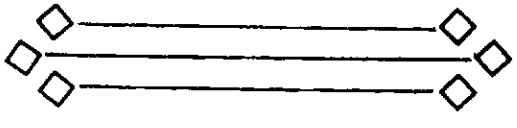

आर्थिक समता के संवाहक : भूमि सुधार

जगमोहन माथुर

भूमि सुधार का काम अत्यंत धीमी गति से हुआ है। लेखक ने इसमें कई अड़चनों का जिक्र करते हुए बताया है कि निहित स्वार्थ इन कानूनों से बचने के कई रास्ते निकाल लेते हैं। भूमि सीमा के कानूनों से संबंधित हजारों मुकदमे अदालतों के विचाराधीन हैं जिनसे लाखों एकड़ भूमि के वितरण का काम अटक गया है। 81वां संविधान संशोधन विधेयक पारित करके इन कानूनों को संविधान की नौवीं अनुसूची में डाल दिया गया है जिससे अब इन्हें अदालतों में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। पट्टेदारों को बेदखली से सुरक्षा प्रदान करने और भू रिकार्डों के कम्प्यूटरीकरण करने के उपाय किए जा रहे हैं। लेखक के मतानुसार यदि केन्द्र और राज्य सरकारें कृत संकल्प होकर काम करें तो अच्छे परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

भारत में भूमि सुधार केवल आर्थिक विकास ही नहीं बल्कि सामाजिक समता के भी साधन रहे हैं। कृषि प्रधान देश होने के नाते, भूमि का हमारे सभी विकास कार्यक्रमों में मुख्य स्थान है। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में जब हमारा मुख्य नारा अंग्रेजों से भारत की मुक्ति था, तब हम यह भी नारा लगाते थे कि "भूमि किसकी - जोते उसकी" पर दुर्भाग्य कि हम आजादी के 48 वर्ष बाद भी उस नारे को पूर्णतः चरितार्थ नहीं कर पाये। हमें आजादी के समय भू-स्वामित्व की जो व्यवस्था विरासत में मिली वह सामन्तवादी थी। वह कृषि के विकास में तो बाधक थी ही, साथ ही समाज में फैली विषमता के लिए भी उत्तरदायी थी।

सारे देश में भूमि के सम्बन्ध में एक जैसी व्यवस्था नहीं थी। इस सम्बन्ध में कई तरीके प्रचलित थे। ब्रिटिश भारत में एक तरह का व रजवाड़ों में भिन्न-भिन्न प्रकार के इन सबमें प्रमुख थी : जमींदारी प्रथा। ब्रिटिश शासन के अंतर्गत जितनी कृषि योग्य भूमि थी उसका कोई 40 प्रतिशत हिस्सा जमींदारी के अधीन था। इसके अंतर्गत स्पष्टतः दो प्रकार के वर्ग पनपे। एक भू-स्वामी, दूसरा काश्तकार। जमीन का मालिक जमींदार होता था। काश्तकार खेती करता और जमींदार को लगान देता। प्रायः 50 प्रतिशत या उससे अधिक उपज काश्तकार जमींदार को देता था। जमींदार, उसका एक अंश सरकार को लगान के रूप में देता, शेष अपने पास रखता। अतः सरकार को लगान चुकाने की जिम्मेदारी जमींदार की होती थी और जमींदार काश्तकार से लगान वसूलता था। यह प्रथा अंग्रेजी शासन के अनुकूल बैठती थी। उन्हें जमींदार से लगान लेने से मतलब था। उन्हें इस बात से कोई सरोकार न था कि काश्तकार की हालत कैसी है या उसे जमींदार को कितना लगान देना चाहिए। हर इलाके के लिए लगान की मात्रा अलग-अलग थी। इस प्रकार जमींदार, सरकार और काश्तकार के मध्य बिचौलिये के रूप में काम करते थे। वे सरकार को लगान देने के लिए 'स्थायी' या 20-40 वर्ष के लिए 'अस्थायी' करार कर लेते थे। जमींदार बहुधा काश्तकारों से लगान वसूलने में बड़ी सख्ती से, कभी-कभी बेरहमी से काम लेते थे। इसलिए वे किसानों के शोषक के रूप में जाने जाने लगे। आजादी के साथ जमींदारी उन्मूलन के लिए मांग होने लगी और अन्ततः यह प्रथा कानूनन समाप्त कर दी गई।

देश के महाराष्ट्र, गुजरात, असम, तमिलनाडु और मध्य प्रदेश में जमीन की रयैतवाड़ी व्यवस्था प्रचलित थी। इसके अंतर्गत काश्तकार को सरकार से जमीन मिलती थी और वह सरकार को ही सीधे लगान देता था जब तक काश्तकार लगान देता रहे उसे बेदखल नहीं किया जा सकता था। इस व्यवस्था में काश्तकार खेती करता पर भूमि का स्वामित्व सरकार के पास होता था।

देश के कुछ भागों में एक और पद्धति प्रचलित थी जिसे महलवाड़ी प्रथा के नाम से जाना जाता है। इसके अंतर्गत जमीन पर सम्पूर्ण ग्राम का स्वामित्व होता था। गांव के सभी निवासी

युक्त रूप से और व्यक्तिगत रूप से भी सरकार को लगान चुकाने लिए जिम्मेदार होते थे। यह प्रथा पंजाब, उत्तर प्रदेश व मध्य देश के कुछ इलाकों में प्रचलित थी।

देश के अधिकांश हिस्सों में काश्तकार और सरकार के मध्य चौलियों का बोलबाला था। कहीं ये जमींदार थे और कहीं इन्हें गीरदार, तालुकदार या इनामदार कहा जाता था। ये सभी लोग रीब काश्तकारों के शोषणकर्ता थे। अतः यह उचित ही था कि रकार ने शोषण के इस स्वरूप को समाप्त करने के पहले कदम रूप में, जमींदारी उन्मूलन के लिए त्वरित कदम उठाये। भूमि विषय राज्यों का था और उन्हें ही इस सम्बन्ध में कानून बनाने । फिर भी 1954 तक देश भर में जमींदारी अथवा उसी तरह अन्य प्रथाओं को समाप्त करने के लिए आवश्यक कानून बना ए गए। बिचौलियों की समाप्ति का सुखद परिणाम यह निकला कोई दो करोड़ काश्तकार सरकार के सीधे सम्पर्क में आ गये। परिवर्तन का एक अन्य लाभ यह हुआ कि जमींदार जैसे चौलियों के पास परती या बेकार पड़ी जमीन भी सरकार को ल गई। इस तरह से कोई 70 लाख हेक्टेयर भूमि मिली, उसे ाभग 60 लाख कृषि मजदूरों अथवा छोटे किसानों में वितरित दिया गया।

जमींदारी प्रथा का उन्मूलन एक क्रांतिकारी कदम था। इससे षक व शोषित वर्ग खत्म किए गए। ऐसे निकम्मे लोगों का समाप्त हो गया जो बिना कुछ मेहनत किए एशो-आराम की न्दगी बिताते थे और जिन्दगी भर जमीन पर खून-पसीना एक के फसल उगाने वाले किसान अभावों में ही जीवन-बसर करते इस प्रथा के मिट जाने से देश में सामाजिक विषमता को कम ने की दिशा में सुदृढ़ कदम उठा।

भारत की मुख्य समस्या यही रही है कि मेहनतकश किसान ीन का असली मालिक नहीं बना। अगर थोड़ी सी जमीन उसे नी भी तो वह गुजारे लायक भी नहीं थी। 1985-86 में उपलब्ध कड़ों के अनुसार देश में 58 प्रतिशत जोतों का आकार एक ड़ से भी कम है। इस प्रकार की जोतों का क्षेत्रफल 13 प्रतिशत जबकि 10 या उससे अधिक एकड़ के आकार वाली जोतें कुल तों का केवल दो प्रतिशत हैं। पर इस तरह की जोतों के अंतर्गत प्रतिशत भूमि है। इस तरह जमीन के मामले में देश में घोर मता है परिणामस्वरूप आमदनी और सामाजिक स्थिति में भी मानता उत्पन्न हुई। अतः भूमि में विषमता कम करने के लिए कई कदम आवश्यक थे।

उधर, सरकारी तौर पर उपलब्ध आंकड़े भी विषमता की गंभीरता ही दर्शाते हैं। ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय की 1994-95 की रिपोर्ट के अनुसार, देश में उपलब्ध कुल कृषि भूमि का 71 प्रतिशत भाग अब भी 23.8 प्रतिशत भू-स्वामियों के पास है जबकि 29 प्रतिशत भाग पर छोटे किसान खेती करते हैं जिनकी

भारत की मुख्य समस्या यही रही है कि मेहनतकश किसान जमीन का असली मालिक नहीं बना। अगर थोड़ी सी जमीन उसे मिली भी तो वह गुजारे के लायक भी नहीं थी। 1985-86 में उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार देश में 58 प्रतिशत जोतों का आकार एक एकड़ से भी कम है।

संख्या कोई नौ करोड़ दस लाख है। इनमें से भी 8 करोड़ 73 लाख ऐसे किसान हैं जिनके पास दो हेक्टेयर से कम जमीन है। 1991 की जनगणना के अनुसार देश में सात करोड़ भूमि-हीन कृषि मजदूर हैं। इनमें प्रतिवर्ष 20 लाख भूमि-हीन कृषि मजदूरों की वृद्धि होती जा रही है।

अधिकतम सीमा कानून

इन सब परिस्थितियों को ध्यान में रखकर भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के कानूनों का महत्व समझा जा सकता है। मूल उद्देश्य उन लोगों से जमीन लेकर जिनके पास अधिक जमीन है उनको उपलब्ध कराना है जिनके पास जमीन नहीं है पर कृषि ही जिनकी मुख्य आजीविका है। 1950 व 1960 के दशक में इस तरह के कानून बना दिये गये पर इन पर अमल कई चरणों में हुआ। सर्वप्रथम राज्य सरकार ने कानून में निर्धारित सीमा से अधिक भूमि रखने वालों की जमीन को अतिरिक्त घोषित किया। फिर उस जमीन को सरकार ने अपने कब्जे में लिया है। तीसरे चरण में वह जमीन भूमिहीन किसानों में वितरित की जाती है। हर चरण में अड़चनें आती हैं। पहली समस्या तो यही थी कि भूमि की अधिकतम सीमा की मूल इकाई परिवार माना जाए या व्यक्ति। पहले के कानूनों में 'इकाई' व्यक्ति को माना गया जिसके अंतर्गत एक 'परिवार' अपने पास काफी अधिक भूमि रखने में सफल हो जाता था। उदाहरणस्वरूप पिछले कानून के अनुसार आन्ध्र प्रदेश में प्रति व्यक्ति सीमा के आधार पर, पांच व्यक्तियों का एक परिवार 1620 एकड़ भूमि अपने पास रख सकता था। अतः बहुत कम भूमि अतिरिक्त होने से उद्देश्य विफल हो गया। नई नीति के

अनुसार 'परिवार' को भूमि की अधिकतम सीमा के लिए मूल इकाई माना गया। परिवार की परिभाषा में पति-पत्नी व बच्चे माने गये। पांच से अधिक संख्या होने पर प्रत्येक अतिरिक्त सदस्य के नाम और भूमि रख सकने का प्रावधान किया गया। इस तरीके से काफी भूमि उपलब्ध हुई।

पर और भी अड़चने थीं– एक यह कि न्यूनतम सीमा व अधिकतम सीमा में बहुत अन्तर था। राजस्थान में भूमि की अधिकतम सीमा 22 एकड़ से 366 एकड़ तक के बीच रखी गई। पंजाब व हरियाणा में 30 एकड़ से 80 एकड़ तक। नई नीति के अनुसार इस अन्तर को काफी कम किया गया। साथ ही समस्या यह भी है कि सिंचित व असिंचित जमीन के हिसाब से ही सीमा निर्धारण होना उचित था। भूमि की उत्पादकता का भी ख्याल रखना आवश्यक था। जिन इलाकों में पानी की निश्चित सप्लाई उपलब्ध है और जहां दो फसलें ली जा सकती हैं, वहां 10 से 18 एकड़ तक अधिक सीमा निश्चित की गई, जबकि उन इलाकों में जहां एक ही फसल ली जा सकती है, सीमा 27 एकड़ तय की गई। बालुई या पहाड़ी जमीन में अधिकतम सीमा 54 एकड़ तक रखी गई। इस प्रकार जमीन की किस्म के अलावा एक और अड़चन यह थी कि भिन्न-भिन्न राज्यों में कई अलग-अलग मामलों में भूमि की अधिकतम सीमा में छूट दे दी गई। उदाहरण के तौर पर उत्तरप्रदेश में ऐसी 20 परिस्थितियां बताई गईं, जबकि भूमि की अधिकतम सीमा का कानून लागू नहीं होता। सब दिक्कतों को देखकर 1972 में केंद्र ने दिशा-निर्देश जारी किये जिनको ध्यान में रखकर राज्यों ने भूमि की अधिकतम सीमा वाले कानूनों को संशोधित कर नया रूप दिया।

पहले कानूनों और संशोधित कानूनों दोनों को मिलाकर देखें तो देश में 31 मार्च 1980 तक 69.13 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गई। इसमें से सरकार 48.50 लाख एकड़ जमीन का कब्जा लेने में सफल रही पर 35.53 लाख एकड़ भूमि का ही वितरण किया जा सका। पांच वर्ष बाद, 31 मार्च 85 तक, 72.07 एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गई, सरकार 56.98 लाख एकड़ भूमि का कब्जा ले सकी और 42.64 एकड़ भूमि का वितरण किया गया। 31 मार्च 1990 को जो स्थिति रही उसके अनुसार 72.25 एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित हुई, 62.12 एकड़ का कब्जा लिया गया और 46.47 एकड़ भूमि वितरित की गई।

इस वर्ष जुलाई में उपलब्ध जानकारी के अनुसार, भूमि की अधिकतम सीमा से सम्बन्धित कानूनों के अनुसार देश में 74.10 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की जा चुकी है और इसमें से 65.42 लाख एकड़ यानी 89 प्रतिशत का कब्जा सरकार द्वारा लिया जा चुका है। इसमें से 51.46 लाख एकड़ भूमि गांवों के गरीब लोगों में वितरित की जा चुकी है। फिर भी, भूमि अतिरिक्त घोषित किये जाने और गरीब किसानों में बांटने की रफ्तार काफी धीमी है। इसके कई कारण हैं। निहित स्वार्थ कानूनों से बचने के उपाय तलाशते रहते हैं। हाल ही में बिहार के बारे में जो तथ्य अखबारों में छपे हैं उनसे स्पष्ट है कि बड़े जमींदार अभी भी काफी जमीन दबाये बैठे हैं। 1960 में जब यहां कांग्रेस सत्तारूढ़ थी, एक दस्तावेज से पता चला कि भूमि सम्बन्धी कानून के बावजूद ऐसे

भूमि सुधार के अंतर्गत यह भी आवश्यक है कि किसानों द्वारा मालिकों को दिये जाने वाले लगान की मात्रा निश्चित कर दी जाए ताकि मालिक मनमानी न कर सके। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर राज्य सरकारों ने कानून बनाये हैं।

कई जमींदार थे जिनके पास सीमा से काफी जमीन थी। जुलाई 1983 में ऐसे जमींदारों की संख्या 1400 थी। इनमें से 10 तो ऐसे थे जिनके पास कुल मिलाकर 1.61 लाख एकड़ भूमि थी। बाद में राज्य सरकार ने एक और सूची जारी की जिसमें ऐसे 100 जमींदारों के नाम थे जिन्होंने 500 एकड़ या अधिक जमीन दबा रखी थी। एक अंग्रेजी पाक्षिक ने राज्य के 12 जमींदारों के नाम छापे हैं जिनके पास 1200 एकड़ या उससे अधिक जमीन है। इस सूची में सबसे ऊपर एक परिवार का नाम है जिस अकेले के पास 37 हजार एकड़ जमीन है। राज्य के भूमि सुधार आयुक्त के अनुसार 57,000 एकड़ भूमि धार्मिक ट्रस्टों ने दबा रखी है।

बारीकी से देखा जाए तो अन्य राज्यों में भी ऐसे ही कई उदाहरण मिलेंगे। राज्य सरकारें यदि निष्ठा से खोजबीन करें तो काफी जमीन और उपलब्ध हो सकती है।

कानूनी अड़चनें

जिस तरह पहले जमींदारी उन्मूलन को बड़े-बड़े सामन्तों और जमींदारों ने अदालत में चुनौती दी थी, वही हश्र भूमि की सीमा बांधने वाले कानूनों का हुआ। भूमि सीमा के कानूनों से सम्बन्धी अनेक मामले राजस्व अदालतों, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में विचाराधीन हैं। मार्च 1995 में उपलब्ध जानकारी के अनुसार राजस्व अदालतों में कोई 14,000, उच्च न्यायालयों

में 7,700 तथा उच्चतम न्यायालय में 950 मुकदमे विचाराधीन हैं। इनकी कुल संख्या 22,820 है और इनके कारण 10 लाख 64 हजार एकड़ भूमि के वितरण का काम अटक गया है। सर्वाधिक मुकदमे बिहार राज्य में 5,700 हैं और उसके बाद आन्ध्र प्रदेश के 3,700 मुकदमे हैं।

केन्द्र ने जुलाई, 1995 में सभी राज्यों को पत्र लिखकर आग्रह किया कि मुकदमों के शीघ्र निपटारे के लिए वे संविधान की धारा 323-बी के अधीन भूमि न्यायाधिकरण (ट्राइबुनल) स्थापित करें। सामान्य न्याय प्रक्रिया के अंतर्गत मुकदमों को निपटाने में वर्षों लग जाएंगे और भूमिहीनों में भूमि वितरण का काम अवरुद्ध रहेगा।

केन्द्र ने कहा है कि जब तक राज्यों में ट्राइबुनलों का गठन हो, सम्बद्ध उच्च न्यायालयों से ऐसी विशेष पीठें बनाने का अनुरोध किया जाए जो भूमि सीमा सम्बन्धी मुकदमों की सुनवाई करें। इस सब का उद्देश्य यही है कि अतिरिक्त भूमि जल्दी से जल्दी गरीब किसानों में बंट सके।

भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों को मुकदमेबाजी के झंझटों से बचाने के लिए एक और महत्वपूर्ण कदम यह उठाया गया है, संविधान में संशोधन करके (81वां संविधान संशोधन विधेयक) भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नवीं अनुसूची में डाल दिया गया है ताकि इस प्रकार के कानूनों की वैधता को निहित स्वार्थों द्वारा चुनौती न दी जा सके। 1995 तक राज्यों के 27 कानूनों को नौंवी अनुसूची में रखा जा चुका है। पंचायती राज संस्थाओं के सशक्त होने से अपेक्षा की जा सकती है कि वे भूमि सुधार कानूनों को प्रभावशाली ढंग से लागू करने में सहायक होंगी। और आवश्यक निगरानी में भी रखेंगी।

काश्तकारों को मालिकाना हक

किसानों के लिए एक और जरूरत जमीन पर मालिकाना हक दिये जाने की रही है। कई राज्य सरकारों ने पट्टेदारी के अंतर्गत खेती करने वाले काश्तकारों को जमीन पर मालिकाना हक देने के कानून बना दिये हैं। ये राज्य हैं महाराष्ट्र, गुजरात, केरल, कर्नाटक, असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उड़ीसा। कुछ राज्यों में पट्टेदारी के अनुसार खेती करने वर्ष वालों को यह अधिकार दिया गया है कि वे चाहें तो यह जमीन खरीद लें। इन उपायों के बाद महाराष्ट्र, केरल, हिमाचल जैसे कुछ राज्यों में पट्टे पर खेती की प्रथा लगभग खत्म हो गई है।

भूमि सुधार के अंतर्गत यह भी आवश्यक है कि किसानों द्वारा मालिकों को दिये जाने वाले लगान की मात्रा निश्चित कर दी जाए ताकि मालिक मनमानी न कर सके। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर राज्य सरकारों ने कानून बनाये हैं। पंजाब व हरियाणा में कुल उपज का एक तिहाई लगान के रूप में लिया जा सकता है जबकि आन्ध्र प्रदेश में यह मात्रा कुल उपज का 25 से 30 प्रतिशत है। राज्यों में अलग-अलग दरें निश्चित की गई हैं। पट्टेदार किसानों

मुख्यतः महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा में चकबंदी का अच्छा काम हुआ है। बिहार, उड़ीसा और हिमाचल के काफी इलाकों में चकबंदी जोरों से चली। जमीन के हर टुकड़े से मोह रखने वाले परंपरावादी किसानों को चकबंदी के लिए राजी करना हंसी खेल नहीं था। नवम्बर 1994 तक 1,528.76 लाख एकड़ भूमि की चकबंदी हो गई थी। वर्तमान वित्त वर्ष के पिछले आठ महीनों में और 27.23 लाख एकड़ भूमि में चकबंदी की गई।

को बेदखली से सुरक्षा दिलाने का भी प्रबन्ध किया गया है। किसान को तभी बेदखल किया जा सकता है, यदि वह समय पर लगान न दे, भूमि को नुकसान पहुंचाये या जमीन का खेती के अलावा किसी और काम में उपयोग करने लगे या वह जमीन किसी और को दे दे। देश के अधिकांश क्षेत्रों में काश्तकारों को मालिकाना हक देने के लिए अथवा भूस्वामियों को उचित मुआवज़े के भुगतान के आधार पर काश्तकारों को स्वामित्व प्रदान कराने के सम्बन्ध में कानूनी प्रावधान किये गये हैं। गतवर्ष 11 करोड़ 21 लाख काश्तकारों को 153.32 लाख एकड़ भूमि के मालिकाना हक दिलाये गये। लेकिन इस विषय पर चालू वर्ष में कोई प्रगति होने की सूचना उपलब्ध नहीं है।

चालू वर्ष में सरकार के पास उपलब्ध 2,119 एकड़ परती भूमि भी गांवों के गरीबों में बांटी गई। विनोबा भावे के नेतृत्व में चले भूदान आन्दोलन के अंतर्गत कोई 1,300 एकड़ भूमि भी गरीब किसानों को दी गई पर यह रफ्तार बहुत ही निराशाजनक है सरकार को गंभीरता से इसका आत्मालोचन करना होगा।

आदिवासियों की जो जमीन गैर-कानूनी रूप से ले ली गई थी उसे लौटाने के सम्बन्ध में भी कोई संतोषप्रद सूचना उपलब्ध नहीं है। पर सरकार का घोषित लक्ष्य है कि आदिवासियों को जमीन

लौटा दी जाए। उन्हें व अनुसूचित जातियों को भूमि वितरण में प्राथमिकता भी दी जाती है।

चकबन्दी

हमारी व्यवस्था की एक बड़ी कमजोरी है छोटी-छोटी और अलग-अलग जगह छितरी जोतें। 1985-86 के एक आकलन के अनुसार देशभर की कुल 977 लाख जोतों में से 746 लाख जोतें दो एकड़ से कम आकार की हैं। इन 746 लाख जोतों में से भी 567 लाख जोतों का आकार एक एकड़ या उससे कम है। इस तरह की जोतों में खेती कुशलतापूर्वक नहीं हो सकती और ये जोतें भी अगर जगह-जगह बिखरी हों तो 'करेला नीम चढ़ा' हो जाता है। छोटी व बिखरी जोतें किसानों के लिए निरन्तर सिरदर्द का कारण रही हैं। ऐसी जोतों में खेती पर खर्चा ज्यादा आता है, मेढ़ या सीमा बनाने में काफी भूमि बर्बाद हो जाती है। ट्रैक्टर या मशीनों का प्रयोग नहीं हो सकता। व्यक्तिगत देखरेख अच्छी तरह नहीं हो सकती। अतः सरकार ने चकबन्दी का कार्यक्रम हाथ में लिया। देश के 22 प्रमुख राज्यों में से 15 में जोतों की चकबन्दी के लिए कानूनी प्रावधान कर दिये गये हैं। मुख्यतः महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा में चकबंदी का अच्छा काम हुआ है। बिहार, उड़ीसा और हिमाचल के काफी इलाकों में चकबन्दी जोरों से चली। जमीन के हर टुकड़े से मोह रखने वाले परम्परावादी किसानों को चकबन्दी के लिए राजी करना हंसी खेल नहीं था। नवम्बर 1994 तक 1,528.76 लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी हो गई थी। वर्तमान वित्त वर्ष के पिछले आठ महीनों में और 27.23 लाख एकड़ भूमि में चकबन्दी की गई।

चकबन्दी निश्चित रूप से कृषि उत्पादन बढ़ाने में सहायक हुई। चकबन्दी होने से भूमि पर आधुनिक मशीनों का उपयोग संभव हुआ है और कृषि की लागत में कमी आई है।

रिकार्ड के लिए कम्प्यूटर

किसानों के साथ एक बड़ी दिक्कत रही है कि अधिकांश राज्यों में भूमि का रिकार्ड रखने का तरीका घिसा-पिटा है। पटवारियों या राजस्व कर्मचारियों के पास किसानों की भूमि का सही रिकार्ड नहीं होता अथवा होता है तो वह आसानी से उपलब्ध नहीं होता। यह रिकार्ड पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। कुछ राज्यों में किसानों को पास बुक देने की व्यवस्था की गई पर वह भी संतोषजनक नहीं। इसमें हेराफेरी की गुंजाइश रहती है। राजस्व कर्मचारी रिश्वत लेकर भूमि के रिकार्ड में हेराफेरी करते रहे हैं। इन सब परेशानियों को ध्यान में रखकर केन्द्रीय सरकार द्वारा वर्ष 1988-89 से भूमि सम्बन्धी रिकार्ड रखने, उसे नवीनतम करने में आधुनिक टेक्नोलाजी व यंत्रों का प्रयोग करने का कार्यक्रम शुरू किया है। आठवीं योजना में भूमि सम्बन्धी अध्ययन और कम्प्यूटरी रिकार्ड पद्धति के लिए 65 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है। इसमें से वर्ष 1993-94 के दौरान 8.76 करोड़ रुपये 39 अतिरिक्त परियोजनाएं शुरू करने के लिए दिये गये हैं। चालू वित्त वर्ष में शुरू की कई परियोजनाओं को मिलाकर देखें तो अब तक देश में 102 जिलों में कम्प्यूटर रिकार्ड पद्धति पर काम शुरू कर दिया गया है।

फिर भी सदियों से वंचित गरीब किसानों में से कुछ को भूमि मिली है और अधिक लोगों को मिलने की संभावना बनी है। इससे पूरी तरह न सही, आंशिक रूप से सामाजिक विषमता कम हुई है। सामाजिक न्याय की कुछ पूर्ति हुई है। किसानों की गरीबी दूर करने में मदद मिली है।

पर यह काम बहुत बड़ा है। इस देश के सभी जिलों में शुरू करने और पूरा करने में काफी समय लगेगा और काफी पैसा लगेगा। अतः केंद्रीय सरकार के सहयोग से ही इसे पूरा कराया जा सकता है पर भू-रिकार्ड के कम्प्यूटरीकरण कर देने से एक बहुत जरूरी काम पूरा हो जाएगा और राजस्व कर्मचारियों द्वारा घपलेबाजी की गुंजाइश काफी घट जाएगी। इस योजना का उद्देश्य यह है कि भूमि धारक भूमि सम्बन्धी अपने रिकार्ड में आसानी से नई प्रविष्टि करा सकें और अपने भूमि रिकार्ड या अभिलेखों की प्रतियां कम दाम पर आसानी से ले सकें।

राजस्व प्रशासन को चुस्त दुरुस्त करने के उपाय सुझाने के लिए बिहार के भूतपूर्व मुख्य सचिव श्री पी. पी. अप्पू की अध्यक्षता में सात सदस्यों की एक समिति बनाई गई है। इसकी सिफारिशें प्राप्त होने पर और उपाय किये जाएंगे।

इन सब बातों पर विचार करके देखें तो निष्कर्ष यह निकलता है कि भूमि सुधार के बारे में केंद्र व राज्य सरकारों के इरादे नेक हैं, उन्होंने आवश्यक कानून बनाने में भी तत्परता दिखाई है पर अमल में अड़चनें अनेक हैं। विशेषकर भूमि की सीमाबंदी कानून से बच निकलने के रास्ते बड़े-बड़े जमींदारों ने निकाल लिये हैं और

(शेष पृष्ठ 112 पर)

भारत में ग्रामीण विकास के लिए भूमि सुधार का महत्व

प्रो. टी. हक

भूमि सुधार आर्थिक उदारीकरण से किस प्रकार प्रभावित हो सकते हैं, इसका विश्लेषण करते हुए लेखक ने बताया है कि पूंजीवादी कृषि लाखों सीमांत और छोटे किसानों के लिए हानिप्रद होगी। पिछले चार दशकों में अनेक भूमि सुधारों के बावजूद भूमि वितरण की स्थिति में ज्यादा सुधार नहीं हुआ है। लेखक का कहना है कि हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में आर्थिक उदारीकरण के दौर में भूमि के समान वितरण के प्रयासों में बाधा आएगी। लेखक के अनुसार लाखों सीमांत और छोटे किसानों का अब कृषि से निर्वाह संभव नहीं है इसलिए उन्हें गैर कृषि कार्यों में रुचि लेनी चाहिए।

पिछले पांच दशकों में कृषि अर्थव्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन आये हैं। सभी बड़े जमींदारों और बिचौलियों को हटाया गया है और बहुत से काशतकारों को मालिकाना अधिकार दिये गये हैं। फिर भी अभी तक कुछ भू-पतियों के पास अत्यधिक जोतें हैं। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का भाग जो कि 1950 के शुरू में 60 प्रतिशत था, 1994 में कम होकर 28 प्रतिशत रह गया है। परन्तु कुल श्रमिकों की संख्या में कृषि श्रमिकों का अनुपात 1950 में 72 प्रतिशत से थोड़ा सा कम होकर 1992 में 65 प्रतिशत हो गया है। आजादी के बाद से, भूमि की जोतों के समान रूप से वितरण के लिये बहुत से भूमि सुधार किये गये हैं। परन्तु इस दिशा में सफलता सीमित रूप में ही मिल पायी है। छोटे और सीमान्त किसान एवं ग्रामीण जनसंख्या के अधिकांश भूमिहीन श्रमिकों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, अब आधुनिक आर्थिक सुधारों के युग में भूमि सुधार की भूमिका में लोगों को संदेह होने लगा है। अधिकतर यह तर्क दिया जाता है कि भूमि सुधार कानून पूंजीवादी एवं निगमित खेती के विकास को रोकते हैं जोकि विकास के लिये आवश्यक है। आर्थिक उदारीकरण के समर्थकों के अनुसार सामन्तवादी कृषि व्यवस्था प्रायः समाप्त हो गई है। परंतु समतावादी एवं सहकारी कृषि अर्थव्यवस्था भी विकसित नहीं हो सकी है और न ही पूंजीवादी कृषि व्यवस्था का विकास हो पाया।

उपरोक्त तथ्यों के सन्दर्भ में हमारे मस्तिष्क में कुछ प्रश्न उभरते हैं। सबसे पहले मुख्य प्रश्न यह है कि भविष्य के लिये हम किस प्रकार के कृषि ढांचे की अपेक्षा रखते हैं? क्या हम अब भी समझते हैं कि भूमि सुधारों द्वारा भूमि की जोतों के एकीकरण को कम करने की आवश्यकता है? यदि ऐसा है तो भविष्य में भूमि के पुनर्वितरण के लिए सुधारों की क्या संभावना है एवं हम इस उद्देश्य को कैसे प्राप्त कर सकेंगे जबकि अभी तक हम विफल रहे हैं? क्या हम वास्तव में ऐसा सोचते हैं कि कृषि ढांचे का मुख्य उद्देश्य छोटे और अधिक कुशल किसान होना है और उचित नीति के द्वारा सीमान्त किसानों को हटाना है? या हम वास्तविकता स्वीकार कर सकते हैं कि पूंजीवादी कृषि समाज में भूमि की जोत कुछ ही हाथों में केन्द्रित रहे, जबकि अधिकांश छोटे और सीमान्त किसान भूमिहीन श्रमिकों में बदल जायें? निसंदेह पूंजीवादी कृषि परिवर्तन की यह प्रक्रिया लाखों सीमान्त और छोटे किसानों के लिये हानिप्रद होगी विशेषतः जब कृषि और गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार की संभावनायें पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए क्या हम कम से कम इस परिवर्तन की स्थिति में छोटे खेतों को इसी दशा में रहने देने की योजना बना सकते हैं? वास्तव में, इन प्रश्नों को हल करने के लिए बहुत से संस्थागत और टैक्नोलाजिकल उपाय करने होंगे।

भूमि की जोतों के बंटवारे में परिवर्तन

तालिका 1 से यह देखा जा सकता है कि 1950-51 में कुल जोतों का 38 प्रतिशत सीमान्त जोतें थीं जिन पर कुल क्षेत्र के 6 प्रतिशत के बराबर भाग पर खेती होती थी जबकि दस हेक्टेयर

से अधिक जोत वाले किसान 50 प्रतिशत थे जो कुल क्षेत्र के 34 प्रतिशत भाग में खेती करते थे। 1990-91 की कृषि गणना के अनुसार सीमान्त खेतों का अनुपात बढ़कर 59 प्रतिशत हो गया, जो कि कुल क्षेत्र का 15 प्रतिशत था। परंतु 1.6 प्रतिशत बड़े किसानों ने कुल क्षेत्र के 17.4 प्रतिशत पर कब्जा रखा फिर भी 8.6 प्रतिशत के लगभग बड़े और मध्यम किसान कुल भूमि के 45 प्रतिशत भाग को जोतते हैं। इस प्रकार यदि हम 1950-51 से पूर्व की भूमि व्यवस्था की तुलना 1990-91 के साथ करें तो भूमि सुधारों के उपायों की दशा पिछले चार दशकों में सुधरी हुई प्रतीत नहीं होती है। वास्तव में इन वर्षों में भूमि के वितरण के तरीके बहुत अव्यवस्थित प्रतीत होते हैं। तालिका दो से भी यह देखा जा सकता है कि विभिन्न समूहों के औसत आकार की भूमि में समय के अनुसार कोई परिवर्तन नहीं आया है। पिछले दो दशकों के कृषि सर्वेक्षणों में यद्यपि बड़े, सीमान्त एवं छोटे खेतों का औसत आकार बढ़ा है जबकि मध्यम आकार के समूहों के खेतों में कमी आयी है। तालिका-3 विभिन्न राज्यों में सीमान्त, छोटे एवं बड़े खेतों के औसत आकार को दर्शाती है। तालिका-4 और 5, 1970-71 से 1990-91 के दौरान विभिन्न राज्यों में कार्यान्वित जोतों के वितरण के तरीकों में बिखराव को दर्शाती है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के परिणाम (तालिका-6) भी समय के अनुसार मालिकों एवं जोतों के केन्द्रीयकरण अनुपात की इसी प्रकार की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को दर्शाते हैं।

भूमिहीनों की संख्या में वृद्धि

हाल ही के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के दौर के अनुसार, भूमिहीन मजदूरों की संख्या 1971-72 में 9.6 प्रतिशत से बढ़ कर 1987-88 में 14.4 प्रतिशत हुई है। तालिका-7 यह दर्शाती है कि 1981 से 1987 के दौरान भूमिहीनों का अनुपात कुछ राज्यों जैसे असम, जम्मू कश्मीर, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, मणिपुर, उड़ीसा, त्रिपुरा और पश्चिमी बंगाल में कम हुआ है। अन्य सभी राज्यों में भूमिहीनों के अनुपात में थोड़ी बढ़ोत्तरी हुई है। आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब और तमिलनाडु जैसे राज्यों में 10 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण व्यक्तियों के पास अपनी भूमि नहीं है। हाल ही के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आकड़े यह प्रकट करते हैं कि पुरुष श्रमिकों का कुल ग्रामीण श्रम में अनुपात 1972-73 में 22 प्रतिशत से बढ़कर 1987-88 में 31.4 प्रतिशत हो गया है और महिला श्रमिकों में 31.4 प्रतिशत से बढ़कर 1992-93 में 35.5 प्रतिशत हो गया है। यदि यही प्रवृत्ति जारी रही तो ग्रामीण जनसंख्या में अधिक संख्या सीमान्त किसानों और भूमिहीनों की होगी। इनमें खेतिहर मजदूर शामिल हैं। छोटे और मध्यम किसान 32 प्रतिशत के लगभग हैं जो कि कुल भूमि के 41 प्रतिशत भाग पर खेती करते हैं। वास्तव में यह छोटे और मध्यम किसानों का भूमि के साथ लगाव है जो कि कृषि को कुशलता के अपेक्षाकृत ऊंचे स्तर पर बनाये रखता है और यह पूंजीवादी कृषि की वृद्धि को रोकता है। भूमि सुधार कानून इस दिशा में निष्प्रभावी रहे हैं।

छोटे किसानों का आर्थिक भविष्य और स्थिरता

कृषि ढांचे में छोटे लेकिन कुशल कृषि परिवारों को पहले से ही प्राप्त प्रमुखता को मद्देनजर रखकर छोटी जोतों का आर्थिक भविष्य एवं स्थिरता को सुनिश्चित करना आवश्यक है। हाल ही के हमारे सर्वेक्षण के परिणाम, जिनमें देश के आठ चुने हुए जिले जैसे अनन्तपुर और पश्चिमी गोदावरी (आन्ध्र प्रदेश), भागलपुर और पटना (बिहार), भिवानी और करनाल (हरियाणा) और श्रीगंगानगर और बीकानेर (राजस्थान) दिखाते हैं कि छोटे और मध्यम किसान बड़े और सीमान्त किसानों की अपेक्षा प्रति इकाई भूमि का ज्यादा उत्पादन करते है। फिर भी हरियाणा के करनाल और आन्ध्र प्रदेश के पश्चिम गोदावरी जिले को छोड़कर किसान अन्य जिलों में निर्धनता की रेखा से नीचे जीवन बसर कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में छोटे किसान केवल उन क्षेत्रों में समृद्ध हैं जहां सिंचाई व्यवस्था उपलब्ध है और उनमें आधुनिक टेक्नोलाजी

वास्तव में यह छोटे और मध्यम किसानों का भूमि के साथ लगाव है जो कि कृषि की कुशलता को अपेक्षाकृत ऊंचे स्तर पर बनाये रखता है और यह पूंजीवादी कृषि की वृद्धि को रोकता है। भूमि सुधार कानून इस दिशा में निष्प्रभावी रहे हैं।

अपनाने की क्षमता है। इसके अतिरिक्त वे छोटे किसान भी आर्थिक रूप से ठीक हैं जो फल, सब्जियां उगाते हैं और वृक्षारोपण करते हैं। इनसे खाद्य फसलों की अपेक्षा ज्यादा और स्थिर आय प्राप्त होती हैं।

कृषि से लाखों सीमान्त एवं छोटे किसानों का निर्वाह सम्भव नहीं रहा है। इसलिए छोटे किसानों को गैर-कृषि कार्यों में भी रुचि लेनी चाहिए। अभी तक उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कृषि मजदूरों का अनुपात 1981 में 18.9 प्रतिशत से सिर्फ थोड़ा-सा बढ़कर 1991 में 19.8 प्रतिशत हो गया है।

निष्कर्ष

भारत में पूंजीवादी कृषि के धीमे विकास को देखते हुए आने वाले वर्षों में छोटे और सीमान्त किसानों की कृषि क्षेत्र में प्रमुख

तालिका-3

विभिन्न राज्यों में सीमान्त, छोटे और बड़े जोतों के औसत आकार में परिवर्तन

औसत आकार

	सीमांत		छोटी		बड़ी		सभी जोतों का औसत	
	1970-71	1990-91	1970-71	1990-91	1970-71	1990-91	1970-71	1990-91
1. आंध्र प्रदेश	0.44	0.45	1.44	1.43	17.87	25.61	2.31	1.51
2. असम	0.45	0.41	1.42	1.39	57.31	78.31	1.47	1.31
3. बिहार	0.40	0.37	1.40	1.41	17.50	15.99	1.50	0.93
4. गुजरात	0.52	0.53	1.47	1.47	15.56	16.41	4.11	2.93
5. हरियाणा	0.49	0.47	1.44	1.52	15.86	15.43	3.77	2.43
6. हिमाचल प्रदेश	0.38	0.41	1.48	1.36	23.78	18.11	1.53	1.20
7. जम्मू-कश्मीर	0.41	0.38	1.46	1.38	18.75	23.00	0.94	0.83
8. कर्नाटक	0.51	0.47	1.45	1.46	16.44	15.22	3.20	2.13
9. केरल	0.23	0.18	1.31	1.36	46.67	55.74	0.57	0.33
10. मध्य प्रदेश	0.40	0.45	1.50	1.45	17.60	16.46	4.00	2.63
11. महाराष्ट्र	0.47	0.49	1.46	1.46	16.47	15.17	4.28	2.21
12. मणिपुर	0.53	0.55	1.18	1.37	14.04	12.16	1.15	1.23
13. मेघालय	0.70	0.54	1.50	1.32	10.70	14.25	1.70	1.76
14. नागालैंड	0.65	0.64	1.23	1.40	18.4	16.63	5.40	6.84
15. उड़ीसा	0.52	0.49	1.53	1.38	16.43	16.61	1.89	1.34
16. पंजाब	0.44	0.56	1.43	1.61	15.49	16.03	2.89	3.61
17. राजस्थान	0.49	0.48	1.45	1.44	22.30	19.13	5.46	4.11
18. तमिलनाडु	0.42	0.36	1.42	1.41	16.94	18.44	1.45	0.93
19. त्रिपुरा	0.40	0.40	1.41	1.53	33.53	121.57	1.02	0.97
20. उत्तर प्रदेश	0.37	0.38	1.40	1.41	16.08	15.34	1.16	0.90
21. पश्चिम बंगाल	0.43	0.45	1.38	1.53	64.20	156.99	1.20	0.90
सकल भारत	0.40	0.40	1.44	1.44	18.15	17.33	2.28	1.57

तालिका-4

विभिन्न राज्यों में समयानुसार क्रियान्वित जोतों की संख्या में परिवर्तन

कुल क्रियान्वित जोतों की संख्या का प्रतिशत हिस्सा

राज्य	सीमांत		छोटी		अर्ध-मध्यम		मध्यम		बड़ी	
	1970	1990	1970	1990	1970	1990	1970	1990	1970	1990
1. आन्ध्र प्रदेश	46.0	56.1	19.6	21.2	17.4	14.4	12.7	6.9	4.3	1.3
2. असम	57.0	60.0	23.8	22.6	14.0	13.4	4.8	3.8	0.4	0.2
3. बिहार	64.3	76.6	14.6	11.3	12.1	8.1	7.2	3.4	1.8	0.4
4. गुजरात	23.8	26.3	19.1	26.0	22.8	35.3	24.7	19.0	9.6	3.4
5. हरियाणा	27.4	40.7	18.9	19.9	22.5	20.0	23.1	14.5	8.1	3.0
6. हिमाचल प्रदेश	58.2	63.7	20.2	19.9	14.2	11.4	6.3	4.4	1.1	0.7
7. जम्मू-कश्मीर	72.8	74.1	15.8	16.2	8.8	8.0	2.5	1.6	0.1	0.1
8. कर्नाटक	39.2	23.6	27.5	22.2	20.1	17.5	11.0	6.2	2.2	
9. केरल	84.9	92.6	9.5	5.2	4.5	1.8	0.9	0.4	0.2	0.1
10. मध्य प्रदेश	31.8	37.3	16.8	22.8	20.1	20.7	20.0	15.3	9.3	3.8
11. महाराष्ट्र	25.1	34.6	17.7	28.8	22.0	22.4	24.8	12.4	12.4	1.8
12. मेघालय	36.8	34.5	34.6	29.8	24.1	26.9	4.3	7.6	0.2	0.6
13. उड़ीसा	43.3	53.6	32.9	26.2	13.3	15.0	9.1	4.7	1.4	0.4
14. पंजाब	37.6	26.5	18.9	18.3	20.4	25.9	18.0	23.4	5.0	6.0
15. राजस्थान	29.7	18.5	20.0	20.7	20.8	21.5	19.9	14.0	9.7	
16. तमिलनाडु	58.8	73.1	20.9	15.9	13.1	7.7	6.1	2.9	1.1	0.4
17. उत्तर प्रदेश	66.8	73.8	17.2	15.5	10.6	7.7	4.7	2.7	0.7	0.2
18. पश्चिम बंगाल	60.0	73.8	22.3	17.6	13.2	7.3	4.4	1.3	0.1	0.02
सकल भारत	50.9	59.0	18.9	19.0	15.0	13.2	11.4	7.2	3.8	1.6

तालिका-5

विभिन्न राज्यों में समयानुसार क्रियान्वित जोतों के क्षेत्र में परिवर्तन

कुल क्रियान्वित जोतों की संख्या के प्रतिशत हिस्से

	सीमांत		छोटी		अर्ध मध्यम		मध्यम		बड़ी	
	71	91	71	91	71	91	71	91	71	91
1. आंध्र प्रदेश	8.0	16.4	11.3	19.6	19.2	25.2	30.8	26.1	30.7	12.8
2. असम	17.7	19.0	22.9	24.1	26.3	27.6	18.0	15.2	15.1	14.1
3. बिहार	16.0	30.3	13.6	17.1	22.1	23.8	27.6	21.0	20.7	7.7
4. गुजरात	3.0	4.8	6.8	13.0	16.0	24.4	37.8	38.9	36.5	18.9
5. हरियाणा	3.5	7.9	7.2	12.5	17.0	25.4	37.1	35.0	34.2	19.1
6. हिमाचल प्रदेश	14.5	21.5	19.0	22.5	25.7	25.7	23.7	20.4	17.1	9.9
7. जम्मू-कश्मीर	32.1	34.2	24.6	26.8	26.1	26.0	14.7	10.7	2.5	2.3
8. कर्नाटक	4.8	8.7	10.7	18.7	19.4	26.0	33.4	30.6	31.7	16.0
9. केरल	34.4	48.8	22.7	21.1	21.1	14.1	9.3	6.3	12.5	9.7
10. मध्य प्रदेश	3.4	6.4	6.2	12.6	14.5	21.9	34.7	39.1	41.2	24.0
11. महाराष्ट्र	2.7	7.7	6.1	19.0	14.8	28.1	36.4	32.8	40.0	12.4
12. मेघालय		14.9	10.6	31.1	22.5	38.9	38.7	13.8	23.8	
13. उड़ीसा	12.0	19.7	26.6	26.9	21.1	29.5	27.8	19.1	12.5	4.8
14. पंजाब	5.7	4.1	9.4	8.1	20.0	20.0	38.1	40.2	26.9	26.7
15. राजस्थान	2.2	3.5	4.9	7.0	11.0	14.4	24.7	30.2	52.2	44.9
16. तमिलनाडु	17.1	28.3	20.5	24.0	24.8	22.6	24.6	17.6	13.0	7.7
17. उत्तर प्रदेश	21.1	31.4	20.8	24.4	25.0	24.4	23.2	16.9	9.0	3.9
18. पश्चिम बंगाल	21.5	36.5	25.7	30.0	28.9	28.4	29.2	7.5	4.7	5.6
सकल भारत	9.0	14.9	11.9	17.3	18.5	23.2	29.7	27.2	30.9	17.4

तालिका-6

1971 से 1991 तक स्वामित्व और क्रियान्वित जोतों के केन्द्रियकरण अनुपात में परिवर्तन

	स्वामित्व जोते			क्रियान्वित जोतें		
	1971	1981	1991	1971	1981	1991
1. आंध्र प्रदेश	0.732	0.736	0.740	0.606	0.599	0.592
2. असम	0.622	0.556	0.490	0.422	0.519	0.616
3. बिहार	0.719	0.686	0.653	0.556	0.606	0.656
4. गुजरात	0.683	0.696	0.703	0.540	0.558	0.576
5. हरियाणा	0.753	0.699	0.645	0.464	0.598	0.732
6. हिमाचल प्रदेश	0.546	0.541	0.536	0.586	0.468	0.356
7. जम्मू-कश्मीर	0.425	0.519	0.613	0.397	0.460	0.523
8. कर्नाटक	0.663	0.685	0.707	0.527	0.581	0.635
9. केरल	0.702	0.681	0.660	0.647	0.649	0.651
10. मध्य प्रदेश	0.621	0.647	0.673	0.533	0.535	0.537
11. महाराष्ट्र	0.687	0.697	0.712	0.526	0.571	0.616
12. मेघालय	0.476	0.480	0.484	0.383	0.436	0.489
13. उड़ीसा	0.645	0.614	0.583	0.501	0.526	0.551
14. पंजाब	0.776	0.767	0.758	0.418	0.702	0.986
15. राजस्थान	0.607	0.616	0.625	0.564	0.604	0.644
16. तमिलनाडु	0.751	0.756	0.760	0.516	0.640	0.764
17. त्रिपुरा	0.539	0.609	0.879	0.472	0.547	0.622
18. उत्तर प्रदेश	0.631	0.604	0.577	0.495	0.565	0.635
19. पश्चिम बंगाल	0.672	0.633	0.594	0.490	0.597	0.704
सकल भारत	0.710	0.713	0.716	0.586	0.629	0.672

तालिका-7

विभिन्न राज्यों में भूमिहीन श्रमिकों के अनुपात में परिवर्तन

भूमिहीन श्रमिकों का अनुपात

	1971-72 कुल	1981 कुल	1987-88 कुल
1. आंध्र प्रदेश	46.6	11.9	15.30
2. असम	25.0	7.5	2.5
3. बिहार	4.3	4.1	12.0
4. गुजरात	13.4	16.8	27.3
5. हरियाणा	11.9	6.1	7.5
6. हिमाचल प्रदेश	4.4	7.7	8.8
7. जम्मू-कश्मीर	1.0	6.8	3.4
8. कर्नाटक	13.7	12.6	7.7
9. केरल	15.7	12.8	5.3
10. मध्य प्रदेश	9.6	14.4	13.1
11. महाराष्ट्र	10.4	21.2	27.0
12. मणिपुर	5.8	2.1	0.6
13. उड़ीसा	10.6	7.7	5.1
14. पंजाब	7.1	6.4	27.5
15. राजस्थान	8.1	9.7	7.5
16. तमिलनाडु	17.0	19.1	20.3
17. त्रिपुरा	11.4	14.9	9.1
18. उत्तर प्रदेश	4.6	4.9	11.5
19. पश्चिम बंगाल	9.8	16.2	13.4
सकल भारत	9.6	11.3	14.4

भूमि सुधारः समस्याएं और समाधान

यतीश मिश्र

देश में भूमि सुधार कार्यक्रम आर्थिक और सामाजिक आधार तैयार किये बिना शुरू कर दिया गया था। इसमें आम लोगों की भागीदारी नगण्य रही। यह मत व्यक्त करते हुए लेखक ने बताया है कि अब 73वें संविधान संशोधन से पंचायतों को नवजीवन मिला है। लेखक ने आशा व्यक्त की है कि इससे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में आम लोगों की भागीदारी बढ़ेगी और भूमि सुधार कार्यक्रमों में तेजी आएगी।

तृतीय विश्व के अधिसंख्य देशों में हुए आर्थिक विकास कार्यक्रम वहां के गांवों में रह रहे किसानों और किसान मजदूरों का जीवन स्तर बढ़ाने में असफल रहे हैं। गरीबी से जूझ रहा यह वर्ग ग्रामीण आय का आधा हिस्सा देते हुए भी सामाजिक-राजनीतिक रूप से हाशिए पर है। भारतीय भूभाग के ग्रामीणों की हालत भी ऐसी ही है। इनकी आमदनी का मुख्य स्रोत कृषि है। लगभग 68 प्रतिशत जनसंख्या अपनी जीविका के लिए कृषि तथा इससे जुड़े कार्यों पर निर्भर है। लेकिन विडम्बना यह है कि सभी किसानों के पास खेती के लिए खेत नहीं हैं। कुछेक के पास हैं भी, तो वे खेती नहीं करते या करना नहीं चाहते। वे औद्योगिक विकास की रौ में बहकर उत्पादन के दूसरे क्षेत्रों की तरफ मुड़ गए हैं। अपने देश में खेती योग्य जमीनों के असमान वितरण के कारण कृषि भूमि कुछ ही हाथों में सिमट कर रह गई है। कृषि योग्य भूमि का 71 प्रतिशत भाग केवल 23.8 प्रतिशत भूमि मालिकों के कब्जे में है और शेष 29 प्रतिशत कृषि भूमि 9.71 करोड़ लोगों के पास है। इसमें 8.73 करोड़ लघु और सीमांत किसान हैं जिनके पास दो हेक्टेयर से भी कम जमीन है। देश में भूमिहीन ग्रामीण मजदूरों की संख्या सात करोड़ है और औसतन लगभग बीस लाख प्रतिवर्ष के हिसाब से इनकी संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही है। ऐसी शोचनीय दशा में भूमि सुधार व भूमि विकास कार्यक्रमों को गंभीरता से लागू करने की जरूरत है।

भूमि सुधार का अर्थ

भूमि सुधार से मतलब है ऐसी समेकित योजनाओं को लागू करना जो कृषि ढांचे में खामियों के कारण होने वाले सामाजिक-आर्थिक विकास की रुकावटों को दूर करें, खेती के तरीकों में बदलाव लाएं, भूमिहीन किसानों को भूमि न सिर्फ कागज पर दिलवाएं बल्कि जमीन पर उन्हें वास्तविक रूप से मालिकाना हक दिलवा सकें और साथ ही ऋण की उपलब्धता सुगमतापूर्वक सुनिश्चित कर सकें। इसका मुख्य मकसद है– किसानों को शोषण से बचाकर उनके जीवन स्तर को बेहतर बनाना ताकि वे समाज में अन्य वर्गों के समकक्ष जीवन बसर कर सकें और ग्रामीण जीवन में सामाजिक न्याय स्थापित किया जा सके।

पंचवर्षीय योजनाओं की भूमिका

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के योजनाबद्ध विकास कार्यक्रम के जरिए प्रथम पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधार पर बल दिया गया था। इसके अंतर्गत अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों के बीच वितरण, बिचौलियों का अंत, खेतिहरों को मालिकाना हक दिलवाने, भूस्वामित्व के क्षेत्र का सीमा निर्धारण करने तथा सहकारी खेती को प्रोत्साहन देने की कोशिश की गई थी। प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में जागीरदारी प्रथा को समाप्त

किया गया। अत्यधिक भूमिधारकों से अतिरिक्त जमीन लेकर भूमिहीनों में बांटी गई। इन भूमिधारकों के कब्जे में देश की लगभग चालीस प्रतिशत अतिरिक्त भूमि थी जिसका मुआवजा करीब 670 करोड़ रुपये आंका गया था। उस समय देश में चार प्रतिशत लोगों के पास ही दस हेक्टेयर से अधिक भूमि थी। 1974 तक करीब 37.4 लाख कृषकों के बीच 36.7 लाख हेक्टेयर भूमि वितरित की गई थी। मतलब कि एक किसान को एक हेक्टेयर से भी कम भूमि दी जा सकी। अन्य पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भी भूमि सुधार के विभिन्न पहलुओं को कार्यान्वित करने की भरसक कोशिशें हुई हैं। काफी हद तक सफलता भी मिली है। लेकिन अभी इस दिशा में एक लम्बे और तीव्रतर प्रयास की आवश्यकता है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में भी भूमि सुधारों को नए सिरे से लागू करने, गरीबी दूर करने तथा कृषि उत्पादकता को बढ़ाने पर बल दिया गया है। विशेषकर, सिंचित क्षेत्रों में उत्पादकता और भूमि की सक्षमता में सुधार लाने के लिए जमीन की जोतों की चकबंदी के प्रयास की बात कही गयी है। इसमें इस बात का भी जिक्र है कि अनौपचारिक और मौखिक रूप से बनाए गए काश्तकारों के नाम दस्तावेज में दर्ज किए जाने चाहिए और उन्हें काश्तकारी की सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। इस आठवीं योजना में राजस्व तंत्र को मजबूत बनाने तथा जमीन संबंधी दस्तावेजों में हाल तक के आंकड़ों को दर्ज करने की एक वृहद् योजना है। इसे तेजी से पूरा करने और आंकड़ों को तैयार करने के लिए लागत में कमी लाने के लिए विज्ञान और टेक्नोलाजी का उपयोग किया जाएगा और ऐसी सूचनाओं को आम आदमी तक सुलभ बनाया जाएगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के योजनाबद्ध विकास कार्यक्रम के जरिए प्रथम पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधार पर बल दिया गया था। इसके अंतर्गत अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों के बीच वितरण, बिचौलियों का अंत, खेतिहरों को मालिकाना हक दिलवाने, भूस्वामित्व के क्षेत्र का सीमा निर्धारण करने तथा सहकारी खेती को प्रोत्साहन देने की कोशिश भी की गई थी।

वर्ष 1988-89 के दौरान भूमि आंकड़ों का कम्प्यूटरीकरण करने के लिए पायलेट प्रोजेक्ट्स शुरू किए गए। आठवीं पंचवर्षीय योजना काल में कृषि से संबंधित अध्ययनों और भूमि आंकड़ों का कम्प्यूटरीकरण करने के लिए 65 करोड़ रुपये के बजट का प्रावधान है। मौजूदा वित्तीय वर्ष के दौरान ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय ने देश के 102 जिलों में इस परियोजना को चला रखा है, इनमें से चार जिलों में यह पूरी भी हो चुकी है।

चकबंदी

देश की अधिकतर कृषि जोतें छोटी और बिखरी पड़ी हैं। कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए जरूरी है कि खेती की आधुनिक तकनीकें अपनायी जाएं। इसके लिए चकबंदी आवश्यक है। पंजाब, महाराष्ट्र, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में यह काम लगभग पूरा हो गया है। अन्य राज्यों—उड़ीसा, बिहार, हिमाचल प्रदेश व गुजरात के चुने हुए इलाकों में भी यह काम पहले ही पूरा किया जा चुका है। देश के अन्य राज्यों में चकबंदी कानून पारित किए जा चुके हैं। अधिकतर राज्यों में चकबंदी को अनिवार्य घोषित किया गया है जबकि मध्य प्रदेश और पश्चिम बंगाल में इसे ऐच्छिक करार दिया गया है। लोगों की आशंकाओं के बावजूद चकबंदी के मामले में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। चकबंदी का काम निपटाने के लिए सरकारी तंत्र को हिदायत है कि छोटे, सीमांत तथा बटाईदार किसानों के हितों की रक्षा की जाए।

नवम्बर 1994 तक लगभग 1,528.76 लाख एकड़ जमीन की चकबंदी की जा चुकी है। वर्तमान वित्तीय वर्ष के गत आठ महीनों में देश में और 27.23 लाख एकड़ जमीन की चकबंदी की गई है।

जोतों की हदबंदी व वितरण

सरकारी कोशिशों के बावजूद नई जोत हदबंदी देश में पूरी तरह लागू नहीं हो सकी है। नगालैंड, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश व मिजोरम जैसे राज्यों में जहां कि भूमि का स्वामित्व शक्तिशाली भूस्वामियों तथा समूहों के पास था, इसे लागू करने में कठिनाई महसूस की गई। हदबंदी कानून का उल्लंघन अक्सर बड़े और शक्तिशाली भूस्वामी करते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर हुए विभिन्न सर्वेक्षण यह बताते हैं कि अनुमानित अतिरिक्त भूमि का क्षेत्र वास्तविक घोषित अतिरिक्त भूमि के क्षेत्र से कहीं अधिक है।

हदबंदी कानून के तहत हासिल की गई जमीनों के वितरण में बड़ी कठिनाई होती है। इसका कारण है कि अधिकतर भूखंड मुकदमेबाजी में फंसे हैं और वे पुनर्वितरण के योग्य नहीं हैं। ये जमीनें धार्मिक, शैक्षणिक व दातव्य संस्थाओं के लिए सुरक्षित होती हैं। सीमाबंदी में मिली जमीनें गुणवत्ता में घटिया होती हैं। यही

वजह है कि लाभान्वित व्यक्तियों को भूमि का आवश्यक विकास करने के लिए तथा निवेशों की खरीद के लिए 2500 रुपए प्रति हेक्टेयर की दर से सहायता दी जाती है। इसमें केंद्र और राज्यों की बराबर की भागीदारी होती है। इस योजना से भूदान के अन्तर्गत प्राप्त भूमि को भी लाभ मिलता है।

भूमि सुधार का एक बड़ा हिस्सा है-- भूमि का समान रूप से वितरण। लेकिन विभिन्न राज्यों जैसे कर्नाटक, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश पर नजर डालते ही भूमि वितरण की असमानता स्पष्ट हो जाती है। भूदान आंदोलन के दौरान दान में दी गई अधिकतर भूमि का भी समान रूप से वितरण नहीं हुआ है। इस असमान बंटवारे में स्वार्थी तत्वों का हाथ रहा है।

वर्तमान वित्तीय वर्ष के दौरान 30 नवम्बर 1994 तक पूरे देश में 51.03 लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि का वितरण किया गया है। इसकी जानकारी नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट है:

(लाख एकड़)

पूर्व संशोधित तथा संशोधित हदबंदी कानून	31.3.80 तक	31.3.85 तक	31.3.90 तक	30.9.94 तक
घोषित अतिरिक्त भूमि	69.13	72.07	72.25	73.42
अधीनस्थ भूमि	48.50	56.98	62.12	64.82
वितरित भूमि	35.53	42.64	46.47	51.03
लाभार्थियों की संख्या (लाख में)	24.75	32.90	43.60	49.49

स्रोतः वार्षिक रिपोर्ट 1994-95, भारत सरकार, ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय, पृष्ठ 65

स्थानीय संस्थाओं व समस्याओं की उपेक्षा

ग्रामीण संस्थाओं का अपना एक अलग वजूद है, इसमें अनवरतता है, इनकी अपनी विशेषताएं हैं। इनकी जड़ें ग्रामीणों की सोच में हैं, इनके धर्म और व्यवहार में हैं। पंच को परमेश्वर का दर्जा दिया गया है। आज की तरह बंद कमरे में न्याय की सुनवाई नहीं होती थी, बल्कि विशाल पेड़ की छाया में पूरा गांव इकट्ठा होकर खुल्लमखुल्ला बहस, विचार-विमर्श और बाद में निर्णय में भागीदार होता था। लेकिन आज हम आधुनिक विकास और औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रसित होकर इस महान प्राचीन परंपरा की उपेक्षा कर रहे हैं। इतिहास के पन्ने बताते हैं कि पूंजीवादी व्यवस्था ने विश्व के पिछड़े क्षेत्रों में स्थानीय अर्थव्यवस्था, सभ्यता व संस्कृति को नष्ट कर अपना औपनिवेशिक शासन स्थापित किया और स्थानीय विविधता की जगह अपनी औपनिवेशिक आर्थिक-सांस्कृतिक एकरूपता बलपूर्वक स्थापित की।

हदबंदी कानून के तहत हासिल की गई जमीनों के वितरण में बड़ी कठिनाई होती है। इसका कारण है कि अधिकतर भूखंड मुकदमेबाजी में फंसे हैं और वे पुनर्वितरण के योग्य नहीं हैं।

एशियायी समाजवाद का इतिहास रूस और पूर्वी यूरोपीय समाजवाद से भिन्न है। क्या हमने रूसी समाजवाद की तुलना में स्थानीय संस्थाओं और इनकी समस्याओं पर अधिक संवेदनशील व सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है? शायद नहीं। 'शायद' शब्द का प्रयोग यहां इस मायने में है कि राजनैतिक दल चाहे वे सत्ता में हों या विपक्ष में हों, उन्होंने अपनी सत्ता बनाए-बचाए रखने के लिए पंचायती राज के मुद्दे को या तो गरम किए रखा या लुभावने नारे, औपचारिक बैठकें और किश्तों में स्वायतत्ता देते रहे। अधिकार तो दिए गए पर उसे अमली रूप देने में पचासों बाधाएं खड़ी कर दीं। वर्तमान संविधान संशोधन में भी अधिकार-कर्त्तव्य की लम्बी सूची थमाकर वित्तीय स्वायतत्ता पर राज्य सरकार का अंकुश लगा दिया गया।

आज देश के अनेक भागों में क्षेत्रीय दबाव पिछले पांच दशकों के विकास कार्यक्रमों में स्थानीय समस्याओं-संस्थाओं की अनदेखी के कारण बढ़ रहे हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में इन कमियों को महसूस किया था। तभी तो उन्होंने आधुनिक भारी उद्योगों, बड़े-बड़े बांधों, बड़ी आर्थिक इकाइयों, अनियंत्रित शहरीकरण, मध्यम वर्ग का विस्तार करने वाली उच्च शिक्षा, साधनों का अति केंद्रीकरण और केंद्रीत शासन व्यवस्था को 'प्रशासनिक जंगल' का नाम दिया था। उन्होंने यह भी कहा था कि आजादी के प्रारंभिक वर्षों में विकास का चिंतन

और कार्यक्रम अगर 'ऊपर से नीचे' की ओर हुआ है तो अब समय आ गया है कि इस प्रक्रिया को उलट दिया जाए ताकि विकास की चेतना और कार्यक्रम 'नीचे से ऊपर' पहुंचे और ऊपर की व्यवस्था पर स्वाधिकार स्थापित कर सके।

उदारवादी आर्थिक नीति और ग्रामीण जीवन

मुक्त बाजार का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय होता है। यह स्थानीय बाजार पर हावी हो सकता है। इसका प्रसार उग्र और आक्रामक होने के कारण यह उन कारणों को नष्ट करता है जिनके कारण स्थानीय अर्थव्यवस्था, सभ्यता और संस्कृति की निरंतरता बनी रहती है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का स्थानीयता (ग्राम जीवन) पर हावी होना आधुनिक विकास की अनिवार्य शर्त है। पश्चिम के आधुनिक विकास के कारण वहां के स्थानीय बाजार और ग्राम जीवन की उजड़ी कहानी का जीवंत वर्णन गोल्ड स्मिथ की रचना 'उजड़े गांव' में देखी जा सकती है। इसका उल्लेख डिकेन्स के उपन्यासों और आज के ई.पी. थामसन जैसे इतिहासकारों की रचनाओं में भी है।

पश्चिमी देशों के इतिहास के पन्ने राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय राज्यों के उदय और उनके शक्तिशाली बनने से स्थानीय समाज, अर्थव्यवस्था, सभ्यता व संस्कृति के निरंतर ह्रास की निर्मम कहानियों से भरे पड़े हैं। क्या हम प्रजातांत्रिक समाजवादी विचारधारा के लोग पश्चिमी इतिहास को अपनी भूमि पर दोहराना चाहेंगे?

भूमंडलीकरण व भूमि सुधार

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में एक ओर जहां बड़े उद्योगों को बढ़ावा, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की अकूत पूंजी का विस्तार और पूंजीपतियों की पूंजी में अत्यधिक बढ़ोतरी होगी वहीं दूसरी ओर श्रम बहुलता पर आधारित देशी तकनीकों, ग्रामोन्मुख उद्योगों, भूमि सुधारों के स्थानीय तरीकों भौगोलिक विशिष्टताओं, बहुजन आधारित देशी उपकरणों तथा परंपरागत मौखिक विधाओं पर आधारित शिक्षा प्रणालियों का क्रमिक पतन होगा।

हमारे देश में भूमि सुधार कार्यक्रम को बगैर आंतरिक आर्थिक-सामाजिक आधार तैयार किए लागू करने का प्रयास किया गया। परिणामतः औद्योगीकरण बढ़ा, अतिकेंद्रित विकास व्यवस्था के कारण 'जन' और 'तंत्र' के बीच की दूरी बढ़ती गई जिससे वास्तविक जनतंत्र का लाभ आम आदमी को नहीं मिल सका। स्थानीय समस्याओं, खासकर भूमि-सुधार कार्यक्रमों में आम लोगों की सहभागिता नगण्य रही। इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि भूमि सुधार जैसे विशिष्ट सामाजिक कार्यक्रम के लिए स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी बहुत जरूरी है। एक तो पहले से ही इस कार्यक्रम में जन सहभागिता की कमी थी और अब तो भूमंडलीकरण के दौर में इसकी और भी कमी हो जाने की सम्भावना है। लोगों में, खासकर पढ़े लिखे लोगों की सोच में, अपने जमीन से जुड़े होने का गर्व समाप्त होता जा रहा है। लोग अपनी पहचान स्थानीय स्तर पर नहीं, राज्य स्तर पर नहीं; राष्ट्रीय स्तर पर भी नहीं; बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बनाने की कोशिश में लगे हैं।

विश्व अर्थव्यवस्था स्थानीय बाजार को न केवल प्रभावित करेगी बल्कि उस पर हावी होकर उसे समूल नष्ट भी करना चाहेगी। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपने अकूत पैसे के बल पर प्रचार

जब ग्रामीण जरूरत की चीजें बहुराष्ट्रीय निगम उपलब्ध कराएंगी तो इससे गांव स्तर पर ग्रामीणों द्वारा उत्पादन करने की जरूरत ही खत्म हो जाएगी। इस तरह कृषि उद्योग या कृषि उत्पादन प्रभावित होगा और ग्रामीण अपनी जरूरत की चीजें ज्यादा दाम देकर खरीदने पर मजबूर कर दिए जाएंगे।

माध्यमों का प्रयोग कर, विज्ञापन के विभिन्न तरीकों से ग्रामीणों के दिलो-दिमाग में यह बात बैठा सकती हैं कि इन कम्पनियों के उत्पाद बेहतर हैं। उसके मुकाबले अन्य उत्पादों की गुणवत्ता घटिया है। यह काम प्रचार माध्यम बड़ी आसानी से करते हैं। इनकी संप्रेषण शक्ति इतनी तीव्र होती है कि सच्चाई को समझ पाना आम आदमी के बूते के बाहर होता है। इसे विशेषज्ञ ही समझ सकते हैं। जब ग्रामीण जरूरत की चीजें बहुराष्ट्रीय निगम उपलब्ध कराएंगी तो इससे गांव स्तर पर ग्रामीणों द्वारा उत्पादन करने की जरूरत ही खत्म हो जाएगी। इस तरह कृषि उद्योग या कृषि उत्पादन प्रभावित होगा और ग्रामीण अपनी जरूरत की चीजें ज्यादा दाम देकर खरीदने पर मजबूर कर दिए जाएंगे। इस तरह यह नीति भूमि सुधार के मुख्य उद्देश्य— 'ग्रामीणों और खेतिहर मजदूरों को शोषण से बचाना' के उलट ग्रामीणों के शोषण का पोषक है।

भूमि सुधार में 73वें संविधान संशोधन की भूमिका

भूमि सुधार विषय 'राज्य सूची' में होने के कारण इस कर्त्तव्य का निर्वाह अब तक राज्य सरकारें करती आयी हैं। तमाम सरकारी

कोशिशों के बावजूद इस दिशा में संतोषजनक सफलता नहीं मिल पायी है। इसके कई कारण हैं। एक प्रमुख कारण स्थानीय लोगों की सहभागिता का अभाव रहा है। पंचायती राज से संबंधित 73वां संविधान संशोधन ग्रामीण समस्याओं के समाधान के लिए ग्रामीणों की संस्थागत सहभागिता सुनिश्चित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

इस संशोधन की कई विशेषताएं हैं। इसमें पंचायतों को संवैधानिक मान्यता दी गई और लोक सभा तथा विधान सभा चुनावों की भांति पांच वर्ष में पंचायत का चुनाव कराना अनिवार्य कर दिया गया। पंचायतों के कार्यक्षेत्र के विषयों की एक सूची ग्यारहवीं सूची के रूप में संविधान में जोड़ी गई। पंचायतों में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए आबादी के अनुपात में और महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित दिए गए हैं। अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का विकल्प राज्यों पर छोड़ा गया है। इसमें केंद्रीय वित्त आयोग व केंद्रीय चुनाव आयोग की तर्ज पर पंचायतों व नगरपालिकाओं के लिए भी राज्य स्तरीय वित्त आयोग और चुनाव आयोग का प्रावधान है। पंचायत से जुड़ी बाकी बातें राज्य सरकारों पर छोड़ दी गई हैं।

लेकिन इस संशोधन की तह में जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचायतें अपनी व्यवस्था चलाने और उसका नियामक बनने में स्वतंत्र नहीं हैं। पंचायतों को अपना बजट बनाने, उसे खर्च करने, किसी कर्मचारी को निकालने या नियुक्त करने के लिए ऊपर के अफसर की इजाजत लेनी होगी। राज्य सरकार जब चाहे किसी पंचायत को भंग कर सकेगी और पंचायतों को सौंपे गए अधिकार वापस ले सकेगी। कमीशनर या कलक्टर या एसडीओ विभिन्न स्तर के पंचायत पदाधिकारियों को निलंबित या पदमुक्त कर सकता है। इस तरह पंचायतों पर अफसरों और राज्य सरकारों की जकड़ ज्यों की त्यों है।

कर्मचारियों पर नियंत्रण के संबंध में एक सहज सवाल यह उठता है कि नियंत्रण 'ऊपर से नीचे की ओर' हो या 'नीचे से ऊपर की ओर'। अपने देश में 'ऊपर से नियंत्रण' की व्यवस्था असफल हो गई है। पंचायती राज व्यवस्था में होना यह चाहिए था कि कर्मचारी पंचायत के नियंत्रण में रहें। ग्राम पंचायत के किसी सदस्य या पदाधिकारी को हटाने का अधिकार ग्राम सभा को दिया जाना चाहिए न कि कलक्टर को।

वित्तीय मामलों में पंचायतों को पंगु रखा गया है। सरकार की आय का कितना हिस्सा पंचायतों को देना है यह राज्य स्तरीय वित्त आयोग तय करेगा। बेहतर होता पंचायतों को केंद्र और राज्य सरकारों के अनुदानों पर निर्भर न रखकर अपनी आय के स्रोत को स्वतंत्र रूप से विकसित करने दिया जाता। ग्रामीण परिवेश से आ सकने वाली आय जैसे भूराजस्व, वनसंपदा, नदी-तालाब, उपलब्ध खनिज, स्थानीय करों आदि को पंचायत को ही सौंप दिया जाता। यह कितनी बेढंगी और फिजुलखर्ची वाली बात है कि गांव का पैसा पहले देश और राज्य की राजधानियों में जाए और फिर वहां से लौटकर वित्त आयोग के निर्देशानुसार पंचायतों के पास आए।

इन तमाम कमियों के होते हुए भी 73वें संविधान संशोधन ने पंचायती व्यवस्था को एक नया जीवन दिया है। और इस नवजीवन के सदुपयोग से हम भूमि सुधार कार्यक्रमों में तीव्रता लाकर ग्राम जीवन में सामाजिक न्याय कायम कर सकते हैं। भूमि सुधार कार्यक्रम के विभिन्न स्तरों पर अगर पंचायतों को, खासकर ग्राम सभाओं को सम्मिलित करके इसे पर्याप्त अधिकार दे दिए जाएं तो इस दिशा में अभूतपूर्व सफलता मिल सकती है। भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की पहचान करने से लेकर अतिरिक्त और बेनामी भूमि के अधिग्रहण में निचले स्तर के प्रशासन को मदद करने, भूमि के उपयुक्त वितरण करने, भूमि सुधार संबंधी उपायों के बारे में लोगों को जानकारी देने, इस कार्य में लगे स्वयंसेवी संगठनों की सहायता करने और सामाजिक न्याय को स्थापित करने के लिए जरूरत पड़ने पर कठिन अपारंपरिक न्यायिक निर्णय लेने में पंचायतें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

लेखक भारतीय लोक प्रशासन संस्थान में शोध अधिकारी के पद पर कार्यरत। ग्रामीण/शहरी विकास की अनेक परियोजनाओं में कार्य का अनुभव। राजधानी के दैनिक समाचार पत्रों में संवाददाता और विशेष संवाददाता के रूप में कार्य। दो पुस्तकें, कई शोध पत्र तथा प्रमुख पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित।

RESEARCH PUBLICATIONS ON PANCHAYATI RAJ

from

Institute of Social Sciences

REPORTS

The Panchayats: *Report of a Panel Discussion on the Constitution (72nd Amendment) Bill 1991:* Panelists: Nirmal Mukarji, L C Jain, Arun Ghosh (pp. 40) Rs. 25

Karnataka High Court Judgement *on Zilla Parishad Elections* (1992)(pp.36) Rs. 25

The New Panchayati Raj in Karnataka (1987-92): **An Evaluation** (pp. 140) Rs. 150

Karnataka Mandal Panchayat Members Social Background 1990 (pp. 32) Rs. 25

Social Background of Zilla Parishad Members in Karnataka 1989 (pp. 50) Rs. 25

Social Background of District Council Members in Kerala 1991 (pp. 12) Rs. 10

Social Background and Role Performance of Village Pradhans: A Study of Dobhi Block, Jaunpur Dt., Uttar Pradesh (pp. 43) (*English & Hindi*) Rs. 25

Panchayat Elections in Punjab 1993 (pp. 47) Rs. 25

Local Self-Government in Malabar (1800-1960) (pp. 28) Rs. 25

Panchayati Raj under Administrators in Karnataka 1993) Rs. 25

Panchayati Raj, Parliamentarians and Legislators (1994) (*in English & Hindi*) Rs. 40

The Role of Panchayati Raj in Shaping the Future of Children (1994) Rs. 40

BOOKS

Decentralised Planning and Panchayati Raj (pp. 64+x) Rs. 75
by Malcolm S. Adiseshiah, Pranab Mukherjee, Ramakrishna Hegde, Ashim Das Gupta and George Fernandes

Panchayati Raj in India: From Legislation to Movement (pp. 130) Rs. 150
by George Mathew

Status of Panchayati Raj in the States of India 1994 (pp. 300) Rs. 400
by Institute of Social Sciences Research Team

Panchayati Raj and their Finance
by M. A. Oommen and Abhijit Datta (pp. 76) Rs. 150

People's Representative and Bureaucracy: The Interface in Panchayati Raj (pp. 52) Rs. 50
by Nirmal Mukarji, B. N. Yugandhar, Shiba Prosad Mukherjee and S. S. Meenakshisundaram

Panchayati Raj in Karnataka Today: Its National Dimensions (pp. 160+XII) Rs. 100
Analysis of the State's experiment with radical devolution of powers during 1983-1986.
Edited by George Mathew.

Panchayati Raj in Jammu & Kashmir (pp. 165+XXII) Rs. 150
Outcome of a year long interaction among scholars on the subject and specialists in Jammu and Kashmir affairs in 1989.
Edited by George Mathew

ORDER YOUR COPIES FROM:
Institute of Social Sciences
B-7/18 Safdarjung Enclave, New Delhi 110 029
Phone: 675451 Fax: 91-11-6885343

भूमि सुधार : उपलब्धि एवं समस्याएं*

डा० भरत सिंह

1992-93 तक कुल जोत क्षेत्रफल का केवल दो प्रतिशत ही अतिरिक्त भूमि घोषित किया गया और उसमें भी मात्र दो तिहायी भाग ही भूमिहीनों और किसानों में वितरित किया जा सका है। जोत सीमा कानून में अनेक खामियों को इस दयनीय स्थिति का कारण बताते हुए लेखक ने कहा है कि भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नौवीं अनुसूची में रख देने से इन्हें लागू करने में तेजी आएगी लेकिन इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योग धन्धों का विकास करना होगा ताकि लोगों को कृषि के अलावा अन्य क्षेत्रों में रोजगार मिल सके।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि पिछले चार दशकों में देश ने काफी औद्योगिक प्रगति की है, इसके बावजूद भी हमारी दो-तिहाई आबादी का जीवन निर्वाह कृषि से ही होता है। कृषि उत्पादन बढ़ने का आकलन गांवों की खुशहाली से किया जा सकता है। पिछले तीन दशकों में कृषि क्षेत्र में आशातीत विकास हुआ और कृषि उत्पादन काफी बढ़ा। यह सब भूमि, जल, श्रम, पूंजी तथा उन्नत कृषि तकनीक के सहयोग से ही संभव हुआ। भूमि, जिसके बिना कृषि की कल्पना ही व्यर्थ है, की स्वामित्व व्यवस्था, जोत का आकार, जोत विभाजन और अपखण्डन आदि कृषि उत्पादन को काफी हद तक प्रभावित करते हैं। उपरोक्त भूमि व्यवस्था में अनुकूलतम परिवर्तन को हम **'भूमि सुधार'** कह सकते हैं।

भारत में भूमि सुधार के अन्तर्गत मध्यस्थों की समाप्ति, काश्तकारी सुधार, जोत चकबन्दी, सहकारी खेती तथा भू-सीमा निर्धारण आदि कार्यक्रमों को लागू किया गया। इन कार्यक्रमों को चलाने का दायित्व राज्य सरकारों का होता है लेकिन इनकी प्रगति सभी राज्यों में एक समान नहीं रही है।

मध्यस्थों की समाप्ति

आजादी के पूर्व प्रचलित भू-व्यवस्था में सरकार व काश्तकार के बीच मध्यस्थ होते थे। सरकार मध्यस्थों को नियत शर्तों पर अस्थायी तौर पर भूमि देती थी। मध्यस्थ भूमि को काश्तकारों को खेती करने हेतु दे देते थे। लेकिन इसके बदले लगान वसूल करते थे। विभिन्न राज्यों में मध्यस्थ भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते थे जैसे; जमींदार, जागीरदार, बिस्वेदार, ईनामदार आदि। भूमि पर अस्थायी स्वामित्व और मध्यस्थों द्वारा मनमाना लगान वसूलना आदि कृषि विकास में बाधक थे। अतः राज्य सरकारों ने मध्यस्थता उन्मूलन अधिनियम लागू कर मध्यस्थों को समाप्त कर दिया। सर्वप्रथम 1951 में उत्तर प्रदेश में जमींदारी प्रथा समाप्त की गई। इस प्रकार 1953-54 तक सभी प्रदेशों में मध्यस्थों की प्रथा लगभग समाप्त कर दी गयी।

काश्तकारी सुधार

काश्तकारी सुधार कृषकों को मुख्यतः तीन प्रकार की सुविधाएं प्रदान करने के लिए किए गए :

1. उचित लगान का निर्धारण
2. भू-धारण की निश्चितता, एवं
3. भूमि स्वामित्व का अधिकार

विभिन्न राज्यों ने उपरोक्त सुविधाओं हेतु अधिनियम पारित किए जिससे किसानों को कृषि विकास सम्बन्धी निर्णयों के लिए अधिक अधिकार तथा स्वतंत्रता मिली। भूमि की लगान दर में कमी आई, जमींदारों और जागीरदारों द्वारा स्वेच्छा से कृषकों को

*इस लेख के लेखक डा० भारत सिंह एवं डा० चन्द्र सेन हैं।

भूमि से बेदखल करने पर रोक लग गयी तथा उनको भूमि के विक्रय, बन्धक एवं भूस्वामित्व अन्तरण की स्वतंत्रता मिल गई।

जोत चकबन्दी

भारत में जोतों के उपविभाजन तथा अपखण्डन के कारण खेतों का आकार छोटा तथा कई छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाता है। इस कारण कृषक कृषि कार्यों को सही प्रकार से नहीं कर पाते जिससे भूमि की उत्पादकता में कमी आने लगती है। देश में जनसंख्या वृद्धि, वंशागत कानून का होना, संयुक्त परिवार का विघटन, गांवों में अन्य रोजगारों का अभाव आदि जोत उपविभाजन और अपखण्डन के प्रमुख कारण हैं।

कृषकों के खेतों के छोटे-छोटे तथा बिखरे खण्डों को एक स्थान पर करने के लिए जोत चकबन्दी को लागू किया गया। इस संबंध में विभिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न समय में जोत चकबन्दी संबंधी कानून पारित किए गए। इसकी प्रगति सभी राज्यों में एक जैसी नहीं रही। पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश इस कार्य में अग्रणी रहे हैं। पंजाब तथा हरियाणा में अधिक कृषि उत्पादकता में जोत चकबन्दी का भी काफी योगदान है। देश में दिसम्बर 1992 तक कुल 611 लाख हेक्टेयर क्षेत्र की ही चकबन्दी हो पायी थी जो कुल कृषि क्षेत्र का केवल 45 प्रतिशत ही है।

भारत में भूमि सुधार के अन्तर्गत मध्यस्थों की समाप्ति, काश्तकारी सुधार, जोत चकबन्दी, सहकारी खेती तथा भू-सीमा निर्धारण आदि कार्यक्रमों को लागू किया गया। इन कार्यक्रमों को चलाने का दायित्व राज्य सरकारों का होता है लेकिन इनकी प्रगति सभी राज्यों में समान नहीं रही है।

जोत चकबन्दी किसानों के लिए लाभकारी है फिर भी इसकी प्रगति संतोषजनक नहीं है। कृषकों का पैतृक खेतों से लगाव, खेतों की उर्वरता में असमानता, भू स्वामित्व के सही अभिलेखों का न होना आदि जोत चकबन्दी में मुख्य रुकावटें हैं।

सहकारी खेती

जोतों के निरन्तर उपविभाजन से जोत का क्षेत्रफल कम होने लगता है जिससे अधिकतर कृषकों को इन छोटी जोतों पर स्वयं खेती करना अलाभकारी हो जाता है। परिणामतः कृषक अपनी जोतों को बेच देते हैं या दूसरे किसानों को बटाई पर देने लगते हैं। इन अलाभकारी जोतों को लाभकारी बनाने के लिए सहकारी खेती का प्रयास किया गया। परन्तु यह प्रयास असफल रहा। हजारों सहकारी कृषक समितियां बनाई गईं परन्तु अब तक कुल जोत क्षेत्रफल का एक प्रतिशत भी सहकारी खेती के अन्तर्गत नहीं आ पाया।

जोत सीमा निर्धारण

समाज में आर्थिक असमानता कई सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है। हमारे कृषकों में जोतों की असमानता ही उनकी आर्थिक असमानता का मुख्य कारण रहा है। हमारे यहां 75 प्रतिशत कृषकों के पास कुल कृषि भूमि का 30 प्रतिशत भाग ही है जबकि केवल 10 प्रतिशत बड़े कृषक कुल भूमि के आधे भाग पर खेती करते हैं।

यह असमानता समय के साथ बढ़ती रही है। इसको रोकने के लिए जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण किया गया। यदि किसी कृषक के पास सीमा से अधिक भूमि है तो उससे अधिक भूमि लेकर भूमिहीनों या सीमान्त कृषकों को देने का प्रावधान है। सभी प्रदेशों में जोत की अधिकतम सीमा निर्धारण कर इसे लागू किया गया। यह कार्यक्रम भी असफल रहा। देश में 1992-93 तक कुल जोत क्षेत्रफल का केवल दो प्रतिशत भाग ही अधिशेष भूमि घोषित किया गया तथा इसकी दो-तिहाई भूमि ही भूमिहीनों व सीमान्त कृषकों में बांटी जा सकी। जोत सीमा कानून व इसके लागू करने में कई खामियां इसकी असफलता का मुख्य कारण रही हैं। परिवार में पांच से अधिक सदस्य होने पर जोत सीमा से दोगुनी जोत रखने का अधिकार, परिवार में प्रति बालिग सदस्य के लिए अलग जोत सीमा का प्रावधान, बाग-बगीचों, चरागाह, धार्मिक उद्देश्यों हेतु-जोत सीमा का लागू न होना, बड़े कृषकों द्वारा गलत नामों से भूमि का हस्तान्तरण आदि इस कार्यक्रम की असफलता के प्रमुख कारण रहे हैं।

यह कहा जा रहा है कि भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नौवीं अनुसूची के अन्तर्गत रखने से इनको लागू करने में तेजी आएगी। पर इससे पहले देश में बदलती हुई परिस्थितियों को देखते हुए भूमि सुधार कार्यक्रमों पर पुनर्विचार करना होगा।

देश की आबादी बढ़ने व परिवारों के विघटन से औसत जोत

(शेष पृष्ठ 116 पर)

भूमि सुधार : ग्रामीण विकास का प्रभावी उपाय

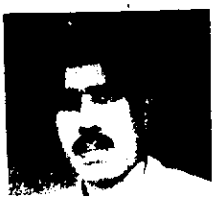

डा० राकेश अग्रवाल

हालांकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कृषि के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है और खाद्यान्न उत्पादन में देश आत्म निर्भर बन गया है। इसके साथ ही यदि भूमि सुधार कार्यक्रमों को पूरी निष्ठा से लागू किया जाए तो देश की कृषि संबंधी अधिकांश समस्याओं का काफी हद तक समाधान हो जाएगा, यह मत व्यक्त करते हुए लेखक ने इस लेख में भूमि सुधारों की दिशा में हुई प्रगति का लेखा जोखा प्रस्तुत किया है।

भूमि सुधार आर्थिक विषमता को कम कर समानता स्थापित करने का एक कारगर उपाय है। भूमिहीन पिछड़े लोग भूमि सुधार कार्यक्रम से लाभान्वित होकर एक ओर अपने जीवन स्तर में सुधार करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे कृषि उत्पादकता बढ़ाकर देश के विकास में भागीदार बनते हैं। भूमि सुधार के एक अकेले कदम से देश और समाज को कितने ही लाभ प्राप्त होते हैं। इसीलिए संसद ने 26 अगस्त 1995 को भूमि सुधार के 27 राज्य कानूनों को संविधान की नौंवी सूची में शामिल करने सम्बन्धी संशोधन विधेयक को पारित कर दिया है। अब इन कानूनों को अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस प्रकार भूमि सुधार कार्यक्रम ग्रामीण विकास की मुख्यधारा से जुड़ गया है।

बड़े भूस्वामी बनने की लालसा ने भूमि वितरण में सदैव असमानता को बढ़ाया है। बड़े जमींदार स्वयं खेती न करके भूमिहीन कृषि श्रमिकों से खेती कराते आये हैं। काश्तकारों के पास मालिकाना हक न होने के कारण कृषि उत्पादकता कम रहती है। भूस्वामी कृषि श्रमिकों का मनमाना शोषण करते हैं और अभाव कृषि श्रमिकों की नियति का अंग बन जाते हैं। उनको सदैव यह अहसास कराया जाता है कि मालिक जो दे रहे हैं, यह उनकी कृपा है, नहीं तो तुम फूटा भाग्य लेकर आये थे। गरीबी के कारण व्यक्ति बन्धक बनकर रह जाता है। भूमि सुधार भूमिहीन गरीबों को इसी मजबूरी से उबारने का प्रयास है।

भूमि सुधार क्या और क्यों?

भारत में भूमि वितरण में असमानता का ज्ञान इस तथ्य से होता है कि यहां आज भी लगभग 8 करोड़ भूमिहीन ग्रामीण श्रमिक विद्यमान हैं। देश में 71 प्रतिशत कृषि भूमि 23.8 प्रतिशत भूस्वामियों के पास है। शेष 76.2 प्रतिशत भूस्वामियों का मात्र 29 प्रतिशत कृषि भूमि पर नियंत्रण है। अधिकांश भूस्वामी छोटे और सीमान्त कृषक हैं जिनके पास दो हेक्टेयर से भी कम भूमि है। भूमि वितरण में इस असमानता को दूर करने के उपाय का नाम ही भूमि सुधार है।

परम्परागत अर्थ में भूमि सुधार का आशय भू-स्वामित्व के पुनर्वितरण से है, जिससे छोटे कृषकों और कृषि श्रमिकों को लाभ मिल सके। आधुनिक अर्थ में भूमि सुधार में भूमि के स्वामित्व और जोत के आकार दोनों में होने वाले सुधारों को सम्मिलित किया जाता है। प्रो० गुन्नार मिर्डेल के अनुसार, भूमि सुधार का अर्थ कृषक और भूमि के संबंधों में पुनर्संगठन से है। इससे भूमि का वितरण खेतिहरों के पक्ष में होता है। जोत का आकार आर्थिक या उचित बन जाता है। भूमि सुधार से सामाजिक न्याय की प्रक्रिया गतिमान होती है और कृषकों को उनके श्रम का पूरा प्रतिफल

मिलता है। इसीलिए ग्रामीण विकास के लिए भूमि सुधार सबसे महत्वपूर्ण उपाय है।

भूमि सुधार देश के आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण उपाय है। किसी भी ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तब तक लाभदायक और प्रेरणाप्रद परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते, जब तक भूमि व्यवस्था की प्रणाली काश्तकार उन्मुख न हो। भूमि सुधारों की आवश्यकता पर बल देते हुए डा० राधा कमल मुखर्जी ने लिखा है कि "वैज्ञानिक कृषि अथवा सहकारिता को हम कितना भी अपना लें, इनसे पूर्ण सफलता तब तक प्राप्त नहीं होगी जब तक हम भूमि व्यवस्था में वांछित सुधार नहीं कर लेते हैं।" भूमि सुधार के महत्व पर प्रकाश डालते हुए प्रो० सैम्युलसन ने लिखा है कि "सफल भूमि सुधार कार्यक्रमों ने अनेक देशों में मिट्टी को सोने में बदल दिया है।" वास्तविक काश्तकार के हाथों में जब भूमि का स्वामित्व होता है तो वह उस पर मन लगाकर अपनत्व भाव से कार्य करता है, जिससे कृषि की उत्पादकता बढ़ती है। इसीलिए भूमि व्यवस्था में सुधार अत्यन्त जरूरी है। श्री नानावती अन्जारिया ने कहा है कि जब तक भारत में भूमि की उत्पादकता पर दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था के बुरे प्रभावों की उपेक्षा की जाती रहेगी, तब तक कृषि नियोजन का कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता।

परम्परागत अर्थ में भूमि सुधार का आशय भू-स्वामित्व के पुनर्वितरण से है, जिससे छोटे कृषकों और कृषि श्रमिकों को लाभ मिल सके। आधुनिक अर्थ में भूमि सुधार में भूमि के स्वामित्व और जोत के आकार दोनों में होने वाले सुधारों को सम्मिलित किया जाता है।

भारत में एक ओर जनसंख्या की तुलना में कृषि योग्य भूमि कम है तथा दूसरी ओर यह भूमि सीमित व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित है, जिस कारण अधिकांश कृषक भूमिहीन हैं। ये भूमिहीन श्रमिक भूमि पर स्थायी सुधार में रुचि नहीं लेते हैं जिससे कृषि उत्पादकता कम और लगान अधिक रहता है। परिणामस्वरूप भूमिहीन और सीमान्त कृषक प्रायः निर्धन रहते हैं। इसीलिए यहां यह कहावत प्रचलित है कि भारत का किसान गरीबी में जन्म लेता है, गरीबी में पलता है और गरीबी में मर जाता है। भूमि सुधार से भूमिहीन कृषकों को भूमि का स्वामित्व प्राप्त होता है जिससे उनकी आय बढ़ती है। वे निर्धनता के अभिशाप से मुक्त होकर ग्रामीण विकास में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

भूमि संबंधी दोषपूर्ण ढांचे के अन्तर्गत उप-विभाजन और अपखण्डन के कारण भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाती है जिससे जोतों का आकार छोटा और अनार्थिक हो जाता है। इन छोटे खेतों में कृषि की उन्नत तकनीकों को अपनाना कठिन होता है। परिणामस्वरूप कृषि की उत्पादकता कम रहती है। किन्तु भूमि सुधार द्वारा भूमिहीन कृषकों को भूस्वामित्व ही प्राप्त नहीं होता बल्कि आर्थिक जोतों की रचना होती है। इससे कृषि उत्पादकता बढ़ती है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होती है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में छोटे और भूमिहीन कृषकों का सदियों से शोषण होता आया है। इस शोषण के कारण छोटे किसानों की स्थिति दयनीय बनी रही। वे न तो अपना जीवन-स्तर सुधार पाते थे और न ही ग्रामीण विकास में सहयोग दे पाते थे। इसीलिए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कारवर ने लिखा है कि "युद्ध, महामारी और अकाल के बाद ग्रामीण जनता के लिए सबसे बुरी बात भूमि का स्वामित्व न होना है।" भूमि सुधार कृषकों को स्वामित्व का अवसर प्रदान करके उनके तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के रास्ते खोलता है। भूमि सुधार से भूखे को रोटी मिलती है, आर्थिक विषमता में कमी आती है और सामंतवादी शोषण का अन्त होता है। इस प्रकार भूमि सुधार से निर्धन किसानों को सामाजिक न्याय की प्राप्ति होती है।

भूमि सुधार में पंचायती राज की सफलता भी निहित है। चूंकि भूमि सुधार से समानता स्थापित होती है और बिना समानता के पंचायती राज लागू करना अर्थहीन है। महात्मा गांधी ने जिस रामराज्य की कल्पना की थी उसमें सामाजिक विषमता को मिटाना पंचायती राज संस्थाओं का कर्तव्य था। इसलिए पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए भूमि सुधार को सही ढंग से लागू करना जरूरी है। बिना भूमि सुधार के पंचायती राज स्थापित करने का अर्थ सामन्ती प्रथा को ही बढ़ावा देना होगा। निर्बल किसान पिछड़े ही रह जायेंगे। पंचायती राज के माध्यम से सत्ता के विकेन्द्रीकरण का लाभ अधिसंख्य गरीब किसानों को प्राप्त नहीं होगा। 2 अक्टूबर, 1959 को पंचायती राज के शुभारम्भ के अवसर पर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था– "हमारी पंचायतों में हर व्यक्ति को बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए। स्त्री और पुरुष, ऊंच और नीच के बीच कोई भेद नहीं होना चाहिए। हममें एकता और भाइचारे की भावना विकसित होनी चाहिए।" पंचायती राज के संदर्भ में पंडित नेहरू की यह इच्छा भूमि सुधारों को न्यायसंगत तरीके से लागू करने पर ही पूरी हो सकती है।

कुछ लोग भूमि सुधार को राजनीति प्रेरित मानते हैं किन्तु इसके हितकारी पक्ष को देखा जाये तो किसी भी दृष्टि से भूमि सुधारों को लागू करना आवश्यक प्रतीत होता है। श्रेय किसी को भी मिले, लाभ बड़ी संख्या में निर्बल किसानों को होता है। अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ दोनों ही गरीबी दूर करने के लिए भूमि सुधार को महत्वपूर्ण मानते हैं। राजनीतिक इच्छा होने पर भूमि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता है।

भूमि सुधार हेतु उठाये गये कदम

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश में अनेक प्रकार की भूमि व्यवस्थायें थीं जिनके कारण वास्तविक काश्तकार और भूस्वामी के बीच भी अनेक मध्यस्थ आ गये थे। ये भूमि की उपज का एक बड़ा भाग लगान के रूप में लेते थे, लेकिन फिर भी काश्तकार को खेत प्रतिवर्ष जोतने की गारण्टी नहीं थी, जिससे भूमि पर स्थायी सुधार नहीं हो पाता था और उत्पादकता कम रहती थी। भूमि व्यवस्थाओं के इन दोषों को दृष्टिगत रखते हुए सरकार और समाज के स्तर पर भूमि सुधार के लिए व्यापक प्रयत्न किये गये हैं :–

भूमि सुधारों की आवश्यकता पर बल देते हुए डा. राधा कमल मुखर्जी ने लिखा है "वैज्ञानिक कृषि अथवा सहकारिता को हम कितना भी अपना लें, इनसे पूर्ण सफलता तब तक प्राप्त नहीं होगी, जब तक हम भूमि व्यवस्था में वांछित सुधार नहीं कर लेते हैं।"

जमींदारों और बिचौलियों का उन्मूलन : स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेजों की नीति के कारण देश में रैयतवाड़ी, महलवाड़ी और जमींदारी तीन प्रकार की व्यवस्थाएं थीं जिनके कारण भूस्वामित्व में भारी असमानता पैदा हो गयी थी। चन्द लोग बड़े भूपति बन गये थे और अधिकांश जनता भूमिहीन थी। इन व्यवस्थाओं के कारण गांवों की सामुदायिक एकता भंग हो गयी थी। पारस्परिक सहयोग का स्थान व्यक्तिगत स्वार्थ ने ले लिया था। बेगारी बढ़ती जा रही थी। सामाजिक न्याय के स्थान पर सर्वत्र शोषण का बोलबाला था। विडम्बना यह थी कि वास्तविक काश्तकारों का शोषण उस वर्ग द्वारा किया जाता था जिसका प्रत्यक्ष रूप से कृषि से कोई सम्बन्ध नहीं था। डा० राधाकमल मुखर्जी ने जमींदारों की कारगुजारियों का खुलासा इस प्रकार किया है– "एक ओर जमींदार कृषकों की आय का बड़ा भाग उनसे छीन कर उन्हें दरिद्रता की भट्टी में जलने के लिए छोड़ देते थे और दूसरी ओर वे स्वयं कृषि से दूर रहकर किसानों से प्राप्त आय को खुलकर विलासिता पर उड़ा देते थे। जमींदार ही नहीं, उनके सम्बन्धी और कर्मचारी भी खूब एशोआराम की जिन्दगी बिताते थे।"

इन जमींदारों के कारण ग्रामीण जनता और शासन के बीच सम्पर्क का अभाव रहता था। इसीलिए शासन किसानों की समस्याओं से अनजान रहता था। छोटे और भूमिहीन किसान जमींदारों का अन्याय सहकर भी उनकी बेगार करने के लिए मजबूर थे।

जमींदारी उन्मूलन ने गरीब कृषकों को नया जीवन दिया। वे जमींदारों की दासता से मुक्त हो गये। भारत में जमींदारी उन्मूलन कानून का सूत्रपात बिहार राज्य से हुआ। वहां सन् 1947 में राज्य विधान सभा में जमींदारी उन्मूलन सम्बन्धी विधेयक पेश किया गया था। यह विधेयक अनेक संशोधनों के बाद सन् 1950 में बिहार भूमि सुधार अधिनियम के रूप में लागू हुआ। इसके बाद मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश आदि अन्य राज्यों में भी जमींदारी, जागीरदारी, इनामदारी आदि व्यवस्थाओं के उन्मूलन का कानून लागू कर दिया गया। देश में जमींदारी उन्मूलन से लगभग दो करोड़ काश्तकारों को स्वामित्व का लाभ प्राप्त हुआ। इन काश्तकारों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। इनका सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। अब ये किसान सरकार से सीधे सहायता प्राप्त कर लेते हैं। वास्तविक काश्तकारों को भूमि का स्वामित्व मिलने से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। जमींदारों के हट जाने से भूमि सुधार के अन्य उपायों को लागू करना आसान हो गया।

काश्तकारी व्यवस्था में सुधार : जमींदारों के उन्मूलन के बाद भी काश्तकारों को कृषि श्रमिक के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। आज भी बड़ी मात्रा में खेती उन काश्तकारों द्वारा की जाती है, जिन्हें कभी भी भूस्वामी द्वारा हटाया जा सकता है। इन काश्तकारों का भूमि पर कोई अधिकार नहीं होता है और उन्हें लगान अधिक मात्रा में देना पड़ता है। इस व्यवस्था के शोषण से बचाने के लिए भूमि सुधार के अन्तर्गत काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार देने, बेदखली से संरक्षण प्रदान करने तथा उत्पादन का समुचित हिस्सा आदि दिलाने के लिए काश्तकारी सुरक्षा कानून बनाये गये हैं। "जोतने वाले को भूमि मिले" यह विचार इन कानूनों का उद्देश्य है। इन कानूनों में ऐसा प्रावधान किया गया है कि बड़े स्तर पर किसानों को बेदखल न किया जा सके और भूस्वामी द्वारा भूमि वापस लेते समय काश्तकार के पास न्यूनतम भूमि अवश्य रहने दी जाए, भूस्वामी को स्वयं काश्त करने के लिए ही भूमि वापस लेने का अधिकार हो।

काश्तकारी सुरक्षा कानूनों से कृषकों को बार-बार लगान वृद्धि, बेदखली और बेगारी जैसे शोषण से काफी सीमा तक छुटकारा मिल गया है। विभिन्न राज्यों में अब तक 112.3 लाख काश्तकारों को 153.32 लाख एकड़ भूमि का लाभ प्राप्त हो चुका है। भूस्वामियों द्वारा बचाव के रास्ते ढूंढ लेने के कारण अनेक बार इन कानूनों से काश्तकारों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता है। अतः कानूनों को अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

निकालकर भूमिहीन आदिवासियों को वितरित करने का सतत् प्रयास किया जा रहा है। इससे आदिवासी क्षेत्रों में विकास की तीव्र प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है। आदिवासी भूस्वामियों के शोषण से मुक्त होकर प्रगति की ओर अग्रसर हो रहे हैं। 1994 तक आंध्र प्रदेश में 22,571 आदिवासियों को 91,528 एकड़, बिहार में 28,924 आदिवासियों को 42,875 एकड़ तथा महाराष्ट्र में 19,943 आदिवासियों को 99,270 एकड़ भूमि का कब्जा दिलाया जा चुका है। अन्य राज्यों में भी इसी प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं।

लाभान्वित काश्तकारों की राज्यवार स्थिति (नवम्बर 1994 तक)

क्र. सं	राज्य	काश्तकारों की संख्या (लाख में)	भूमि (लाख एकड़ में)
1.	आन्ध्र प्रदेश	1.07	5.95
2.	असम	29.08	31.75
3.	गुजरात	12.53	25.66
4.	हरियाणा	0.23	0.88
5.	हिमाचल प्रदेश	4.01	0.00
6.	कर्नाटक	6.85	26.32
7.	केरल	28.42	14.50
8.	महाराष्ट्र	14.42	46.21
9.	मेघालय	0.00	0.00
10.	मिजोरम	0.00	0.00
11.	उड़ीसा	1.51	0.94
12.	पंजाब	0.10	0.51
13.	त्रिपुरा	0.14	0.39
14.	प० बंगाल	13.90	अनु०
15.	अंडमान निकोबार	0.00	0.00
16.	दादरा एवं नगर हवेली	0.07	0.21
17.	लक्षद्वीप	—	—
18.	पांडिचेरी	—	—
	भारत	112.13	153.33

स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट 1994-95 ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार।

आदिवासियों को भूमि का कब्जा : भूमि सुधार के अन्तर्गत आदिवासी क्षेत्रों में भूस्वामियों के गैर-कानूनी कब्जे से भूमि

जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण : प्रो० गाडगिल के अनुसार– "सभी साधनों में भूमि की पूर्ति सबसे सीमित है किन्तु

इसकी मांग करने वालों की संख्या सबसे अधिक है। अतः विशेष दशाओं को छोड़कर किसी व्यक्ति को बड़े भूमि क्षेत्र पर अधिकार बनाये रखने की अनुमति देना अन्यायपूर्ण है।" इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण करना महत्वपूर्ण है। इससे भूस्वामित्व के विकेन्द्रीकरण का रास्ता आसान हो जाता है। जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण करने के लिए अधिकांश राज्यों ने आवश्यक कानून बनाये हैं। इन कानूनों के अंतर्गत देश में सितम्बर 1994 तक 73.42 लाख एकड़ भूमि फालतू घोषित की गयी, जिसमें से 49.49 लाख लाभार्थियों को 51.03 लाख एकड़ भूमि का वितरण किया जा चुका है। बीस-सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1993-94 में 70,887 एकड़ अतिरिक्त भूमि का वितरण किया गया था जबकि 1992-93 में यह मात्रा 1,11,024 एकड़ और 1991-92 में 1,54,067 एकड़ थी।

चकबन्दी व्यवस्था : उपविभाजन और उपखण्डन के कारण भारत में कृषि जोतों का आकार प्रायः छोटा रहता है। कृषि जोत का आकार अधिक छोटा होने पर कृषि उत्पादकता कम रहती है। दूर-दूर छोटे-छोटे खेत होने पर कृषकों के समय व शक्ति का अपव्यय होता है। इस समस्या को दूर करने के उद्देश्य से बिखरे हुए खेतों को मिलाने के लिए चकबन्दी व्यवस्था अपनायी जाती है। देश के अधिकांश राज्यों में चकबन्दी के लिए कानून बनाये गये हैं। इनमें से ज्यादातर राज्यों में अनिवार्य चकबन्दी व्यवस्था लागू है। कुछ राज्यों में स्वैच्छिक चकबन्दी भी है। अब तक विभिन्न राज्यों में 1528.76 लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी की जा चुकी है।

सहकारी खेती : भूमि सुधार के स्वैच्छिक उपायों में सहकारी खेती सर्वोत्तम है। इसके अंतर्गत कृषक अपनी भूमि पर पूर्ण स्वामित्व रखते हुए सामूहिक खेती करते हैं। महात्मा गांधी सहकारी खेती पर पूरा विश्वास रखते थे। उनका कहना था कि "सहकारी खेती भूमि की शक्ल ही बदल देगी और लोगों की गरीबी तथा आलस्य को भगा देगी।" सहकारी खेती से छोटी जोतों की समस्या का निराकरण होता है तथा कृषि की उन्नत तकनीकों का प्रयोग करना आसान हो जाता है। जनतांत्रिक राज्य व्यवस्था में सहकारी खेती ही कृषि विकास का श्रेष्ठ उपाय है। देश में लगभग एक लाख कृषि सहकारी समितियां सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं जिनकी सदस्य संख्या तीन लाख से अधिक है।

कृषि भूमि की चकबन्दी की राज्यवार स्थिति

(नवम्बर 1994 तक)

क्रम. सं.	राज्य	चकबन्दी क्षेत्र (लाख एकड़)
1.	आन्ध्र प्रदेश	8.18
2.	बिहार	59.50
3.	गुजरात	68.50
4.	हरियाणा	104.50
5.	हिमाचल प्रदेश	19.94
6.	जम्मू और कश्मीर	1.16
7.	कर्नाटक	26.75
8.	मध्य प्रदेश	95.53
9.	महाराष्ट्र	526.50
10.	उड़ीसा	19.96
11.	पंजाब	121.72
12.	राजस्थान	42.30
13.	उत्तर प्रदेश	441.87
14.	दिल्ली	2.33
	भारत	1528.76

भूदान कार्यक्रम : यह भूमि सुधार का एक ऐच्छिक कार्यक्रम है। आचार्य विनोबा भावे ने इस कार्यक्रम का शुभारम्भ 18 अप्रैल 1951 को किया था। इसमें व्यक्ति भूमि स्वेच्छा से दान करते थे। दान में एकत्रित भूमि को भूमिहीन किसानों के बीच वितरित कर दिया जाता था। इससे गरीब किसानों को जीविका का सहारा मिल जाता था। भूदान कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तक लगभग 42 लाख एकड़ भूमि प्राप्त हो चुकी है जिसमें से लगभग 14 लाख एकड़ भूमि का वितरण भूमिहीनों के बीच किया जा चुका है।

भूमि अभिलेखों का रख-रखाव : देश में भूमि संबंधी आंकड़े और प्रलेख पूर्ण रूप से उपलब्ध न होने के कारण भूमि सुधार में कठिनाई आती है। कृषि ऋण आयोजना, फसल बीमा तथा अनाज वसूली आदि के लिए भी भूमि अभिलेखों की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए सरकार से भूमि अभिलेखों के संकलन के लिए समय-समय पर विशेष उपाय किये हैं। भूमि संबंधी अध्ययनों के लिए केन्द्रीय प्रायोजित योजना के अन्तर्गत विभिन्न संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। भूमि अभिलेखों के कम्प्यूटरीकरण के लिए वर्ष 1988-89 से प्रयास किये जा रहे हैं। आठवीं पंचवर्षीय योजना में भूमि अध्ययनों और भूमि अभिलेखों के कम्प्यूटरीकरण के लिए 65 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। इसके अन्तर्गत 102 परियोजनाएं स्वीकृत हैं।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो स्पष्ट दिखाई देता है किभूमि सुधारों के उपायों से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कृषि क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है। खाद्यात्र उत्पादन के क्षेत्र में देश आत्म-निर्भर बना

अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ दोनों ही गरीबी दूर करने के लिए भूमि सुधार को महत्वपूर्ण मानते हैं। राजनीतिक इच्छा होने पर भूमि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता है।

है। यदि भूमि सुधार के कार्यक्रमों को सम्बन्धित व्यक्ति पूरी निष्ठा से अपनायें तो जल्दी ही कृषि क्षेत्र की समस्याओं का अन्त हो जायेगा और देश आर्थिक विकास के नये सोपान पर पहुंच जायेगा।

लेखक एस. एस. वी. (प्रो. ग्रे.) कालिज, हापुड़ जिला गाजियाबाद के वाणिज्य विभाग में प्रवक्ता आर्थिक एवं सामाजिक विषयों पर 250 से अधिक लेख, शोध-पत्र, परिचर्चाएं विभिन्न राष्ट्रीय स्तर के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। आकाशवाणी से दो दर्जन से अधिक वार्ताएं प्रसारित। कविताएं, लघु कथाएं एवं कहानियां लिखने में रुचि। बड़ी संख्या में तीनों विधाओं में रचनाएं प्रकाशित। आर्थिक विषयो पर चार पुस्तकें प्रकाशित। एक पुस्तक पर प्रथम राष्ट्रीय पुरस्कार।

(पृष्ठ 89 का शेष)

आर्थिक समता के संवाहक...

वे अपने प्रभाव अथवा न्यायालयों का सहारा लेकर किसी न किसी तरह जमीन का काफी हिस्सा अपने पास दबाये रखना चाहते हैं, उन्हें भूमिहीनों की दुर्दशा अथवा आकांक्षाओं से कोई सरोकार नहीं। परिणामतः बहुत कम जमीन वितरण के लिए उपलब्ध हुई है। जो उपलब्ध हुई है वह भी बहुधा उपजाऊ नहीं है। उसे खेती लायक बनाने के लिए काफी मेहनत और खर्चा आवश्यक है। सरकार ने इस प्रयोजन के लिए धन देने की भी योजनाएं बनाई हैं पर गरीब किसानों तक वह पहुंच नहीं पाता।

आंशिक राहत

फिर भी सदियों से वंचित गरीब किसानों में से कुछ को भूमि मिली है और अधिक लोगों को मिलने की संभावना बनी है। इससे पूरी तरह न सही, आंशिक रूप से सामाजिक विषमता कम हुई है। सामाजिक न्याय की कुछ पूर्ति हुई है। किसानों की गरीबी दूर करने में मदद मिली है।

केंद्र व राज्यों का तालमेल जरूरी

भूमि सुधार राज्यों का विषय है। इसमें केंद्र और राज्य सरकारों से परस्पर सहयोग व तालमेल की आवश्यकता है। केंद्र व राज्य सरकारें मिलकर काम करें तभी आर्थिक विकास के लक्ष्य प्राप्त हो सकते हैं। केंद्र सरकार इस मामले में दिशा निर्देश ही दे सकती है। प्रभावी कार्रवाई तो राज्य सरकारों को ही करनी है। अगर वे पश्चिम बंगाल की तरह कृत संकल्प होकर काम करें तो अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। पांच-छह महीने में देश में संसद के आम चुनाव होने वाले हैं। अगर चुनाव के बहाने भी, गरीबों को खेती के लिए भूमि उपलब्ध कराने में तेजी लाई जाए तो देश समतावादी व्यवस्था की ओर आगे बढ़ सकता है और भूमि सुधार सदियों से अपेक्षित समता लाने में कारगर सिद्ध हो सकते हैं।

जन्म 1934, भरतपुर (राजस्थान)। पिछले चार दशक से पत्रकारिता में, मासिक 'लालिमा' और ग्रामीण साप्ताहिक 'सेवाग्राम' का सम्पादन। भारतीय सूचना सेवा के अधिकारी के रूप में पत्र सूचना कार्यालय, विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय तथा आकाशवाणी समाचार विभाग में विभिन्न पदों पर कार्य किया। चार वर्ष तक पश्चिम एशिया में आकाशवाणी के विशेष संवाददाता रहे। 1992 में आकाशवाणी के संयुक्त निदेशक के पद से सेवानिवृत्त। संप्रति अंतरराष्ट्रीय और आर्थिक विषयों पर स्वतंत्र लेखन।

सुखी समाज का आधार : निरन्तर भूमि सुधार

डा. जयनारायण कौशिक

ग्रामीण समाज में निरंतर भूमि सुधार ही सुखी जीवन का आधार है। लेखक ने अपना यह मत प्रकट करते हुए बताया है कि सरकार को भूमि सुधारों को लागू करते समय अनेक बाधाओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ा। लेकिन अब भूमि सुधारों से संबद्ध 27 कानूनों को संविधान की नौवीं अनुसूची में शामिल कर लेने से यह काम आसान हो जाएगा।

भूमि बहुत पुराने समय से राज्य की आय का मुख्य स्रोत रही है। समय की आवश्यकता के अनुसार इसमें छोटे-बड़े परिवर्तन किए गए। भारत में शेरशाह सूरी तथा लार्ड कार्नवालिस के समय में किए गए भूमि सुधारों का भारत की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। लार्ड कार्नवालिस ने जमींदारों को उनकी जमीन का मालिक बना दिया। वे इस जमीन को इस शर्त पर रख सकते थे कि वे उससे प्राप्त होने वाली मालगुजारी का 90 प्रतिशत अंश हर वर्ष निश्चित तिथि के सूर्यास्त तक कम्पनी के खजाने में जमा करा देंगे। इसी 'सूर्यास्त' की तिथि के साथ हजारों लाखों किसानों के भाग्य का सूर्यास्त हुआ तथा कुछ इने गिने सामन्तों के भाग्य का नक्षत्र उदय हुआ।

अठारहवीं शती के अन्त से स्थापित यह जमींदारी-सामन्ती व्यवस्था थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ हमारी गणतंत्र व्यवस्था लागू होने तक चालू रही। इस बीच एक वर्ग में सामन्तवादी मनोवृत्ति की जड़ें मजबूत हो चुकी थीं। उनके रईसी ठाठ-बाट और गरीबों की प्रताड़ना और उपेक्षा समाज ने दबी जबान से स्वीकार कर ली थी। किन्तु स्वतंत्रता आन्दोलन के समय ऐसे उत्साही नेताओं की कमी नहीं थी जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस मनोवृत्ति को आमूल नष्ट करने को कटिबद्ध थे।

परिणामस्वरूप 1950 और 1960 के बीच भूमि सुधार के क्रांतिकारी कानून बनाए गए। किसी भी चुनी हुई सरकार के लिए यह आवश्यक भी था कि वह अधिक से अधिक लोगों को राजकाज के निकट लाए। बादशाही, नवाबी और गर्वनरी शासन व्यवस्था अधिनायकवादी थी और उसे प्रजा की भावनाओं से कोई सरोकार नहीं था।

1950-60 के बीच भूमि सुधार का मुख्य आधार था अधिक समतावादी सामाजिक ढांचे की स्थापना, आर्थिक विकास की प्रक्रिया की मुख्य धारा में ज्यादा से ज्यादा गरीब किसानों और खेतिहर मजदूरों को शामिल करना, इस माध्यम से निर्बल वर्गों को स्थिति सुधारना तथा उनमें स्वतंत्र नागरिक होने का स्वाभिमान जाग्रत करना। स्पष्ट है कि भूमि सुधार न केवल आर्थिक विकास का उपाय थे, अपितु सामाजिक उत्थान की रीढ़ भी थे।

जमींदारी और सामन्ती युग में परती भूमि में बढ़ोतरी होती रही थी क्योंकि उस समय उर्वर भूमि को ही जोता जाता था। भूमि को उपयोग में न लाने के कारण उसका एक बड़ा भाग बंजर हो गया। उपेक्षित भूमि कुछ परिवारों के लिए सैरगाह और आखेट का स्थान बन कर रह गई।

भूमि सुधार एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है। अतः इसे पंचवर्षीय योजनाओं का आधार बनाया गया। सातवीं पंचवर्षीय

योजना में भूमि सुधार को गरीबी उन्मूलन का अभिन्न अंग माना गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना में उन बातों का भी उल्लेख है जो भूमि सुधार नीति के लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधक हैं।

भूमि सुधारों पर आरंभ में ही ग्रहण लगना आरंभ हो गया और जिस आर्थिक लाभ के लिए इन सुधारों को लागू किया जा रहा था उस पर एक धूमिल छाया पड़ने लगी। इस संकट के अनेक कारण थे। आइए इन पर ब्योरे वार विचार करें तथा साथ ही इन बाधाओं को पार करने के उपायों पर भी प्रकाश डालें।

भूमि सुधारों में बाधा का कारण वह सुविधा भोगी समाज बना जो आरंभ में यमन शासकों और बाद में अंग्रेजों से मिलकर ठकुरसुहाती बातें करता रहा। इस समाज ने रातों रात अपनी राजनीतिक निष्ठा की पगड़ी प्रबल राजनीतिक पार्टी की दहलीज पर रख दी। इस तरह उन्होंने सत्ता में घुसपैठ करने का प्रयत्न किया। राजनीति की दोहरी कठिनाई थी। पहली यह कि धन के बिना राजनीति नहीं चल सकती और दूसरी लोगों के बहुमत के वोट प्राप्त किए बिना लोकतंत्र में राजगद्दी मिलना असंभव है। सरकार ने भूमि सुधार से संबंधित कानून बनाए लेकिन उस उच्च वर्ग के हाथ इतने लम्बे थे कि कोर्ट कचहरी के गलियारों में कानून आंख मिचोली का खेल खेलते रहे।

भारतीय कृषक समाज की धार्मिक और भाग्यवादी निष्ठा भी भूमि सुधारों के प्रभावी न होने में बाधक बनी। यद्यपि किसान पीढ़ी-दर-पीढ़ी जागीरदारों और सामन्तों की भूमि पर हल जोतता आया और स्वयं अध पेट रहकर उसने उनकी सम्पत्ति को बढ़ाया, फिर भी उसकी मानसिक स्थिति इस तथ्य को स्वीकार करने को तुरन्त तैयार नहीं थी कि भूमि जोतने वाला ही उस भूमि का वास्तविक स्वामी है।

खेती आसमान के नीचे किसान का खुला खजाना है। अनावृष्टि, अतिवृष्टि, ओला, टिड्डी, फसलों की महामारी तथा अन्य प्राकृतिक और राजनीतिक प्रकोप इसे अवसर पाते ही लूटने को तैयार रहते हैं। किसान अपनी उपज को उसी समय अपनी मानता है जब वह उसके घर की छत के नीचे आ जाए और यहां भी उसे सस्ते-महंगे का भय दबोचे रहता है। नए किसानों के सम्मुख भी ये समस्याएं आईं और कुछ अपनी जमीन को बेच कर फिर से अन्य रोजगार धंधों में लग गए।

पुराने किसान का एक भाईचारा है। यह भाईचारा दस-बीस छत्तीस या कहीं कहीं चौरासी गांवों तक सीमित है। यह पुरानी जनपदीय व्यवस्था है जिसे अंग्रेजों ने कबीला-व्यवस्था का नाम दिया। ये लोग आपत्ति काल में एक दूसरे को सहायता देने को तत्पर रहते हैं। खेती में यदि किसी को पशु मरने या अन्य किसी कारण से कोई घाटा होता है तो उसकी क्षतिपूर्ति में ये तुरन्त आगे आते हैं। 'नये किसान' के पास इस प्रकार के संबल का अभाव था। इस कारण भूमि मिलने पर भी उत्पादन न बढ़ सका।

किन्तु दूसरी ओर सरकार भी इस बात के लिए दृढ़ संकल्प थी कि भूमि सुधार में आने वाली सभी बाधाओं का सामना करके उन्हें सफलतापूर्वक लागू किया जाए।

इसके लिए पहला क्रांतिकारी कदम था जमींदारी प्रथा का उन्मूलन। इसके अनुसार जो भूमि को जोतते आ रहे थे, वही परिवार उसके स्वामी घोषित किए गए। भूमि को जोतने वाले ये किसान अपने व्यवसाय में सिद्धहस्त थे। भूमि पर मालिकाना अधिकार मिलते ही उन्होंने रात दूना और दिन चौगुना परिश्रम करना आरंभ किया और उत्पादन में कई गुणा वृद्धि हुई।

अब तक 50.49 लाख एकड़ भूमि वितरित की जा चुकी है। भूमि सुधार के इस आन्दोलन में 39.94 प्रतिशत भूमि अनुसूचित जातियों और 14.32 प्रतिशत भूमि अनुसूचित जनजातियों के लोगों को मिली है। इसका सुखद परिणाम यह हुआ है कि 48.81 लाख किसानों के घरों में इस क्रांति के दीपक का प्रकाश फैलने लगा है।

भूमि सुधारों में एक बड़ी बाधा इस बात पर आड़े आई कि जमींदार अपने पास अधिक से अधिक कितनी भूमि रख सकता है। भारत की भूमि में उपज की विविधता को देखते हुए भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारण करना कोई सरल कार्य नहीं था। फिर विभिन्न प्रान्तों में जमींदारी की विभिन्न परम्पराएं रही हैं। सभी राज्यों की सहमति भी इसमें आवश्यक थी। इसी रस्साकशी में आजादी के 25 वर्ष बीत गए। सन् 1972 में राज्यों के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन के बाद कृषि भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारण करने के बारे में राष्ट्रीय मार्गदर्शक सिद्धान्त तैयार किए गए। इन सिद्धान्तों के अनुसार कोई परिवार साल में दो फसल देने वाली अच्छी जमीन 10 से 18 एकड़ तक और सिंचाई की सुविधा रहित 54 एकड़ तक भूमि रख सकता है।

इस अधिकतम सीमा निर्धारण का सुखद परिणाम यह हुआ है कि अब तक 73.52 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित हो चुकी है। उस भूमि का वितरण भी कोई सरल कार्य नहीं है। साधन संपन्न लोग अनेक हथकंडों द्वारा इसे दबाने को तैयार बैठे थे किन्तु सरकार ने इस अतिरिक्त भूमि के बंटवारे के लिए भी मार्गदर्शक सिद्धान्त तैयार कराए। परिणामस्वरूप अब तक 50.49 लाख एकड़ भूमि वितरित की जा चुकी है। भूमि सुधार के इस आन्दोलन में 39.94 प्रतिशत भूमि अनुसूचित जातियों और 14.32 प्रतिशत भूमि अनुसूचित जनजातियों के लोगों को मिली है। इसका सुखद परिणाम यह हुआ है कि 48.81 लाख किसानों के घरों में इस क्रांति के दीपक का प्रकाश फैलने लगा है। यद्यपि सीमा निर्धारण के अधीन उपलब्ध अधिकांश भूमि बहुत अच्छी नहीं है किन्तु इसके विकास और सुधार की विपुल संभावनाएं हैं।

दूसरी ओर समाज के एक बहुत बड़े काश्तकार समाज को भी भूमि पर मालिकाना अधिकार दिलाना भूमि सुधार का उज्ज्वल पक्ष है। अब 112.13 लाख किसान अपनी जमीन के स्वयं स्वामी बन गए हैं। परम्परागत या वंशानुगत के शिकंजे से छुड़ाई गई

चकबन्दी के द्वारा अब उसके खेत एक स्थान पर हैं जहां वह उनकी रखवाली भी कर सकता है और ट्यूबवेल आदि की व्यवस्था भी कर सकता है। अब उसके लिए खेती आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होने लगी है। जहां पहले वह अपने परिवार का पेट पालने के लिए खेती करता था अब वह अतिरिक्त उत्पादन द्वारा समाज का भी हित कर रहा है।

153.32 लाख एकड़ जमीन इनके मालिकाना कब्जे में है। इस भूमि पर कब्जा बनाए रखने के लिए विधवाओं, सैनिकों, नाबालिगों, अविवाहित स्त्रियों, अपंगों तथा इसी प्रकार के अन्य लोगों को आमतौर पर पूरी सुरक्षा भी प्रदान की जाती है।

भूमि की उच्चतम हदबंदी से जहां गरीबी के स्तर से लाखों परिवारों को ऊपर उठाने का जो स्तुत्य कार्य हुआ है उसी तरह का एक अन्य कार्य चकबंदी द्वारा भी हुआ है। इस कार्य को यों कहिए कि जिस प्रकार सिक्के, नाप, तोल आदि में जो आमूल परिवर्तन हुए हैं वहीं परिवर्तन खेतों की पुरानी सीमाबंदी मिटाकर नई सीमाबंदी द्वारा किया गया है। पहले एक ही किसान की जमीन के छोटे-छोटे खेत चार "कूटों" में ही नहीं आठ 'कूटों' में बिखरे पड़े थे। उसे एक ही दिन में कंधे पर हल रखकर कभी इधर दौड़ता पड़ता था तो भी उधर। वह सभी स्थानों पर कुंआ या रहट लगाने में सक्षम नहीं था। चकबन्दी के द्वारा अब उसके खेत एक स्थान पर हैं जहां वह उनकी रखवाली भी कर सकता है और ट्यूबवैल आदि की व्यवस्था भी कर सकता है। अब उसके लिए खेती आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होने लगी है। जहां पहले वह अपने परिवार का पेट पालने के लिए खेती करता था, अब वह अतिरिक्त उत्पादन द्वारा समाज का भी हित कर रहा है। इससे गांव का भी योजनाबद्ध विकास संभव हुआ है। गांव के लिए उपयुक्त पंचायत घर, खेल के मैदान, विद्यालय की भूमि, अस्पताल, बैंक अब उपलब्ध हैं।

इस कार्य को योजनाबद्ध ढंग से लागू करने के लिए आवश्यक नियमों का निर्धारण भी आवश्यक था। जात पांत और अनेक

केन्द्र समर्थित योजना पर इन दिनों तेजी से काम किया जा रहा है। सर्वेक्षण के लिए राज्यों को आर्थिक सहायता दी जा रही है ताकि फोटोमैपिंग, एरियल सर्वे तथा भूमि अभिलेखों का कम्प्यूटरीकरण शीघ्र सम्पन्न हो सके। केन्द्र सरकार इस कार्य के लिए राज्यों को अब तक कोई 61.18 करोड़ रुपये की सहायता दे चुकी है।

गुटों में विभाजित भारतीय समाज में इस प्रकार का भूमि सुधार लोकतांत्रिक विधि से लागू करना काफी कठिन कार्य है। फिर भी अनेक राज्यों ने इस चुनौती को स्वीकार किया। देश में अब तक 618.66 लाख हेक्टेयर भूमि की चकबंदी की जा चुकी है। चकबन्दी का अधिकांश काम महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, बिहार और उड़ीसा में हुआ है।

भूमि अभिलेख के व्यवस्थित लेखे जोखे के बिना भूमि सुधार अप्रभावशाली है। प्रभावशाली समुदाय भूमि पर अपना कब्जा छोड़ने को तैयार नहीं है। यह तभी संभव है जब व्यक्ति के पास भूमि के कब्जे के साधिकार मालिकाना कागजात हों। इससे काश्तकारों और बटाईदारों को पट्टे की सुरक्षा मिलती है और खातेदारों को ऋण तथा खेती के लिए अन्य उपादान आसानी से मिल सकते हैं। कुछ राज्यों में भूमि अभिलेख और फसल अभिलेख निश्चित अवधि के बाद संशोधित किए गए हैं। इस कार्य के लिए केन्द्र समर्थित योजना पर इन दिनों तेजी से काम किया जा रहा है। सर्वेक्षण के लिए राज्यों को आर्थिक सहायता दी जा रही है ताकि फोटोमैपिंग, एरियल सर्वे तथा भूमि अभिलेखों का कम्प्यूटरीकरण शीघ्र सम्पन्न हो सके। केन्द्र सरकार इस कार्य के लिए राज्यों को अब तक करीब 61.18 करोड़ रुपये की सहायता

दे चुकी है। जिस प्रकार ड्राईवर और विद्यार्थी को उसका पहचान पत्र दिया जाता है, उसी प्रकार यदि हमारे किसान को उसकी भूमि का अधिकार पत्र मिल जाए तो उसे अपने आप को स्वतन्त्र भारत का नागरिक कहलाने में कितने गर्व की अनुभूति होगी। वास्तव में इस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने में जहां स्वार्थी तंत्र आड़े आता है, वहां निरक्षरता और अज्ञानता भी कम बाधक नहीं है।

भूमि सुधार के आन्दोलन में सरकार की और भू-स्वामियों की स्थिति 'तू डाल-डाल मैं पात-पात' जैसी रही है। सरकार ने भूमि सुधार के लिए अनेक कानून बनाए, किन्तु स्थान-स्थान पर बाधाएं आईं। फिर भी दृढ़वती और दृढ़ संकल्पी के सम्मुख कोई बात असंभव नहीं है। सरकार को इन कानूनों को प्रभावी बनाने के लिए संविधान का सहारा लेना पड़ा। इस व्यवस्था के अनुसार संविधान की नवीं अनुसूची में उल्लिखित विषयों के बारे में बनाए गए कानूनों को इस आधार पर अदालतों में चुनौती नहीं दी जा सकती कि ये कानून संविधान के भाग तीन में निर्दिष्ट मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं। अब तक 222 कानून नवीं अनुसूची में शामिल किए जा चुके हैं। अब भूमि सुधारों से संबद्ध 27 और कानून भी इस अनुसूची में शामिल करने का निश्चय किया गया है।

भूमि सुधारों का सदैव व्यापक स्वागत किया गया है। देश को इनके परिणामस्वरूप व्यापक सामाजिक और आर्थिक लाभ हुए हैं। यद्यपि समाज भूमि सुधार के कानूनों से पूरी तरह संतुष्ट नहीं है तथापि सकारात्मक पक्ष की अनदेखी करना न्यायोचित नहीं होगा। भारतीय समाज के सुखी जीवन का आधार निरन्तर भूमि सुधार है।

*लेखक हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़ के भूतपूर्व निदेशक हैं। **लेखन कार्य** : 1960-61 के आस पास "खेती" पत्रिका में अनेक लेख प्रकाशित। सेवाग्राम साप्ताहिक (दिल्ली) में एक दशक तक कृषि और ग्रामोत्थान संबंधी अनेक लेख और स्तंभों का प्रकाशन। **प्रकाशन** : ग्रामोत्थान से संबंधित नव साक्षरों के साहित्य से संबंधित उपन्यास 'माटी का मोल', 'पेड़ की कहानी' भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय (प्रौढ़ शिक्षा संघ) से पुरस्कृत। ग्रामोत्थान से संबंधित अन्य पुस्तकें भी भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, दिल्ली से प्रकाशित। कुल 30 पुस्तकें प्रकाशित। **मान-सम्मान**: शिक्षा सेवाओं के कारण दिल्ली राज्य तथा अन्य राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित।*

(पृष्ठ 106 का शेष)

भूमि सुधार : उपलब्धि

का आकार निरन्तर घट रहा है। अधिकतर सीमान्त एवं छोटे कृषक अलाभकारी खेती करने पर मजबूर हैं। कहीं-कहीं यह भी देखा गया है कि कुछ सीमान्त तथा छोटे कृषक जो अन्य धन्धों या मजदूरी को मुख्य पेशा बनाने लगे हैं, खेती पर अधिक ध्यान नहीं दे पा रहे हैं जिससे कृषि उत्पादकता कम होने लगी है। हमें इस आंशिक खेती की प्रवृत्ति पर विचार करना होगा। इसके लिए हमें ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योग धन्धों के विकास के लिए उचित सुविधाएं तथा वातावरण तैयार करना होगा जिससे कृषि में आंशिक रूप से लगे लोग अधिकाधिक संख्या में कृषि छोड़कर अन्य व्यवसायों में लगें अन्यथा भूमि सुधार के किसी भी कार्यक्रम का उचित लाभ नहीं मिल पाएगा। गांवों की तेजी से बढ़ती जनसंख्या भी भूमि वितरण व्यवस्था को असंतुलित करने में सहायक होती है अतः जनसंख्या नियंत्रण के कार्यक्रमों पर भी विशेष ध्यान देना होगा।

लेखक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कृषि महाविद्यालय में कृषि रसायन में प्रवक्ता पद पर 1965 से 1968 तक कार्य करने के बाद अन्यत्र चले गए। 1972 में वे फिर कृषि महाविद्यालय में रीडर के पद पर नियुक्त हुए। 1983 से वे उसी जगह प्रोफेसर के पद पर कार्य कर रहे हैं। अब तक वह 18 पी० एच० डी० तथा 35 एम० एससी० शोधार्थियों का मार्गदर्शन कर चुके हैं तथा 100 से अधिक शोध पत्रों को प्रकाशित किया है। अनेक संस्थाओं ने उन्हें मानद उपाधियां प्रदान की हैं। वे वैज्ञानिक के रूप में विदेश भ्रमण भी कर चुके हैं।

भूमि सुधार का गैर-सरकारी 'भगीरथ प्रयास'

अरविन्द कुमार सिंह

महात्मा गांधी के अनुयायी आचार्य विनोबा भावे ने गांव-गांव में घूमकर भूमिहीनों और दलित वर्गों के लिए 45.90 लाख एकड़ भूमि भूदान में प्राप्त की। आचार्य विनोबा भावे को प्रति दिन 200-300 एकड़ जमीन दान में मिल जाती थी। उनके इस अनूठे योगदान को भूमि सुधारों के इतिहास में हमेशा याद रखा जाएगा। लेखक का कहना है कि यदि उन्हीं जैसी इच्छा शक्ति वाले कुछ और लोग तथा संस्थाएं खड़ी हो जातीं तो सारी दुनिया भारत की इस मौन क्रांति का गुणगान करती।

आचार्य विनोबा भावे (जिनकी इस वर्ष जन्म शताब्दी मनायी जा रही है) ने भारत में भूमि सुधारों की दिशा में ऐसा स्तुत्य और भगीरथ प्रयास किया है, जिसकी याद आज के इस दौर में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है जब हम प्रायः हर क्षेत्र में गैर सरकारी प्रयासों को प्रोत्साहन देने में लगे हैं। 11 सितम्बर 1895 को जन्मे आचार्य विनोबा भावे ने भूदान यज्ञ के माध्यम से गांव-गांव में पदयात्रा कर ग्रामीण भूमिहीनों के लिए 45.90 लाख एकड़ जमीन हासिल की। तमाम कारणों से इस जमीन में से 22.67 लाख एकड़ जमीन ही बांटी जा सकी है तो भी यह एक कीर्तिमान ही है। गरीबों के लिए इतनी बड़ी मात्रा में भूमि जुटाना हंसी खेल नहीं है। भूदान यज्ञ हमें ऐसा रास्ता दिखाता है कि यदि किसी चीज के लिए हम संकल्प कर लें तो उसे हासिल किया जा सकता है, लक्ष्य चाहे जितना ही बड़ा क्यों न हो।

भूमि सुधार की जरूरत

ग्रामीण भारत में भूमि ही प्रायः सबके जीवन यापन का मुख्य साधन है। किसी के पास जमीन कम हो या ज्यादा, गांवों में वही लोगों के सामाजिक-आर्थिक स्तर का बोध कराती है और उसे सम्मान भी दिलाती है। भूमि को लेकर गांवों में बेहद भावनात्मक संबंध जुड़े होते हैं तथा किसान विपरीत परिस्थितियों के बावजूद अपनी भूमि को बेचने की बात सोचते तक नहीं। इसी से जुड़ा दूसरा पहलू और भी गंभीर है। आजीविका का एकमात्र जरिया होने की वजह से भूमि ही गांवों में सामाजिक तनाव, हिंसा तथा कानून-व्यवस्था का एक मुख्य कारण है। गांवों में भूमि विवाद को लेकर मुकदमेबाजी ने वहां के सामाजिक ढांचे को भी खराब बना दिया है और अनेक परिवारों में इसे लेकर पुश्तैनी दुश्मनियां तथा खून खराबा भी हो चुका है।

बिहार, आंध्र प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के कुछ नक्सलवाद प्रभावित इलाकों की जड़ में भी भूमि की असमानता और वितरण में गड़बड़ी अशांति की एक वजह है। तेलंगाना में 50 के दशक में और बिहार में उसके बाद हुआ कई जगहों पर भयावह संघर्ष भी भूमि समस्या की वजह से था। इसी बात को मद्देनजर रखते हुए सरकार ने भूमि सुधारों तथा भूमि रिकार्डों के महत्व को स्वीकार किया और आजादी के बाद से अब तक इस दिशा में कई उल्लेखनीय काम हुए हैं। प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिम्हा राव ने भी भूमि रिकार्डों के समुचित प्रबंध तथा फालतू भूमि वितरण के बेहद महत्वपूर्ण काम को सर्वोच्च प्राथमिकताओं में रखा। इसी बीच केन्द्र सरकार के बंजर भूमि विकास तथा जलागम परियोजनाओं में तेजी के फलस्वरूप बड़ी मात्रा में ऐसी जमीन गरीबों के लिए उपलब्ध हुई जो बेकार मानी जा रही थी। लेकिन अभी भी कुछ राज्यों में भूमि सुधार की दिशा में अपेक्षित प्रगति नहीं हुई है और वहां राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव भी दिखता है।

गैर सरकारी प्रयासों की स्थिति

भूमि सुधार की दिशा में गैर सरकारी प्रयासों की स्थिति भारत

में अच्छी नहीं रही है। अधिकतर बड़े किसान सीमा से बाहर की अतिरिक्त भूमि बचाने में कामयाब हुए हैं और बहुत सी जमीन मुकदमेबाजी में भी फंसी रही। लेकिन इस दिशा में एक ऐसा उल्लेखनीय प्रयास हुआ है जिसे भारत के भूमि सुधार इतिहास में हमेशा याद रखा जाएगा। वह है महात्मा गांधी के अनुयायी सर्वोदयी संत आचार्य विनोबा भावे द्वारा चलाया गया भूदान आंदोलन। उन्होंने इस दिशा में ऐसा प्रयास किया जिसे बढ़ाने के लिए उन्हीं जैसे दृढ़ इच्छाशक्ति वाले कुछ लोग और संस्थाएं खड़ी हो जातीं तो पूरी दुनिया भारत में हुई इस मौन क्रांति का बाद में भी गुणगान करती। तो भी उनका प्रयास सदियों तक याद किया जाता रहेगा।

आचार्य विनोबा भावे को यह आंदोलन चलाने के नाते उनके विरोधियों ने उन्हें 'सरकारी संत' के रूप में प्रचारित किया तथा कई तरह से उन्हें बदनाम करने का प्रयास किया। दृढ़ इच्छाशक्ति वाले इस संत ने देश के गांव-गांव में घूमकर भूमिहीनों और दलित वर्गों के लिए 45.90 लाख एकड़ जमीन भूदान से प्राप्त की और कई स्थानों पर उन्होंने भूमिहीनों को एक साथ मिलकर खेती की प्रेरणा भी दी। लेकिन दुर्भाग्य से कुछ राज्यों में इच्छा शक्ति के अभाव और कई मामलों में मुकदमेबाजी की वजह से उस जमीन का एक बड़ा हिस्सा वितरित ही नहीं किया जा सका। इसके पीछे कई कारण थे। दानदाता परिवारों की नीयत में खोट भी इसकी एक वजह रही है।

भूमि को लेकर गांवों में बेहद भावनात्मक संबंध जुड़े होते हैं तथा किसान विपरीत परिस्थितियों के बावजूद अपनी भूमि को बेचने की बात सोचते तक नहीं।

पिछले वर्ष आचार्य विनोबा भावे के परमधाम आश्रम को सातवां इंदिरा गांधी पुरस्कार देने के मौके पर प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिम्हा राव ने कहा था "आचार्य विनोबा भावे ने दान के व्यक्तिगत गुण को समाजगत बनाया पर उनके द्वारा हासिल की गई 45 लाख एकड़ से ज्यादा जमीन में से एक तिहाई भी कानूनी अड़चनों की वजह से वितरित नहीं हो पाई।" प्रधानमंत्री ने कहा कि पहली बार विनोबा जी ने भारतीय दर्शन में दान की कल्पना और व्यक्तिगत गुण को सार्वजनिक बनाया, इसे देश भर में फैलाया और भूदान को आंदोलन का रूप प्रदान किया। प्रधानमंत्री ने समारोह में यह जानकारी भी दी कि वे अपने तालुके में खुद भूदान समिति के सदस्य थे।

आचार्य विनोबा भावे के जीवन का सबसे बड़ा अभियान भूदान आंदोलन रहा है। यों यह विचार संक्षिप्त रूप से उनके दिमाग में 1948 में शरणार्थियों की सेवा के दौरान आया था लेकिन इसे कार्यरूप देने का काम उन्होंने तेलंगाना आंदोलन की हिंसा के बाद किया और वर्धा से हैदराबाद तक की अपनी पदयात्रा में उन्होंने गांवों की हालत का जायजा लिया और उसके बाद तो वह भूदान यज्ञ के संदर्भ में जमीनों का दान लेने के लिए पूरे देश में पैदल घूमे। तेलंगाना में हुई हिंसा से वह बेहद भावुक हो गये थे और हैदराबाद जेल में 15 अप्रैल 1951 को कम्युनिस्ट नेताओं से मिले। तेलंगाना संघर्ष भी भूमि समस्या के कारणों से ही हुआ था। अपनी यात्रा के दौरान 18 अप्रैल 1951 को पोचमपल्ली नामक गांव (आंध्र प्रदेश) में आचार्य जी से गांवों के दलितों ने मुलाकात की और उनसे निवेदन किया कि अगर उन सबको 80 एकड़ जमीन सरकार से मिल जाए तो वे उस पर मेहनत का खाना खायेंगे। विनोबा भावे ने उनको जमीन दिलाने का इस शर्त पर वादा किया कि वे सब जमीन के एक ही टुकड़े पर सामूहिक कार्य करेंगे। लेकिन वे दलित आचार्य विनोबा भावे को अपनी अर्जी दें इसके पूर्व ही उसी गांव के एक जमींदार रामचन्द्र रेड्डी ने उन्हें वचन दे दिया कि वे अपनी जमीन में से 100 एकड़ जमीन दलितों को दे रहे हैं।

इस छोटी-सी घटना ने विनोबा भावे के दिमाग में हलचल पैदा कर दी। इस घटना पर उन्होंने लिखा है "जिस जमीन के लिए खून, कत्ल, कोर्ट कचहरी होती है, वह जमीन दान में मिली। इसके पीछे कोई संकेत होना चाहिए। रात भर मेरा चिंतन चला और मुझे अनुभव हुआ कि लोग प्रेम से जमीन दे सकते हैं।" इसके बाद उन्होंने भूदान यज्ञ आंदोलन शुरू कर दिया तथा गांवों में लोगों को समझाना शुरू किया कि "जैसे हवा, पानी, रोशनी पर हरेक का हक है वैसे ही जमीन पर भी। कई लोगों के पास बिल्कुल जमीन नहीं हो उस हालत में ज्यादा जमीन अपने पास रखना गलत है।" गांव-गांव में विनोबा भावे के इस निस्वार्थ अभियान का असर हुआ और लोगों ने उन्हें स्वेच्छा से जमीन दी। उन्होंने पहले भी कहा था कि "भूदान यज्ञ का मूल विचार अगर लोगों को समझा दिया जाये तो लोग प्रेमपूर्वक जमीने दे देंगे।" यह अभियान ऐसा सफल रहा कि छोटे-छोटे किसानों तक ने अपनी जमीनें दान में दे दीं। लेकिन इस अभियान में मिली 45 लाख एकड़ से ज्यादा जमीनों में से अब तक मात्र करीब 24 लाख एकड़ जमीन ही बांटी जा सकी है। बिहार, जहां विनोबा भावे को

21.18 लाख एकड़ जमीन मिली थी वहां अब तक 33 प्रतिशत जमीन भी नहीं बांटी जा सकी। 1989 तक वितरित 20 लाख एकड़ जमीन को 13 लाख लोगों में बांटा गया। लेकिन बिहार में भूदान यज्ञ में विनोबा भावे के साथ धोखाधड़ी हुई और दान में बहुत सी ऐसी जमीनें दे दी गयीं जो पहले ही मंदिरों को दान में दी जा चुकी थीं। अनेक समस्याएं आईं और सरकार द्वारा भूदान बोर्ड बनाने के बाद भी स्थिति में अपेक्षित बदलाव नहीं आया। अनेक स्थानों पर भूदानी जमीनें मुकदमों में उलझ गयीं।

भूदान यात्रा का असर

पोचमपल्ली गांव से शुरू भूदान के सफर ने तेलंगाना आंदोलन के परिप्रेक्ष्य को लेकर दुनिया भर में चर्चा पाई। उन्होंने 6 जून 1951 से तेलंगाना के समस्याग्रस्त इलाकों और आसपास के गांवों का दौरा 51 दिनों में किया और वहां उन्हें दान में 12,200 एकड़ जमीन मिली। उन्होंने तीन लोगों की समिति बनाकर उन्हें भूदान का काम सौंपा। विनोबा भावे को प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने वार्तालाप के लिए उन्हीं दिनों दिल्ली बुलाया पर विनोबा भावे ने पवनार से दिल्ली तक की 645 कि. मी. यात्रा पैदल तय की और इस दौरान महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में उन्होंने रास्ते में अपने अभियान से 7000 एकड़ जमीन पायी। विनोबा जी 13 नवम्बर 1951 को दिल्ली पहुंचे थे तथा 24 नवम्बर को वह उत्तर प्रदेश में प्रवेश कर गए। उन्होंने 1956-57 तक इस अभियान को जारी रखा। उनके अभियान से प्राप्त भूमि और उसके वितरण का ब्यौरा इस प्रकार है :

भूदान यज्ञ : प्राप्त भूमि और वितरण

क्रम	राज्य	दान की गयी जमीन (लाख एकड़ में)	वितरित	शेष
1.	आंध्र प्रदेश	1.96	1.00	0.96
2.	बिहार	21.18	6.95	14.23
3.	गुजरात	0.34	0.27	0.07
4.	म. प्र.	4.10	2.43	1.67
5.	महाराष्ट्र	1.10	0.83	0.27
6.	उड़ीसा	6.39	5.80	0.59
7.	राजस्थान	6.02	1.41	4.61
8.	उ. प्र.	4.37	4.21	0.16
	अन्य राज्यों समेत योग	45.90	23.23	22.67

आचार्य विनोबा भावे के अभियान में 17 राज्यों से भूदान में जमीनें मिली थीं। इनमें हरियाणा में 0.02 लाख एकड़ तथा तमिलनाडु में प्राप्त 0.24 लाख एकड़ जमीनें भी शामिल हैं जिनका वितरण हो चुका है। असम, हिमाचल, जम्मू कश्मीर और पं. बंगाल में नगण्य भूदान हुआ था। कर्नाटक में प्राप्त 0.11 लाख एकड़ भूमि में से 0.05 तथा केरल में मिली 0.02 लाख एकड़ जमीन में से 0.01 लाख एकड़ और पंजाब में प्राप्त 0.05 लाख एकड़ जमीन में मात्र 0.01 लाख एकड़ जमीन का वितरण हो चुका है।

तेलंगाना में 50 के दशक में और बिहार में उसके बाद हुआ कई जगहों पर भयावह संघर्ष भी भूमि समस्या की वजह से था। इसी बात को मद्देनजर रखते हुए सरकार ने भूमि सुधारों तथा भूमि रिकार्डों के महत्व को स्वीकार किया और आजादी के बाद से अब तक इस दिशा में कई उल्लेखनीय काम हुए हैं।

लेकिन अभियान के तीन दशक के बाद भी पंजाब, राजस्थान, बिहार तथा कर्नाटक में भूमि वितरण की दशा खराब है। बिहार में 14.23 लाख एकड़ तथा राजस्थान में 4.61 लाख एकड़ भूमि अभी भी वितरित की जानी है।

भूदान में बाधाएं

इसमें कोई संदेह नहीं कि गैर सरकारी प्रयासों में भूमि के समान वितरण के सामाजिक आंदोलन में भूदान यज्ञ बेमिसाल रहा है। कुछ राज्यों में तो इस आंदोलन ने उल्लेखनीय सफलता पायी और इस लक्ष्य को समाज में व्यापक चर्चा का केन्द्र भी बनाया। लेकिन जैसा कि ऐसे मामलों में होता है, भूदान में भी कई मामलों में सरकारी, अन्य लोगों की या मुकदमेबाजी में फंसी भूमि दान दे दी गयी। लेकिन इन सब बातों के बावजूद कई राज्यों में भूदानी भूमि का एक बड़ा क्षेत्र अब भी बचा हुआ है। यह कल्पना की जा सकती है कि इस अभियान का प्रभाव कितना था कि विनोबा भावे को रोज 200 से 300 एकड़ जमीन दान में मिल रही थी। विनोबा भावे ने ग्राम स्वराज्य के विचारों को ठोस आर्थिक आधार देने के लिए खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र में भी अपने प्रयास जारी रखे थे।

उत्तर प्रदेश की सफलता और बिहार की विफलता

देश के सर्वाधिक आबादी और समस्या वाले राज्य उत्तर प्रदेश में आजादी के बाद भूमि सुधार के क्रांतिकारी कार्यक्रम शुरू हुए तथा 1952 में जमींदारी उन्मूलन के बाद 3.52 करोड़ काश्तकारों

को भूस्वामित्व अधिकार दिए गये। पंडित गोविन्द बल्लभ पंत तथा चौ. चरण सिंह का भूमि सुधारों में बेहद महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसी तरह भूदान में उत्तर प्रदेश में हासिल 4.37 लाख एकड़ जमीन में से 96.33 प्रतिशत को उत्तर प्रदेश भूदान अधिनियम 1952 के तहत 85,000 से ज्यादा गरीब परिवारों में बांटा गया। राज्य में विनोबा भावे ने 360 दिनों की पदयात्रा की थी। अभी भी काफी बड़ी भूदानी भूमि वहां वितरण के लिए बची हुई है।

लेकिन बिहार में सर्वाधिक भूदान के बावजूद अपेक्षित वितरण नहीं हो सका। यहां विनोबा भावे को 3,02,896 दानपत्रों से करीब 21.18 लाख एकड़ जमीन दान में मिली थी। इनमें से 6.95 लाख एकड़ जमीन करीब 5 लाख भूमिहीनों में बांटी गयी। भूदान की जमीनों में से 12.52 लाख एकड़ जमीन वितरण के अयोग्य पायी गयी। यहां कई दिक्कतें आयीं।

केन्द्र सरकार के प्रयास

भूदानी जमीनों के वितरण के बारे में केन्द्र सरकार की ओर से लगातार राज्यों को अनुरोध किया जाता रहा है। अक्तूबर 1991 में प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिम्ह राव ने मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में तय किया था कि भूमि सीमा के बाद वाली सभी जमीनों को 31 मार्च 1992 तक बांट दिया जाए। यह समय-सीमा बाद में बढ़ाई गई। लेकिन इन प्रयासों से अधिग्रहीत 64.85 लाख एकड़ जमीन में से 51.09 लाख हेक्टेयर (78.78 प्रतिशत) का वितरण हो सका जो एक कीर्तिमान है।

भूदानी जमीनों की बाधाओं को समाप्त करने के लिए 14 मार्च 1992 को दिल्ली में राजस्व मंत्रियों के सम्मेलन में एक उप समिति गठित की गई थी। उप समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि अधिकतर भूदान 25-30 वर्ष पहले किया गया था और भूदान के बहुत से रिकार्ड उपलब्ध नहीं हैं। वास्तविक दानदाताओं के बहुत से उत्तराधिकारियों ने ऐसे दान को चुनौती भी दी। हालांकि अधिकतर भूदान मामलों का भू-रिकार्ड ठीक कर लिया गया था पर उस पर कब्जा नहीं लिया गया। इन समस्याओं के लिए राज्य सरकारों को आवश्यक उपचारात्मक कार्रवाई करनी चाहिए।

उन्होंने (विनोबा जी ने) लिखा है "जिस जमीन के लिए खून, कत्ल, कोर्ट कचहरी होती है, वह जमीन दान में मिली। इसके पीछे कोई संकेत होना चाहिए। रात भर मेरा चिंतन चला और मुझे अनुभव हुआ कि लोग प्रेम से जमीन दे सकते हैं।"

उप समिति ने आवंटन हेतु उपलब्ध सरकारी बंजर भूमि के साथ भूदानी भूमि के भी विस्तृत सर्वेक्षण का सुझाव दिया तथा कहा कि इसका रिकार्ड भी जुटाना चाहिए। इस कार्यक्रम के लिए बेहतर निगरानी तंत्र की व्यवस्था के साथ उपसमिति ने ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय को विभिन्न राज्यों के भूदान अधिनियमों को एकत्रित करने का सुझाव दिया और कहा कि बेहतर रिकार्ड वाले राज्य आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा उड़ीसा के भूदान अधिनियमों से काफी मदद मिलेगी।

11 सितम्बर 1895 को महाराष्ट्र के एक गांव में जन्मे आचार्य विनोबा भावे का जीवन विविधताओं से भरा रहा है। भूदान तो उनके जीवन के कुछ अनूठे कार्यों में से भरा रहा है। भूदान तो उनके जीवन के कुछ अनूठे कार्यों में से एक था। यह उनका जन्म शताब्दी वर्ष चल रहा है। ऐसे में उनके भूदान के महान प्रयासों की याद ओर प्रासंगिक हो जाती है। उनका यह महान प्रयास भारत के भूमि सुधार कार्यक्रमों में गैर सरकारी प्रयासों की श्रृंखला में 'भागीरथ प्रयास' ही कहा जा सकता है।

लेखक एक दशक से अधिक समय से पत्रकारिता में सक्रिय। मुख्य रूप से कृषि और ग्रामीण विकास संबंधी क्षेत्रों पर विशेष कार्य। दिसम्बर 1983 से सितम्बर 1986 तक जनसत्ता हिन्दी दैनिक के क्षेत्रीय संवाददाता के रूप में, अक्टूबर 1986 से 1990 तक दिल्ली में हिन्दी साप्ताहिक 'चौथी दुनिया' में संवाददाता और प्रमुख संवाददाता के रूप में कार्य। आकाशवाणी से 1982 से विभिन्न विधाओं पर वार्ताएं प्रसारित। ग्रामोन्मुखी और जनोन्मुखी पत्रकारिता के लिए 1985 में विद्या भास्कर पुरस्कार, 1986 में उत्तर प्रदेश पत्रकारिता संस्थान द्वारा गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार और 1993 में मातृश्री पुरस्कार समेत कई अन्य पुरस्कारों से सम्मानित। आजकल वे 'अमर उजाला' के वरिष्ठ संवाददाता हैं। आजकल वे 'अमर उजाला' के वरिष्ठ संवाददाता हैं।

भूदान-यज्ञ से जमीन का बंटवारा होगा, यह इसका कम से कम लाभ है। इससे बड़ी चीज तो यह बनेगी कि जनता अपनी ताकत महसूस करेगी। आज जनता को हर बात में सरकार की तरफ ताकने की जो आदत लगी है, उससे वह मुक्त होगी और उसे विश्वास आयेगा कि वह भी कुछ कर सकती है।

—विनोबा भावे

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/95
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

R.N./708/57
P & T Regd. No. D (DL) 12057/95
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

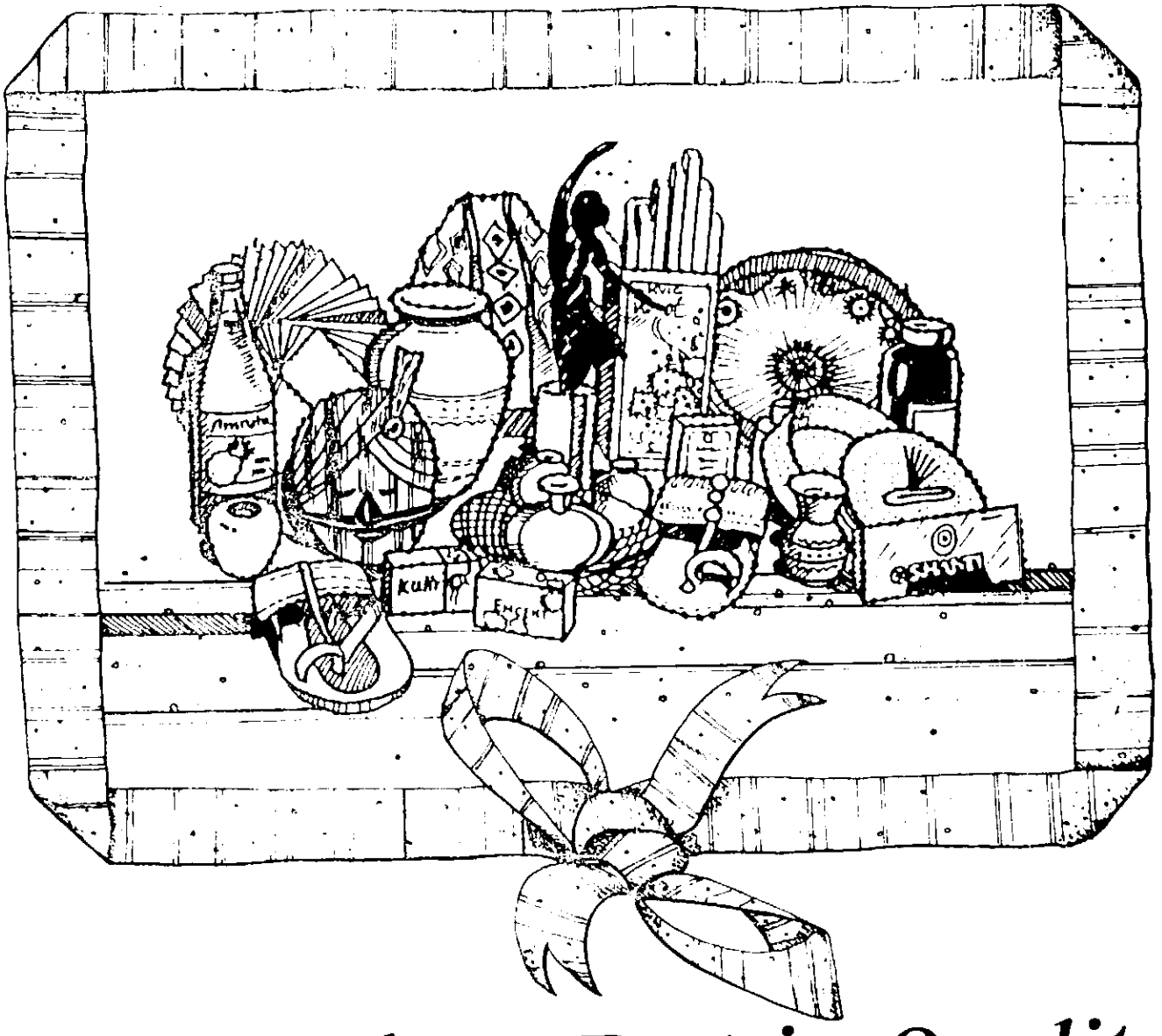

KVI Products Best in Quality

— PLEASING AS WELL AS NOURISHING
— DESIGNED EXQUISITELY BY INDIAN CRAFTSMEN HAVING AESTHETIC SENSE.

TO HAVE KVI PRODUCTS
OF YOUR CHOICE

PLEASE STEP IN

KHADI BHAVANS / BHANDARS
& OTHER SALES OUTLETS

CERTIFIED BY
KHADI AND VILLAGE INDUSTRIES COMMISSION
3 BIRLA ROAD VILE PARLE (WEST)
BOMBAY 400 056

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और आकाशदीप प्रिन्टर्स, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित